आबिद सुरती

बहता पानी

बहता पानी

आबिद सुरती

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

एक नन्हे से बीज की यात्रा

अपने लेखनकाल की आधी सदी में मेरे नए पाठक मित्रों ने कहानी-शिल्प के विषय में एक सवाल अकसर उछाला है—मेरी कहानियों का बीजवपन कैसे होता है? फिर उसका पौधा कैसे बनता है? और अंत में तनकर पेड़ कैसे खड़ा हो जाता है?

लेखन के इब्तिदाई दौर में मैं जानेमाने अंग्रेजी कहानीकार ओ. हेनरी से इतना प्रभावित था कि उनकी एक कहानी पढ़ता था और भीतर दो नई कहानियों के बीज अपने आप पड़ जाते थे। न कोई मशक्कत, न कोई गहरी सोच! यह प्रोसेस मेरे लिए उतना ही आसान था, जितना कि कैरम का खेल।

इन्हीं लोकप्रिय रचनाओं के बीच अनजाने ही कभी कहीं से कोई ऐसा भी बीज उड़कर आता था कि मैं खुद चकित रह जाता था। यह बीज होता था, समय और समाज से जूझते हुए मेरे जीवन का एक लम्हा। मसलन, लंबी कहानी 'कैनाल'। सच यह भी है कि ऐसी कहानियाँ सोचकर नहीं लिखी जातीं। उन्हें तो अनुभूतियाँ लिखवाती हैं।

कभी-कभार कोई बीज इतना बलशाली होता है कि पौधा बनकर भी वह भीतर-ही-भीतर कथाकार को कुरेदता रहता है। कभी महीनों, कभी सालों तक। मसलन, मेरी छोटी सी कहानी 'टूटी हुई और खोई हुई।' मुझे फिर एक बार उसके बारे में संजीदगी से सोचना पड़ता है। तब वह पौधा पेड़ बन जाता है।

'कब्र पर खिले दो फूल'—यह लंबी कहानी 'टूटी हुई और खोई हुई' का ही विस्तार है। अंत नहीं। इस कहानी ने मेरा पिंड तब छोड़ा, जब मैंने उसे उपन्यास के साँचे में ढाला, जो आपके हाथ में है।

इस पुस्तक में वे दोनों कहानियाँ भी अंत में दी गई हैं, ताकि प्रबुद्ध पाठक 'बहता पानी' के विकास का विशेष आनंद भी ले सकें।

—आबिद सुरती

मेल : aabidssurti@gmail.com

यात्रा अंधकार से प्रकाश तक की

अध्यात्म की शृंखला में मेरे प्रथम उपन्यास 'काली किताब 'का नायक शैतान था, दूसरे उपन्यास 'महापुरुष' का इनसान, तो इस तीसरे उपन्यास का नायक खुदा है। मनुष्य कितना ही गिरा हुआ क्यों न हो, उसकी किस्मत में एक रोज भगवान् बनना लिखा है, चाहे उसे सैकड़ों योनियों में से गुजरना पड़े!

अंधकार से प्रकाश तक की यात्रा तय करने आप भी निकले हैं, मैं भी निकला हूँ। कभी मैं अपने लक्ष्य के विषय में अनजान था, भटक रहा था। तब मन के अँधेरे अभिशप्त लगते थे। आज ईशकृपा समान लगते हैं। अँधेरे न होते तो भीतर दीप कौन जलाता? प्रकाश कैसे फैलता?

बेचैनी, तड़प, पीड़ा, छटपटाहट की मेरी यह यात्रा वैसी ही है, जैसे इस कथा का मुख्य पात्र आनंदीलाल भुगतता है। 'बहता पानी' मेरे भीतर पनप रहे आनंदीलाल 'मौजूद' की दास्तान है। कई संतों के प्रेरणामय जीवन और वाणी का इसमें निचोड़ भी है। 'साईं बुल्लेशाह,' 'तज्करतुल औलिया' (सौ सूफियों की संक्षिप्त जीवनियाँ) तथा 'तत्कालीन लखनऊ' जैसी चंद पुस्तकें इस कथायात्रा में मेरी हमसफर रही हैं।

—से. आबिद सुरती

प्रथम संस्करण (1995)

बहता पानी : एक

1

कभी लगाते थे इन्साँ गले से मौत,
क्यों मरते हैं आज कुत्ते की मौत।
फिसलकर कोख से तू रोता है क्यों,
सफर में साथ तेरे चलती है मौत।
मर के सौ बार यहाँ लोग जिंदा हैं,
मत पूछ कि कितनी शर्मिंदा है मौत।
हम तो तेरे चाहनेवालों में हैं,
हमीं से क्यों आँखें चुराती है मौत।
ललकारा था हमने तेरे खुदा को,
क्यों अपनी चूड़ियाँ तोड़ लीं ऐ मौत।

असद महल के शयनागार की शय्या पर लेटे-लेटे बूढ़ी बेगम शबाना सोच रही थी, किसी से उसका घनिष्ठ संबंध था तो वह थी मृत्यु। अपनी माँ की कोख में ही मृत्यु से उसका प्रथम परिचय हुआ और दोनों ने साथ-साथ यात्रा प्रारंभ की थी, सफर के हर मोड़ पर एक-एक रिश्ता छूटता गया था। आज पलटकर देखने पर उनके कंकाल भी कहाँ नजर आते थे!

अपने साठ वर्ष के जीवनकाल में एक रहस्य बूढ़ी बेगम ने भलीभाँति जान लिया था : मृत्यु निश्चित, निसंशय है, बाकी सारा जीवन अनिश्चितता की शृंखला के समान है। बात चाहे छोटी हो या बड़ी, किसी-न-किसी प्रकार की शंका उसमें छिपकर बैठी होती है। मसलन, धुंध छँटेगी या नहीं? रात में ओले पड़ सकते हैं और नहीं भी। कल को सूर्य उदय होगा ही, ऐसा डंके की चोट पर कोई सिद्ध-औघड़ भी नहीं बता सकता।

यह तो मौसम की चर्चा हुई। बूढ़ी बेगम की उम्रे-दराज भी इन्हीं अनिश्चितताओं में कटी थी। बचपन में ईद के चाँद के निकलने की आशंका, जवानी में विवाह होने, न होने की चिंता, पालना बँधेगा या नहीं, उसकी फिक्र—

मगर मलेकुल-मौत?

इस बला के आने, न आने का प्रश्न ही नहीं उठता। उठेगा भी कैसे? वह जालिम अपने इरादे का पक्का है। निश्चित समय, निश्चित स्थान पर बराबर आकर वह अपने निशाने को धर दबोचता है।

मृत्यु के विषय में एक दिलचस्प किस्सा बूढ़ी बेगम ने आनंदीलाल नामक एक पगले से सुना था। संक्षेप में वह किस्सा यों था : एक ब्राह्मण था, काशी में रहता था। एक रोज उसने प्रातःकाल अपनी खिड़की से यमराज को आते हुए देखा। वह घबरा गया, पसीना-पसीना हो गया। अभी उसकी उम्र ही क्या थी? केवल नब्बे पर पाँच वर्ष!

(किस्सों में करारा व्यंग्य घोलना आनंदीलाल के स्वभाव में था।)

ब्राह्मण ने तुरंत निर्णय लिया और यमराज से बचने के लिए अपने आवास के पिछवाड़े से भाग निकला। सूर्योदय से सूर्यास्त तक वह बेतहाशा दौड़ता रहा। अंततः मथुरा पहुँचकर उसने दम लिया। सोचा, एक रात यहीं किसी

धर्मशाला में काटकर दूसरे दिन घर लौटूँगा।

''ऐसे नाजुक मामलों में जल्दबाजी भली नहीं। यमराज का क्या भरोसा?''

ब्राह्मण धर्मशाला पहुँचा तो उसने क्या देखा—यमराज उसका स्वागत करने के लिए लाल कालीन बिछाए मुसकराता हुआ खड़ा, नम्रता से कह रहा था, ''श्रीमान, आपने ठीक ही किया, जो यहाँ पधारे। आपके घर मैं यही संदेश देने आया था कि आपकी मृत्यु के लिए यह स्थान तय किया गया है। यहीं, इसी क्षण आपको देहत्याग करना होगा।''

अफसोस की बात यह है कि बूढ़ी बेगम शबाना की माँ को मृत्यु से फरार होने की मोहलत भी नहीं मिली थी। वह बेचारी डिलिवरी-टेबल पर लेटी थी और मौत उसके सिरहाने बैठी थी। इंतजार था सिर्फ बाल शबाना के जन्म का। ऐसी स्थिति में भाग निकलना तो दरकिनार, उठकर खड़े होना भी नामुमकिन था।

पास एक महिला डॉक्टर दुविधा में खड़ी थी। उसकी परेशानी यह थी कि वह माँ को बचा ले या बच्चे को? इस समस्या का हल शबाना के पिता ने निकाला। बताया, ''माँ सलामत रही तो इंशाअल्लाह, आगे एक मौका और मिल सकता है।''

ये चिकित्सक कोई भगवान् तो नहीं होते, जो विधाता के प्यादों से खिलवाड़ कर सकें! माँ को बचाने के लिए महिला डॉक्टर ने पुरजोश-पुरजोर कोशिश की, मगर हुआ वही, जो मौत के फरिश्ते को मंजूर था।

संयोग से अपनी माँ के देहांत पर सबसे पहले बाल शबाना चिल्ला-चिल्लाकर रोई थी और वह यह भी नहीं जानती थी कि वह किसलिए आँसू बहा रही है।

किसी हठयोगी की तरह शयनागार में वर्षों से खड़ी आदमकद जर्मन घड़ी ने सुबह के दस होने की सूचना अपने मधुर डंकों से दी। बूढ़ी बेगम धीर-धीरे शय्या से उठकर बैठी हुई। उसकी नक्काशी की हुई लकड़ी करीब ही रखी थी। ऐनक तकिए के नीचे थी। सुबह का चाय-नाश्ता उसने फजर की नमाज के घंटे भर बाद निपटा लिया था।

लकड़ी के सहारे वह ड्योढ़ी से बाहर निकली, तब उसकी नाक पर चाँदी की कमानीवाली ऐनक थी, उसके सामने बर्फ से ढके पूरब के पहाड़ थे, जो दिन चढ़ते ही धुंध में खो गए थे। शांतिवन का शांतिमठ वैसे भी पोशीदा रहता था।

''इस मरे गाँव गलानियाँ का मौसम जाने कब किस करवट बैठेगा, इसका राज आज तक पता नहीं चला।'' रात में बर्फ पड़ी, सुबह धूप थी, अब धुंध है।

प्रधान बस-अड्डे में मंडली जमाकर बैठे कुलियों की आँखें दूर तक चली गईं तारकोल की टेढ़ी-मेढ़ी सड़क का कोहरा भेदने का प्रयास कर रही थीं, मगर पास के पेड़ों, मकानों के छज्जों और रास्ते पर कहीं-कहीं चमकती बर्फ के अतिरिक्त कुछ अधिक देख पाना उनके बूते के बाहर था। शीत ऋतु की सिहरन में वे अलमोड़ा से आनेवाली बस की बाट जोह रहे थे।

बूढ़ी बेगम को न हवाखोरी के लिए आनेवाले यात्रियों में दिलचस्पी थी, न वाहनों के आवागमन से कोई सरोकार था। न नीम के पेड़ तले के खुले मदरसे से उसे मतलब था, न चौक की भीड़-भाड़ से; फिर भी उन सबको नजरअंदाज करना संभव नहीं था, कम-से-कम पगले आनंदीलाल को।

क्या वह सचमुच पागल था?

इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' या 'ना' में यकीन के साथ देना कठिन था। यदि आप समाज के नामी-गिरामी अगुवाओं की राय पर भरोसा करें तो उनकी दृष्टि में वह सयाना नहीं था।

मगर वह था कौन?

गाँववाले केवल इतना जानते थे, अनंत आकाश में हवा के झकोरों के साथ भटकते हुए एक अकेले बादल के नन्हे से टुकड़े की तरह एक रोज वह गाँव की सीमा पर दिखाई दिया था।

बूढ़ी बेगम को आज भी याद है, पहले-पहल उसी ने आनंदीलाल को देखा था; हालाँकि उसमें काबिले-तारीफ ऐसा कुछ नहीं था कि कोई शख्स उसकी ओर दोबारा देखता।

किसी मस्तराम की तरह वह घुटनों तक लंबी नेकर और कैनवास के जूतों में पाँव फैलाकर बरगद के एक पेड़ तले बैठा था। उसकी पीठ को चौड़े तने का सहारा था। उसकी लंबी-काली दाढ़ी उसके खुले सीने पर पसरी पड़ी थी, आँखें बरगद के घटाटोप में कहीं अटकी थीं।

आनंदीलाल ने अपनी नजरें हटाकर एक नजर बेगम शबाना को देखने की परवाह तक नहीं की। वैसे सत्रह सावन के झूलों से खेल चुकी बेगम में काबिले-दीद काफी कुछ था।

तब वह पाँच फीट चार इंच की सुडौल, गोरी-चिट्टी, जामाजेब ब्याहता थी। उसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों में बालसुलभ कुतूहल था। उसके हाथ-पाँव की मेहँदी के रंग अभी फीके नहीं पड़े थे।

वह अकेली भी नहीं थी। छोटे नवाब सआदत जाँ दो घोड़ों की शानदार बग्घी में अपनी नई-नवेली दुलहन को बिठाकर गाँव की सैर कराने निकले थे।

दूर से ही बेगम की नजरों को पहले बरगद पर बैठ काँव-काँव करते हुए कौओं के झुंड ने, फिर बरगद की छाँव में बैठे सींकिया से आनंदीलाल ने आकर्षित किया था।

''वो कौन है जी?'' उसने दुलकी चाल चल रहे दोनों घोड़ों की रास सँभाले नवाब से पूछा।

सआदत जाँ ने उसे पहले कभी नहीं देखा था या शायद गोधूलि के कारण वह ठीक से उसे पहचान नहीं पाए।

''ऐ जी, बोलो न, वह बंदा कौन है?''

बेगम का मन रखने के लिए उन्होंने घोड़ों को बरगद की तरफ मोड़ा। जब बग्घी आनंदीलाल के पास आ रुकी, तभी उत्तर देते हुए बोले, ''कोई अजनबी लगता है।''

''दरवेश नहीं लगता?''

''वो कैसे?''

''जिसके दर्शन की तड़प जागे, वो कामिल फकीर ही हो सकता है।''

''मगर कैनवास के फटे जूतों और घुटन्ने में?''

अभी दोनों बग्घी पर कोचवान की जगह बैठे थे, टुकुर-टुकुर आनंदीलाल को देख रहे थे। कौओं का किरकिरा संगीत जारी था। आनंदीलाल अभी भी बरगद के घटाटोप में अपनी नजरें टिकाए हुए था। मानो उन दोनों का अस्तित्व ही न हो!

बेगम शबाना को उसका यह बरताव खल गया।

नई-नई ब्याहकर वह गाँव गलानियाँ में आई थी। उसके रूप की चर्चा घर-घर थी। बग्घी चौराहे पर से गुजरती, तब असद महल की खूबरू बेगम को बेपरदा, मगर सिर पर चुनरी डाले चोली-शरारे में ठस्से से बैठी देख राह चलते लोग चंद पलों के लिए वशीभूत हो जाते, यातायात थम जाता, परंपरावादियों के दीदे निकल आते।

एक फक्कड़ यह था, जिसने चाँद से मुखड़े पर एक नजर डालना भी उचित नहीं समझा था।

दूसरे क्षण बेगम ने सोचा, अब इसमें उस बेचारे का क्या दोष? वह तो अपनी धुन में खोया हुआ है। उसे न दीन की फिक्र है, न दुनिया की। पता नहीं उसने कुछ खाया भी होगा या नहीं?

तभी उसकी नजर एक सूखी रोटी और प्याज के दो टुकड़ों पर ठहरी, जो आनंदीलाल के पास ही एक कटोरे में

पड़े थे। बेगम ने नोट किया—''कुछ खाने को मिला है, कुछ बचाकर भी रखा है।''

''क्या सोच रही हैं आप?''

नवाब ने पूछा तो वह सहज चौंकी।

''आपने उसकी आँखें देखीं?'' अपने शौहर मियाँ की ओर चेहरा घुमाते हुए वह बोली।

''उसमें देखने को है ही क्या?'' नवाब ने पहले बेरुखी से कहा, फिर पलटकर बरगद की तरफ देखा। उन्हें लगा, आनंदीलाल की रहस्यमयी आँखों में एक ऐसी चमक थी, जो शायद ही कभी किसी साधारण मनुष्य की आँखों में दिखाई देती है।

अब वह खुद सोच में डूब गए—अजनबी शरणार्थी होना चाहिए। उन्होंने अपने आप से कहा—वरना ऐसा फटेहाल न होता!

जैसे-जैसे नवाब कल्पना के कबूतर छोड़ते गए, उनके भीतर मकड़ी का जाल बुनता गया। उनसे रहा न गया। वे बग्घी पर से कूदकर उसके आगे आए। न चाहने पर भी आनंदीलाल को अपनी आँखें झुकानी पड़ीं।

''पहले कभी तुम्हें नहीं देखा।'' कहते हुए नवाब ने पूछा, ''कौन हो तुम?''

वह सिर्फ मुसकराया। बेगम अभी बग्घी पर ही बैठी थी।

''पाकिस्तान से आए हो?''

वह फिर मुसकराया।

कैसा नामाकूल शख्स है...नवाब मन-ही-मन बड़बड़ाए, उत्तर में देने के लिए उसके पास मुसकान के सिवा और कुछ भी नहीं!

इतनी सरलता से वह उसका पिंड छोड़नेवाले नहीं थे। उन्होंने अपनी कोशिश जारी रखी, ''यहाँ किसी को जानते हो?''

''ना'' में सिर हिलाकर उसने मौन उत्तर दिया। नवाब को थोड़ा संतोष हुआ, मगर पूर्ण संतोष के लिए आनंदीलाल का मुँह खुलवाना आवश्यक था। कोई ऐसा विषय छेड़ा जाए ताकि उसके होंठों पर पड़ा ताला टूटकर खंड-खंड में बँट जाए।

उन्होंने इस बार भिक्षापात्र की ओर संकेत करते हुए पूछा, ''वह रोटी किसने दी?'' आनंदीलाल ने आकाश की ओर देख दो टूक जवाब दिया, ''छलिया ने।''

केवल एक शब्द ही सही, पट्ठे ने पहली बार अपनी जीभ को कष्ट दिया था। बग्घी पर बैठी बेगम दिलचस्पी से दोनों के वार्त्तालाप का मजा ले रही थी।

''तुम्हारे खुदा ने तुम्हें सिर्फ एक ही रोटी दी?'' थोड़ी देर के मौन के बाद नवाब ने चुटकी ली।

उसे विस्तार से जवाब देना पड़ा, ''दी तो दो थीं। एक खाई, एक बचा के रखी है।''

जैसे काफी कुछ कह दिया हो, ऐसे अरगाते हुए उसने जता दिया कि अब उसे और छेड़ा न जाए।

'खीर सचमुच टेढ़ी है।' चंद महीनों पहले हुए विभाजन के कारण यह समय भी किसी के मुँह लगने का नहीं था। सूर्यास्त कब का हो चुका था। दूर के पहाड़ों पर छायाचित्र से लगते बगुलों का एक झुंड उड़ता हुआ जा रहा था।

छोटे नवाब बग्घी पर लौटने ही वाले थे कि यकायक बेगम उतरकर आ पहुँची। फिर अपने बटुए से दस रुपए का एक कड़क नोट निकालकर आनंदीलाल के आगे बढ़ाया।

''ठीक से कुछ खा लेना जी।'' वह दयाभाव से बोली।

उसने फिर अपनी आँखें बरगद पर टाँग दीं। बेगम समझी, शायद दान स्वीकारना वह पसंद नहीं करता हो। उसने

दस रुपए का एक दूसरा नोट जोड़कर कहा, ''ये बीस रुपए खैरात नहीं, हमारे जीवन में आई बहार का इजहार है। इन्हें सौगात समझकर ही अपने पास रख लो।''

कोई फर्क नहीं पड़ा।

बेगम ने अपनी बड़ी-बड़ी काली आँखें झपकाते हुए पति की ओर देखा। नवाब की बुद्धि फिर गोता खा गई। रहस्य का जाल फिर गहराने लगा। वह तेजी से सोच रहे थे। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं। रोजी-रोटी का उसके पास न कोई साधन है, न कोई आशा; फिर भी हरे-हरे नोटों की तरफ लपकने के बजाय उसने मुँह ही फेर लिया। मानना पड़ेगा, पट्ठा धन का भूखा नहीं है, मगर क्यों?

वह अपने विचारों में उलझे हुए थे कि आनंदीलाल ने अपने भिक्षापात्र की ओर संकेत करते हुए एक विचित्र प्रश्न किया, ''क्या आप यह सूखी रोटी खा सकते हैं?'' जाने-अनजाने उन्होंने अपना सिर 'ना' में हिला दिया।

''जैसे मेरी रोटी रईसों को नहीं पचती, मुझे उनका धन नहीं पचता है। इसीलिए कोई मुझे फूल देना चाहे तो मैं उसमें से केवल एक पंखुड़ी स्वीकार कर दाता की भावना का आदर करता हूँ।'' कहते हुए उसने हाथ बढ़ाया, ''आपके पास एक पैसा होगा?''

उनकी जेब में एक-एक रुपए के नोट भी नहीं थे, सिक्के कहाँ से होते? वह असमंजस में खड़े रहे और आनंदीलाल ने अपनी बातों का सिलसिला यों पूरा किया—''न हो तब भी कोई हर्ज नहीं।''

''हर्ज क्यों नहीं है जी?'' बेगम तड़ककर बोली, ''बराबर है, वरना तुम यह रोटी बचाकर नहीं रखते।''

आनंदीलाल को लगा, किसी ने उसके हाथ में एक पैसे के सिक्के के बजाय जलता हुआ अंगारा रख दिया हो।

बेगम ने अपने भोलेपन में वही कहा था, जिससे हर मुसलमान वाकिफ होता है—

कल की रोटी के लिए फिक्रमंद वही होते हैं, जिनको रब पर एतबार नहीं होता। यह साधारण सी बात आनंदीलाल के कलेजे को छेदती हुई भीतर उतर गई।

वह रो दिया था।

2

उस शाम खाने के बाद हुक्का गुड़गुड़ाते हुए नवाब और मेहँदी लगे हाथों से पान लगाती हुई बेगम में काफी देर तक आनंदीलाल के विषय में वाद-विवाद चलता रहा। इसका प्रारंभ उसकी उम्र के बारे में अटकलें लगाने से हुआ था।

छोटे नवाब सआदत जाँ पच्चीस वर्ष के थे। बेगम शबाना ने सत्रह पूर्ण कर अट्ठारहवें वर्ष में कदम रखा था। आनंदीलाल की उम्र उन दोनों अंकों के बीच कहीं फँसी थी। बेगम का अंदाजा था कि वह बाईस का होगा। नवाब ने तेईस ठहराई थी। फर्क केवल उन्नीस-बीस का था।

जब आनंदीलाल के चरित्र के विषय की दिशा में चर्चा ने मोड़ लिया, मतभेद का अंतर बढ़ता गया। बेगम का मानना था कि जो निर्मलता उसकी मुसकराहट में थी, वह खुदा के किसी नेक बंदे में ही हो सकती है।

नवाब उसे उलाहना देते हुए बोले, ''नेक लोग अपना परिचय नहीं छिपाते। वह बट्टेबाज अपने बारे में कुछ भी बताने से कतरा गया था।''

''हरगिज नहीं।'' बेगम ने एक डिबिया से डली का चुटकी भर चूरा ले पान में डालते हुए कहा, ''वह सिर्फ खामोश रहा था।''

''दोनों एक ही बात हैं।''

''अगर वह लालची, मक्कार, पाखंडी होता तो हमारे नोट ठुकरा देता? क्या एक छोटी सी बात पर बच्चे की तरह जार-जार रोता?'' वह बरस पड़ी, ''ऐ जी...ऐसे ही लोगों से जमीं-आसमाँ टिके हैं, वरना कब की कयामत आ जाती। लीजिए गिलौरी नोश फरमाइए।''

नवाब ने अपनी हार स्वीकार कर ली। इसलिए नहीं कि बहस के बारूद का भंडार उनके पास समाप्त हो चुका था, बल्कि इस कारण कि शादी के प्रथम सप्ताह की अंतिम रात भी काफी रसीली होती है।

3

छड़ी के सहारे चलते-चलते बूढ़ी बेगम थोड़ा मुसकरा दी। मानो वह दिन के उजालों में नहीं, रात के रेशमी अँधेरों में लिपटी हो, कोई उसके गोरे-गोरे बदन को छूकर कान में कूक रहा हो—

शबे-हश्र है ये शबे-वस्ल है ये,
है जश्न भी गर खुदी को मिटा दो।

''चलो हटो जी।'' बूढ़ी बेगम स्वत: बोली और खुद ही लजा गई।

4

बरगदवाला किस्सा बेगम शबाना ने अपनी दासी रामप्यारी को क्या सुनाया, बात को पंख लग गए। कल तक जो लोग चटखारे लेकर दुलहन के रूप का तजकिरा करते थे, आज आनंदीलाल के कारनामों में मनोरंजन ढूँढ़ने लगे।

महीने भर से वह बरगद तले डेरा डालकर पड़ा था, मगर कोई उसका नाम तक नहीं जानता था। गाँव गलानियाँ वासियों को इससे क्या फर्क पड़ता है? बहसबाजी के लिए उनको सिर्फ हवा का एक झोंका चाहिए। (बात का बतंगड़ बनाना उनका पुश्तैनी पेशा था।)

प्रधान बस अड्डेवाले ढाबे पर जमी मंडली से जुम्मन दरजी का कहना था कि उसने स्वयं सौ का एक नोट उस पगले बाबा के चरणों में रखा तो उन्होंने वह उठाकर उसी के मुँह पर दे मारा।

''मियाँ इसी बात पर शाह पीर के नाम फूलों की एक चादर चढ़ा दो।'' ढाबे के मालिक गुरदास ने व्यंग्य कसा, ''नोट पत्थर का होता तो आपका नूरानी थोबड़ा ही रँग जाता।''

ऐसे फूहड़ मजाक की यहाँ गुंजाइश नहीं थी, सो कोई हँसा नहीं। इकट्ठा लोग किसी अन्य का अनुभव जानने के लिए बेताबी से एक-दूसरे के चेहरे टटोल रहे थे कि असद महल के माली शिवा ने बताया, ''तनख्वाह के रोज मैंने अपनी दोनों जेबें बरगदवाले संत के आगे खाली कर दी थीं, मगर उस दाढ़ीवाले ने उसमें से सिर्फ एक पैसा उठाकर बाकी पर माटी डाल दी।''

''किसी पगले से और क्या उम्मीद की जा सकती है?'' तबलची रामरखा बोला, ''जानते हो, उसने मुझसे क्या कहा?''

तभी वहाँ से गुजरता हुआ नाई रुक गया। उसकी जबान पर कुछ अलग ही संस्करण था।

जब वह गिद्धराज के अस्थिपंजर सा अपना शरीर लिये अजनबी के पास पहुँचा तो उसे देख वह प्रसन्न हो उठा, फिर नाई को उसके नाम से पुकारते हुए कहा, ''कनैयालाल, लोगबाग मेरी लंबी दाढ़ी के कारण मुझे महात्मा

समझते हैं, क्यों न इसे साफ कर दिया जाए?''

अजनबी के होंठों से अपना नाम सुनकर वह धन्य हो गया। वाह, वाणी में कितनी मधुरता है! ''लेकिन महाराज, ''वह बोला, ''आप जो हैं, वही तो लोग कहेंगे न!''

''मैं क्या हूँ?''

''ज्ञानी-ध्यानी बताते हैं, जो माया को ठुकरा दे, वही सच्चा सद्गुरु होता है।''

''मगर मैं तो सभी दाताओं से एक-एक पैसा ऐंठ लेता हूँ।'' कहते हुए अजनबी ने धूल में पड़े हुए सिक्कों की ओर संकेत किया, ''तुम स्वयं देख सकते हो।''

नाई ने गौर से देखकर अंदाजा लगाया, कुल जोड़ कम-से-कम दस रुपयों का होगा। वह सोच में पड़ गया। क्या अजनबी को सिद्ध कहा जा सकता है?

तभी आनंदीलाल ने नाई की पेटी खोल, उस्तरा उठाकर उसके हाथ में थमा दिया। वह घबरा गया। साधारण से लगते इन लँगोटों का तनिक भी भरोसा नहीं। अपनी घरवाली का स्मरण करते हुए उसने खुद से कहा—आदेश नहीं मानने पर कहीं कुपित हो भस्म कर डाले तो मेरी जोरू का क्या होगा?

फटाफट वह अपने काम में जुट गया। उसे संतोष इस बात का था कि यह काम था पुण्य का। सौभाग्य से ऐसी पवित्र और मुलायम दाढ़ी मूँड़ने का जिम्मा खुद बाबा ने उसे सौंपा था।

कनैयालाल! उसके मस्तिष्क में गूँज उठी, पिछले जन्म में तू अवश्य पुरोहित रहा होगा।

अभी उसने आधी दाढ़ी भी साफ नहीं की थी और उसके भीतर दुबककर बैठा जिज्ञासा का कीड़ा कुलबुलाने लगा। ''क्षमा करें महाराज...'' अंततः उसने पूछ डाला, ''मैं आपका नाम नहीं जानता, बल्कि बस्ती में कोई भी नहीं जानता।''

''नाम में क्या रखा है, कनैयालाल? यदि मैं तुम्हें कृष्ण के बजाय मोहम्मद कहूँ तो क्या तुममें कोई फर्क आ जाएगा?''

''सैंट परसेंट, महाराज। मेरा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। मैं मुसलमान कहलाऊँगा।''

''तब ऐसी मुहर लगाने से क्या लाभ, जो दो मनुष्यों के बीच दीवार खड़ी कर दे?''

''अब आपको कोई कैसे समझाए?'' कहते हुए कनैयालाल ने ही उसे समझाया, ''गुमनाम होने के कारण कोई आपको पगले बाबा कहता है तो कोई शाह दरवेश। कोई आपको बरगदवाले साईं समझता है तो कोई हिमालयवाले बाल ब्रह्मचारी।''

अजनबी ठहाके के साथ हँस पड़ा। हँसी का तूफान था वह, जो आतिशबाजी के अनार की तरह फूटकर अँधेरे को उजाले में तब्दील कर देता है। काफी देर तक वह अकेला हँसता रहा, फिर कहा, ''तुम ही बताओ कनैयालाल, मेरा नाम क्या होना चाहिए?''

दाढ़ी-मूँछ मूँड़ने का काम लगभग समाप्त हो चुका था। नाई अपना सामान साफ कर पेटी में डालते हुए गंभीरता से सोचने लगा। बीच-बीच में वह एकाध संजीदा नजर अजनबी के निखरकर सामने आए हुए चेहरे पर भी बिछा लेता था।

वैसे नाक-नक्शा ठीक-ठाक ही था। अगर अजनबी के झोंटे कंधों तक लंबे नहीं होते तो वह एक मामूली क्लर्क सा लगता। अलबत्ता, चेहरा आम आदमी का होते हुए भी उसकी आँखें खास थीं।

क्या यह लँगोटधारी अवतारी पुरुष हो सकता है?

गाँववालों के पास चर्चा के लिए कोई विषय नहीं होता, तब वे उसी वर्ष हुए भारत-पाक बँटवारे की खाल उधेड़ते

या इसी मसले को बहस का मुद्दा बनाकर तर्क-वितर्क करते कि कलियुग में अवतरित होकर कौन मसीहा आएगा?

हिंदुओं का विश्वास था कि वे कृष्ण भगवान् ही हो सकते हैं, जबकि मुसलमान दावे के साथ बताते थे कि गायब इमाम मेहँदी ही पुनः उपस्थित होंगे।

''बाबा आनंदीलाल!''

यकायक नाम सूझने पर नापित अपनी पेटी धड़ाम से बंद करते हुए बोला, ''आपका शुभ नाम यही हो सकता है, महाराज।''

''वह कैसे?''

''आप सदा निज मस्ती में जो खोए रहते हैं।''

अजनबी ने मुसकराकर कहा, ''हाँ...सो तो है।''

5

आनंदीलाल की किस्मत दिन-ब-दिन बदलती गई। बैठे-बिठाए उसे टैक्स-फ्री आमदनी शुरू हो गई थी। इसका कारण था। कनैयालाल जैसे और दो भक्तों की बदौलत उसकी महिमा का सिक्का चल पड़ा था।

प्रधान बस-अड्डा प्रचार-केंद्र बन गया। बसों पर आनंदीलाल के अनोखे सूत्र लिखे जाने लगे। ''यह संसार खटमल समान है। मैंने खटमल का त्याग कर कोई तीर नहीं मारा।''

मुसलमान पछता रहे थे। गुमनाम अजनबी बेगम शबाना की खोज होते हुए भी काफिरों ने उस पर हिंदू नाम थोप अपना अधिकार जता दिया था। क्या कोई ऐसी तरकीब नहीं सोची जा सकती कि आनंदीलाल अवतार घोषित हो, उससे पहले मोमिन घोषित हो जाए?

इन खुराफाती अंकगणितों के बीच जाने कहाँ-कहाँ से लोग आनंदीलाल के उसूल को ललकारने आते और अंत में उससे प्रभावित हो, उसे एक पैसा दान देकर लौट जाते। एक-एक पैसा कर शाम तक वह पैसों का ढेर समेट लेता।

(ताज्जुब की बात यह थी कि ढेर में से कभी नोट भी निकल आते थे।)

उसका हुलिया बदल गया। नेकर का स्थान कुरते-पायजामे ने ले लिया था। अब वह पहले जैसा सींकिया भी नहीं रहा था।

गाँव के पुरोहित माखनलाल ने जरी की किनारीवाली धोती के पल्लू से चेहरे को हवा देते हुए सोचा, अब अधिक देर भली नहीं, यही अवसर है उसे कृष्णावतार घोषित कर बरगद तले के जमघट से उड़ा ले जाने का; मगर उनकी मुराद उनके मन में ही जल-भुनकर राख होगई।

स्याह चोगे पर सुनहरी हरी पगड़ी बाँधे मुसलमानों के रहबर जनाब रब्बानी 'मुल्ला 'ने ऐसी टाँग अड़ा दी कि चौराहे-चौपाल पर फुसफुसाहट शुरू हो गई—''मूलतः आनंदीलाल मुसलमान है।'' अब करो तहकीकात और उतारो ससुरे का पायजामा!

माखनलाल जी के लिए यही घाव क्या कम था कि आनंदीलाल बरगद छोड़कर बार-बार गाँव की तरफ भागने लगा, जबकि उसे बसों से भरे प्रदूषित माहौल और यात्रियों के हुजूम में खो जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। बस्ती से बाहर सीमांत पर वह सुखी था, मगर वहाँ भी अब पहले सी शांति कहाँ रही थी?

गाँव में कभी वह शराबी-कबाबी रिक्शा चालकों के साथ बेपर की छोड़ता हुआ दिखाई देता तो कभी भिखमंगों की टोली में ठिठोली करता होता। यह और बात थी कि हँसी-मजाक में भी वह गाँठ लगाने जैसा एकाध टुकड़ा अवश्य छोड़ जाता था।

एक तरफ धर्मात्माओं की राजनीति गुल खिला रही थी, दूसरी तरफ आनंदीलाल स्वयं अपनी बनी-बनाई इमेज पर कालिख पोत रहा था। कमतर लोगों से उसका ऐसा बेबाक मेलजोल देख उसके तीनों चेले दिल मसोसकर रह गए।

बरगद की भीड़ छँटती गई। फाकाकशी के दिन अब अधिक दूर नहीं थे, मगर आनंदीलाल को दुनियादारी की ये अनमोल बातें कौन समझाता? कभी खुर्राट कनैयालाल उससे कुछ कहने का साहस करता तो वह बात को आई-गई कर देता, मानो जिक्र धन का नहीं, धूल का हो।

उस दिन छोटे नवाब दिल्ली के किसी शायर मित्र को लिवाने प्रधान बस-अड्डे पर पधारे थे। आनंदीलाल मजे से चिलम फूँकता हुआ कुलियों की जमात में बैठा था। बस के आने में अभी थोड़ा समय था।

नवाब ने अपनी बग्घी पर से ही नजरें झुकाकर उसकी ओर देखा। वह मान नहीं सके कि छह महीनों पहले का सींकिया सा अजनबी यही आनंदीलाल हो सकता है! पट्ठा हराम का माल-मलीदा खाकर काफी तगड़ा हो गया है।

अचानक कुलियों के मजमे से कहकहा उठा। सारे कुली हँसते-हँसते एक-दूसरे को धौल-धप्पे मारने लगे। शायद आनंदीलाल ने कोई लतीफा सुनाया था। अंत में जीवा नामक एक कुली ने उसके हाथ से चिलम लेकर दम भरते हुए पूछा, ''मगर ढब्बूजी कहना क्या चाहते थे?''

''यही कि जिस अतिथि का सत्कार करना चाहिए, वह तो वर्षों से हमारे द्वार खड़ा दस्तक दे रहा है।'' आनंदीलाल ने बताया, ''उसकी तरफ हम ध्यान नहीं देते, क्योंकि हम आँख के अंधे हैं, आज भी उसके आगमन की प्रतीक्षा में नजरें बिछाए हुए हैं।''

कुलियों के पल्ले कुछ नहीं पड़ा। कौन अतिथि? कैसा अतिथि? दस्तक क्यों दे रहा है? उसके कलपुरजे तो सही स्थान पर हैं न? कुली जीवा, जो दो जमात पढ़ा था, वह भी सिर खुजलाने लगा, मगर नवाब ने सारगर्भित वचन पकड़ लिया था। उनकी भृकुटियाँ तन गईं।

चोट गहरी थी, क्योंकि अहं पर लगी थी। आनंदीलाल के चंद शब्दों ने फटेहाल इन अज्ञानियों और उनके बीच का अंतर मिटा दिया था। क्या फर्क था दोनों में? नवाब को भी तो मन के द्वार पर दस्तक दे रहे परमात्मा का एहसास नहीं था।

आनंदीलाल चिलम का अंतिम दम मारकर अपने ठौर जाने के लिए उठा तो उसकी दृष्टि दो घोड़ों की बग्घी पर बैठे, उसे हिकारत से देखते नवाब पर ठहरी।

''हुजूर को बधाई हो।'' मुसकराकर आगे आते हुए उसने कहा, ''मुझे आज ही मालूम हुआ कि आपके घर पालना बँधनेवाला है।''

इस मीरासी का कोई हौसला तो देखे! हमसे हमखयालों सा सुलूक करता है! उससे एक मुलाकात क्या हुई, अपने आपको नवाबजादा समझने लगा।

छोटे नवाब एकटकी बाँध देखते रहे। वह मुसकराता रहा। कटुता और मृदुता की यह अनोखी टक्कर थी। वे ऊँचे स्थान पर बैठे थे, मगर उनकी नजरें झुकी हुई थीं। वह नीचे खड़ा था, मगर उसकी नजरें ऊपर उठी हुई थीं।

''तुम्हें शर्म आनी चाहिए।'' आखिर अकुलाकर वे बोले।

आनंदीलाल ने न यह जानना चाहा कि उससे क्या भूल हुई, न ही उसने प्रत्युत्तर में कुछ कहा। उसके होंठों की मुसकान भी यथावत् बनी रही।

नवाब एक जुम्ला बोलकर फँस गए। सामने से कोई प्रतिक्रिया न मिलने पर उन्हें ही आगे कहना पड़ा, ''बरखुरदार, सेहतमंद लोग मेहनत की रोटी खाते हैं और एक तुम नाकारा हो, जो गैरों के माल पर ऐश करते हो। क्या तुम्हें कभी खयाल नहीं आता, इन मजदूरों की तरह पसीना बहाकर तुम्हें भी हक-हलाल की रोटी खानी चाहिए?''

उत्तर में आनंदीलाल ने सहज ही कहा, ''हाँ...सो तो है।'' और चलता बना।

अब नवाब अपनी बग्घी पर से उतरकर ढाबे पर आए। बस की प्रतीक्षा में बगलें झाँकने से बेहतर उन्हें कुछ शगल करना लगा। वह चाहते थे कि ढाबे के मालिक गुरदास से दिल्ली की कुछ ताजा खबरें जान लें। हिंदुस्तान आजाद हुए अभी साल भर भी पूरा नहीं हुआ था और महात्मा गांधी की हत्या हो गई थी।

वह अपना मुँह खोलें, इससे पहले गुरदास ने फट से आदाब कर गरम चाय की एक मैली प्याली उनके हाथ में थमा दी। उन्होंने सिर पीट लिया।

बेमन से चाय का एक घूँट ले, वह पठानकोट होकर आनेवाली बस के इंतजार में नजरें फैलाए मौन खड़े थे कि गुरदास ने उन्हें फिर छेड़ा, ''गुस्ताखी माफ हुजूर, मगर ये आपने ठीक नहीं किया।''

पलटकर उन्होंने पूछा, ''क्या ठीक नहीं किया?''

''आनंदीलाल को आपने जो डाँट पिलाई।''

नवाब पहले तो तीखी हँसी हँसे, फिर अकड़कर कहा, ''उस पिनकी की किस्मत अच्छी थी कि रियासतें खत्म हो गईं, वरना मरहूम अब्बाहुजूर ने उसको कोल्हू में जोता होता।''

''शायद आप नहीं जानते, सरकार।'' गुरदास ने पूर्ण नम्रता के साथ बताया, ''पिछले एक महीने से वह कुली बनने की फिराक में लगा हुआ है।''

वह सन्न रह गए।

''बस-अड्डे के अधिकारियों से उसने लिखित अरज की है।'' नवाब को साँप सूँघ गया देख उसने आगे कहा, ''मगर कोई उस बेचारे की सुने तब? वे भ्रष्ट बाबू लोग उसे बैज न दें तो वह कुलीगीरी कैसे कर सकता है?''

आनंदीलाल के बारे में नवाब ने जो सोचा था, निकला उससे उलटा ही। अब क्या हो सकता है? थूककर चाटा तो नहीं जा सकता! फिर भी...

किसी तरह प्रायश्चित्त करना अनिवार्य था। मन में बार-बार उठ रही टीस को भी शांत करना था। कमबख्त यह दिल जो शायर का ठहरा, किसी गलाकाटू व्यापारी का होता तो पीड़ा भी नहीं होती।

''एस.टी. वाले बैज न देने की जायज वजह क्या बताते हैं?'' मौन के लंबे अंतराल के बाद बदजायका चाय का दूसरा और अंतिम घूँट भरते हुए उन्होंने पूछा।

''उसके पास न घर है, न राशनकार्ड। न उसके बाप का पता है, न उसकी माँ का।'' गुरदास बता रहा था, ''खैर, ये सब तो दरगुजर किया जा सकता है, मगर बिना जात-पाँत, कुलगोत्र के उसे कौन सरकारी नौकरी देगा?''

''ठीक है, आनंदीलाल को कल हवेली पर भेज देना।'' तुरंत निर्णय लेते हुए उन्होंने कहा, ''हफ्ते-भर में उसे बैज मिल जाएगा।''

उस रोज के बाद आनंदीलाल खुद ही गायब हो गया। वह महीनों लापता रहा।

अलबत्ता समय की इस लंबी अवधि के बीच वह एक दिन के लिए गाँव में दिखाई दिया था। उस दिन बेगम माँ बनी थी।

6

आज आनंदीलाल ने फिर दर्शन दिए। वह असद महल पहुँचा, तब उसे देख न सिर्फ फाटक पर खड़े चौकीदार ने सलाम बजाया, बेगम शबाना की खास दासी रामप्यारी ने उसे बाइज्जत दीवानखाने में बैठने को कहा। उसने बाहर ही सहन के फौवारेवाले चबूतरे पर बैठना पसंद किया। यहाँ बीस से अधिक सफेद कबूतर थे। उन्हें अपने चरणों में दाने चुगते देखना आनंदीलाल के लिए सुखकर था।

भीतर नवाब दाढ़ी बनवा रहे थे। वे शांत थे, मगर नाई स्वत: कुछ कह रहा हो, ऐसे बुदबुदा रहा था। ''ऐसा तो हमने कहीं नहीं देखा।''

उन्होंने तवज्जो नहीं दी तो वह फिर बोला, ''सब गुड़गोबर कर डाला।''

''किसने?''

''बरगदवाले बाबा ने।'' वह तपाक से बोल उठा, ''वह यहाँ गाँव में गुलछर्रे उड़ाते रहे और वहाँ भीड़ उनके दर्शन को तरसती रही। यही क्या कम था कि उन्होंने गाँव से ही मुँह मोड़ लिया। आखिर कोई कब तक किसी की बाट जोहता है? अब वह लौटे तो भक्तजनों का अकाल है...राम! राम!! राम!!! बेड़ा ही गर्क कर डाला!''

''कनैयालाल!'' दाढ़ी बन जाने पर शीशे में अपनी पतली मूँछें और चिकनी सूरत देखते हुए छोटे नवाब ने चुहल की, ''तुम्हारे मुर्सिद अपनी नाव खेवें या डुबो दें, इससे तुम्हें क्या लेना-देना?''

''क्या कहते हैं आलीजाह!'' नाई ने शीशे में ही उनसे आँखें मिलाने का प्रयास करते हुए बताया, ''उनके पूजनीय बने रहने से मुझ जैसे कई दुखियारों का लाभ था। वे सिर्फ एक पैसा लेते थे, हमें वैसी कोई बाधा नहीं थी। मैंने तो अपना पुश्तैनी धंधा छोड़ संन्यास लेने का फैसला भी कर लिया था।''

अंत में नाई ने एक गहरी साँस लेकर जोड़ा—''हाय रे नसीब...कर्मों के फल सभी को भुगतने पड़ते हैं, फिर भी हुजूर चाहें तो इस गरीब की बिगड़ी को बना सकते हैं।''

''वह कैसे?''

''बेगम साहिबा एक इशारा कर दें तो वह भीगी बिल्ली बन फिर धंधे पर बैठ जाएँगे।''

यह सुनकर सआदत जाँ का दिमाग एक साथ कई कलाबाजियाँ दिखाकर चौपट ही हो गया।

नाई ने उनके हाथ से शीशा लेकर पेटी में रखते हुए स्पष्ट किया, ''बात दरअसल यों हुई कि एक रोज हमारे थानेदार साहब ने बरगद वाले बाबा से उनके माता-पिता के बारे में सवाल किए थे। उनका जवाब था—बाप आकाश पर रहता है और माँ धरती पर। किसी की समझ में कुछ नहीं आया, तब उन्होंने बेगम साहिबा का नाम लेकर बताया था कि वही देवी उसकी माँ है। हुजूर, वे बहुत मानते हैं उन्हें...'

छोटे नवाब को किसी ने गुदगुदी की हो, ऐसे वे हँस दिए। माँ अठारह वर्ष की और बेटा तेईस का!

नापित कुछ आगे कहता, इससे पहले बेगम शबाना ने दहलीज पर उपस्थित होकर नवाब को दूर से ही एक अजीब संकेत दिया। वे नाई को बकझक करता हुआ छोड़ दबे पाँव बेगम के पास आए तो उसने अपने होंठों पर उँगली रख नवाब को मौन रहने का दूसरा संकेत दिया।

रहस्य गहरा गया। आखिर मामला क्या है? बेगम आगे-आगे चली। अपने विचारों में गोते लगाते हुए वे पीछे-पीछे डग भरने लगे। दालान-दर-दालान होते हुए सीढ़ियाँ चढ़कर वे शयनागार की चौखट पर आए और उनकी आँखों के साथ उनके पाँव भी जम गए।

भीतर दोजानू बैठा आनंदीलाल पालने में लेटे हुए बच्चे का मन बहला रहा था। उसकी विचित्र मुखमुद्राएँ और विदूषक सी हरकतें देख, बच्चा अपनी मुट्ठियाँ उछालकर किलकारियाँ मारता था।

वास्तव में आनंदीलाल स्वयं एक नन्हा बालक बन गया था। वह भूल गया था कि छोटे नवाब ने उसे सिफारिशी पत्र देने के लिए यहाँ बुलवाया है। उसे यह भी सुध नहीं थी कि गैर मर्दों को अंत:पुर में कदम रखने की इजाजत नहीं होती।

वह भी क्या करता? खुले सहन में सफेद कबूतरों को दाने चुगते हुए देख वह बुलावे की प्रतीक्षा कर रहा था और उसने बच्चे के रोने की आवाज सुनी। वह बेचैन हो उठा। अब उसके लिए शांति से बैठना मुमकिन नहीं था। तुरंत वह उठ खड़ा हुआ और आवाज की डोर पकड़कर यहाँ चला आया।

नवाब ने भीतर से नजरें समेटकर पास खड़ी बेगम को देखा। आँखों-आँखों में ही दोनों ने समझ लिया, उनके विचारों की लकीर एक थी। क्यों न आनंदीलाल को हवेली पर नौकर रख लिया जाए?

काश कि यह संभव होता! माली, नौकर, खादिम, साईसों के काफिलों की छँटनी कब की शुरू हो चुकी थी। वर्षों पुराने बावरची नम आँखें लिये बिदा ले रहे थे। हिसाब कटौती का जोड़ा जा रहा हो, वहाँ एक नए सेवक के शुमार का खयाल ही अनुचित था। आनंदीलाल को हफ्ते के बजाय तीन दिनों में बैज मिल गया। चौथी तिथि होली की थी। उसी त्योहार के शुभ दिन से उसने कुली का काम प्रारंभ किया, मगर इससे पहले उसने फिर एक बार सनसनी फैला दी।

बूँद-बूँदकर जैसे टंकी भरती है, एक-एक पैसा जोड़कर आनंदीलाल ने एक महाजन के यहाँ दस हजार रुपए इकट्ठा किए थे। कुली का बैज मिलने की खुशी में उसने चौक के बीच उन सारे नोटों की गड्डियों को जलाकर धूम से होली मनाई।

7

अपनी यादों के चंद गलियारे पार कर बूढ़ी बेगम हरिहरन फूलवाले की दुकान पर रुकी। उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। फूलवाले ने दोने की एक पुड़िया के साथ थोड़ी धूपबत्तियाँ उसके आगे बढ़ा दीं।

पिछले दस वर्षों से आनंदीलाल की बैठक यहीं थी। वह जुमेरात-जुमेरात यहीं आकर बैठता था। उसके कलकल बहते झरने से जीवन में पहली बार अनुशासन आया था : सप्ताह में एक रोज फूलों के बीच महकते हुए बैठना। यही तो तिथि थी असद महल के अँधेरों से निकल बूढ़ी बेगम के यहाँ से गुजरने की।

उसे दूर से आती देख आनंदीलाल चुने हुए ताजा फूलों के गुलदस्ते के साथ उसका मार्ग रोककर खड़ा हो जाता। जैसे ही वह पास आती, आनंदीलाल उसके चरण छूकर कहता, ''ये चढ़ावा स्वीकार करें, देवी माँ!''

पता नहीं आज आनंदीलाल कैसे चूक गया था!

बूढ़ी बेगम को अपने स्थान पर गुमसुम खड़ी पाकर हरिहरन ने अपनी तरफ से थोड़े ताजा गुलाब दिए। उसने नाक पर उतर आई चाँदी की कमानीवाली ऐनक को ऊपर खिसकाते हुए सवालिया नजरों से फूलवाले को देखा। बूढ़ी बेगम की तसल्ली के लिए वह झूठ बोला, ''आनंदीलाल की ओर से है।''

जी चाहा, वह फूलवाले से पूछे कि देवी माँ का भक्त आज कहाँ खो गया है? पर इससे क्या लाभ? तितली का पता भला कोई फूलों से थोड़े ही पूछता है?

अपना घर फूँककर तमाशा देखनेवाले के जीवनकाल में थोड़े वर्षों के लिए आया अनुशासन भी बेमानी था, वैसे

ही, जैसे इस संसार की सदियाँ समस्त ब्रह्मांड के दिक् और काल में क्षणभर के बराबर होती हैं।

बूढ़ी बेगम ने मान लिया, मनमौजी आनंदीलाल झील पर बैठा बाँसुरी बजाता होगा या चिनार-बाग के दरख्तों के झुरमुट में लेटकर चिड़ियों से बतियाता होगा। परिंदों से उनकी बोली में गुफ्तगू करते हुए उसे देखना गाँववालों के लिए जितना विस्मयकारी था, उतना ही मनोरंजक भी था।

नवाब कहते, ''बेगम, ये उसके ईमान, उसकी श्रद्धा का बेमिसाल सबूत है। कुरानशरीफ में हजरत यूसुफ के बारे में जिक्र है कि आप परिंदों की जबान बोलते थे। आनंदीलाल ने हमारे यकीन को और पुख्ता कर दिया है।''

मनुष्यों की छाया से अंतर रखनेवाले परिंदे उसके मित्र कैसे बने, यह अध्ययन का विषय था। वैसे जानवरों से भी उसका रिश्ता कुछ कम दिलचस्प नहीं था। उसका यह पहलू उजागर होकर तब सामने आया, जब वह कुली नहीं, डाकिया था।

डाकघर की नौकरी के लिए उसकी सिफारिश करने से पहले नवाब सआदत जां ने उसका विस्तार से जो साक्षात्कार लिया था, उसके कुछ अंश—

नवाब : तुम्हारा घर कहाँ है?

आनंदी : कहीं नहीं, सरकार।

नवाब : क्या मतलब?

आनंदी : यह संसार एक पुल के समान है और पुल का उपयोग एक तरफ से दूसरी तरफ जाने के लिए होना चाहिए, उस पर घर बसाने के लिए नहीं।

नवाब : तुम कहीं तो रहते होगे?

आनंदी : कभी झील पर, कभी चिनार-बाग में, कभी गुलमोहर की छाँव में।

नवाब : तुम्हारी पढ़ाई कहाँ हुई?

आनंदी : निसर्ग की गोद में।

नवाब : हमारा मतलब है, किस गाँव के किस स्कूल में?

आनंदी : हुजूर, सबसे बड़ी पाठशाला तो छलिए का रचा हुआ यह संसार है।

नवाब : तुम हमारे सवालों के जवाब ठीक से नहीं दोगे तो हम भी तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर पाएँगे। बताओ, तुम कहाँ के हो? इस गाँव में कहाँ से आए हो?

आनंदी : आलीजा, यह तो आज तक कोई नहीं जान पाया कि गंगा कहाँ से आती है और कहाँ चली जाती है। ना ही उसकी मौजों ने कभी यह जानने की परवाह की। वे तो अपनी मस्ती में गुनगुनाती हुई बहती चली जाती है। क्यों न हम और आप इन पेचीदा सवालों में उलझने के बजाय गंगा की धारा की तरह बहते चलें।

नवाब : कितना पढ़े हो?

आनंदी : अँगूठाछाप हूँ, सरकार।

नवाब : थोड़ा-बहुत भी पढ़-लिख नहीं सकते?

आनंदी : बस, उतना जानता हूँ, ताकि मेरा काम चल सके।

कंधे पर झोला डाल जब आनंदीलाल डाक बाँटने वरदी में निकलता, गाँव के कुत्ते उसके आगे-पीछे दुम हिलाते गर्व से चलते। वह जिस गली में प्रविष्ट होता, वहाँ के कुत्ते बॉडीगार्ड की तरह उसका साथ देते और जहाँ उनकी सीमा आ जाती, मानो वे दूसरी गली के कुत्तों की हिफाजत में उसे सौंप लौट आते।

रोजे-इतवार को एक अजूबा देखा गया। छुट्टी के उस दिन बेगम शबाना के पुत्ररत्न अकीक का पाँचवाँ जन्मदिन

था। नवाब ने अपने मित्रों-परिचितों के साथ आनंदीलाल को भी जश्ने-सालगिरह में निमंत्रित किया था।

नवाब और बेगम तैयार होकर असद महल के झरोखे में खड़े शेरपा तेनजिंग और एडमंड हिलेरी के कारनामे की दाद दे रहे थे। उसी रोज एवरेस्ट के उनके सफल अभियान की सूचना मिली थी। वैसे जश्न शुरू होने में भी अभी घंटा भर बाकी था।

बर्फ से ढके दूर के शिखरों पर झूलता सूरज आकाश से कन्नी काट लुप्त हो जाने की कोशिश में था। प्रतिवर्ष बीस से बाईस हजार मील का सफर तय करनेवाले यायावर अबाबील अपने देश लौट जाने के लिए झील पर इकट्ठा हो रहे थे। कुछ बिजली के तारों पर भी बैठे दिखाई देते थे।

ऐसी सुहावनी ऋतु में बिना झोला डाले आनंदीलाल डाकिया वरदी में आता हुआ दिखाई दिया। उसके पीछे-पीछे एक मोर डग भर रहा था। नवाब और बेगम ने अचरज से एक-दूसरे को देखा, फिर झरोखे से नीचे देखने लगे।

चलते-चलते आनंदीलाल अपनी तसल्ली के लिए मुड़कर देख लेता था। मोर को कदम-ब-कदम पीछे आता जान उसकी अपनी गरदन भी थोड़ी और ऊँची हो जाती थी। इस प्रसंग के बाद उसने तीतर, बया, तोते, कोयल आदि कई परिंदों से मेलजोल बढ़ाया था।

8

ऐसे अलबेले जोगी का ठौर-ठिकाना कैसा? बेचारा हरिहरन फूलवाला क्या जाने कि इस समय वह कहाँ होगा?

बूढ़ी बेगम में अब पहले सा कुतूहल भी कहाँ रहा था? जब से नवाब का स्वर्गवास हुआ, उसका हृदय तिल-तिल मरा था। मानो उस लोक में जाते-जाते नवाब उसकी कामनाओं को भी हर ले गए थे। अब तो भीतर एक चिनगारी भी नहीं बची थी, जिसके बल पर बाकी उम्र काटी जा सके।

बूढ़ी बेगम फिर आगे बढ़ी। उसे क्या पता था कि जैसे आनंदीलाल की उपस्थिति कुछ माने रखती थी, उसकी अनुपस्थिति में भी कोई मर्म होता था, बल्कि उसकी हर एक हरकत गौरतलब होती थी। होगी...

बूढ़ी बेगम को अब किसी चीज में रुचि नहीं थी। काफी कुछ देख लिया था—साठ वर्ष लंबी इस आयु की अवधि में। अपने विवाह से केवल तीन महीने पहले उसने अंग्रेजों को भारत छोड़ते हुए और पति के स्वर्गवास के बाद इंदिरा सरकार को गिरते हुए देखा था। अब उसमें नए अनुभवों के शुमार की न इच्छा थी, न गुंजाइश।

इस उपेक्षा का एक कारण और भी था। भीतर कहीं हिलोरें लेती तजुरबों की ये लहरें रफ्ता-रफ्ता जमकर बर्फ बन जाती थीं। बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक का क्रम यों ही चला था। अब बर्फ के वे सारे चौखंडे पिघलने लगे थे। अतीत की स्मृतियाँ उभरकर धुँधली आँखों पर छाने लगी थीं। फर्क सिर्फ इतना था, इनमें कोई क्रम नहीं था।

चलते-चलते वह कभी दूर के अतीत में झाँक लेती तो कभी पास के। कभी उसे सावन के झूले याद आते, तो कभी प्रसव की सुखद पीड़ा। कभी ससुराल के दिनों को पर लग जाते, तो कभी मायका पंख फड़फड़ाता। वह बीच राह में ही रुक, अपनी नक्काशी की हुई लकड़ी पर दोनों हाथ टिकाकर थोड़ा हँस या रो लेती।

इन रास्तों से उसका वर्षों पुराना रिश्ता था। यहाँ के हर मोड़ पर खड़े कई छोटे-बड़े निशान इस अवस्था में भी उसके मन पर स्पष्ट अंकित थे। यहाँ की कौन सी सड़क भवाली और मुक्तेश्वर जाती है और किस मार्ग से दुलहन बनकर उसने पहली बार गाँव गलानियाँ में कदम रखा था, यह दर्शाना उसके लिए उतना ही सहज था, जितना कि दो प्रेमियों के लिए आँखों-आँखों में मन की भावनाओं को समझना होता है।

तब बेगम शबाना जवान थी। उसकी चाल में नजाकत थी (चलते-चलते वह जूतियाँ नहीं घिसटती थी)। उसकी कजरारी बड़ी-बड़ी आँखों में नशा था, रहस्यमय आवाज में जादू। 'तालकटोरा' में कहा जाता था—ताजियादारी तो कोई शबाना से सीखे, मर्सियाखानी तो कोई उससे सुने।

जन्नतनशीन नवाब अमीरुद्दौला के बेटे, छोटे नवाब सआदत जाँ ने वह सुनी और दिल दे बैठे।

उस वर्ष सआदत जाँ मोहर्रम मनाने के लिए पड़ोस के गाँव तालकटोरा की करबला में तालाब के इस पार अपना तंबू ताने हुए थे। साथ में हमउम्र तीन मित्र और दो खादिम भी थे। रात में देर तक इमामबाड़े की मजलिसें सुनना और लौटकर दिन चढ़े तक सोए रहना, यह उनका दस दिनों का कार्यक्रम था।

नौवें रोज यानी कि शबे-आशूर को वे अपने मित्रों के साथ इमामबाड़े का जुलूस देखने के लिए शाम से ही वहाँ पहुँचे थे। भीड़ इतनी थी कि किसी को किसी का होश न था। थाली फेंको तो सिर-ही-सिर पर से गुजर जाए। मित्र खो गए। जुलूस भी काफी लंबा-चौड़ा था, अफ्रीका के अजदहे की मानिंद रेंगता हुआ इमामबाड़े के सहन से निकला था।

उसकी विशेषता यह थी कि रामलीला की भाँति उसमें शहीदे-करबला के इतिहास के चुने हुए अंशों को जीवंत रूप में पेश किया गया था। कोई अजादार हाथ में नेजा लिये यजीद बना था, तो कोई तलवार उठाए अब्बास

अलमबरदार। कोई हनुमान की तरह अपना चेहरा रँगकर शीमर के भेस में था तो कोई आबिदे-बीमार।

नगाड़ों की आवाजें, 'या हुसैन' के निरंतर नारे और बर्छियोंवाली जंजीरों की खनखनाहट में हो रहे मातम को आँखों में नमी लिये देख रहे सआदत जाँ के सामने से जब बीबी फातिमा तथा उसके दुलारे अली असगर का लहूलुहान झूला गुजरा, वे सुबकने लगे।

मंजर ही ऐसा संतापकारी था। क्या हिंदू, क्या मुसलमान, सड़क के दोनों किनारे लहराती भीड़ पर गम की काली घटा उतर आई थी। चारों ओर से बिलख-बिलखकर रोने-चीखने की आवाजें उठती थीं। कई श्रद्धालु मातम करते हुए गश खाकर जहाँ के तहाँ ढह गए थे।

गम से सराबोर रात के तीसरे पहर सआदत जाँ अपने ठौर अकेले लौटकर लेटे ही थे कि सन्नाटे में उन्होंने दर्द भरी एक मधुर आवाज सुनी। वे उठकर तंबू से बाहर आए और हतप्रभ रह गए।

चारों तरफ चाँदी के वर्क सी चाँदनी बिखरी पड़ी थी। (क्या वह इमामबाड़े के सहन में भी थी?) तालाब में लेटे हुए चंद्रमा का अक्स अशांत जीव की तरह हिल-डुल रहा था। उस पार खँडहर और कँगूरे थे। उसी दिशा से काली पोशाक में लिपटी हुई बेनकाब औरतों की एक टोली ताजिया लिये आ रही थी, सभी के बाल खुले थे।

आगे-आगे चल रही एक स्त्री के हाथ में मशाल थी। उसके प्रकाश में जामाजेब शबाना मीर अनीस के संकलन से पढ़कर तरन्नुम में सोज गा रही थी। शेष स्त्रियाँ उसका साथ देती थीं।

जब कारवाँए-शहर मदीना लुटा हुआ
पहुँचा करीब शाम के कैदी बना हुआ
नेजे पर सिर हुसैन का आगे धरा हुआ
और पीछे-पीछे बीसियों का सिर खुला हुआ

वह गूँजता हुआ सन्नाटा, रात का वह अंतिम पहर, बिछी हुई चाँदनी, खुले सिर मातम करती हुई आ रही वे स्त्रियाँ और शबाना की करुणामयी धुन...ऐसी रोमांचक फिजा में सआदत जाँ के स्थान पर शबे-आशूर के बोझ तले दबा हुआ कोई दूसरा युवक होता तो उसके दु:ख का भी रूपांतर हो जाता।

उसी घटना को लेकर विवाह के बाद शबाना ने एक रोज प्रश्न उछाला था। रात गम की और जज्बा इश्क का? उनका उत्तर संक्षिप्त था। ''शबे-गम थी और चाँदनी भी। भला चाँद को हम कैसे नजरअंदाज करते?''

9

बूढ़ी बेगम के बढ़ते हुए कदम फिर थम गए। मौसम करवट ले रहा था। धूप फीकी पड़ती जा रही थी। फिर से हिमवर्षा होने के संकेत फिजा में थे, मगर आज उसे होश कहाँ था?

यादों के सजदों के बोसे लेती हुई वह मोहर्रम और ताजियादारी से बाँह छुड़ाकर दोबारा विवाह के प्रारंभ के दिनों में लौट आई। उन मोहक दिनों के साथ आनंदीलाल अटूट कड़ी की तरह जुड़ा हुआ था।

कुली बनने के बाद उसे नवाब सआदत जाँ के आदर्श परिवार का सदस्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसका मन करता, तब वह असद महल चला आता; जी चाहता तब लौट जाता। भोजनपान का समय होता, तब दो निवाले खा लेता, नहीं मिलता, तब भी उसे कोई शिकायत नहीं थी।

न उसपर कोई रोक-टोक थी, न ही उसके लिए हवेली में कोई परदा था। लज्जावश उससे घूँघट भी कौन काढ़ता?

नवाब के दो छोटे भाई थे, जिनमें से मँझला विभाजन के बाद पाकिस्तान में स्थायी हुआ था। वह वकील था और वहीं किसी मुसलिम लीग के नेता की लड़की से चोरी-चोरी अपनी वकालत कर घर-गृहस्थी बसा ली थी।

दूसरा अमरीका में डॉक्टर था। सबसे छोटा होने के नाते उससे माँ का लगाव अधिक था, सो वह अपने साथ अम्मीजान को भी लेता गया। वालिद मरहूम का इंतकाल रियासतें समाप्त होने के आघात से स्वतंत्रता के सप्ताह भर बाद ही हो गया था।

ले-देकर हवेली में नवाब, बेगम और छोटे मियाँ, तीन जीव बचे थे। आनंदीलाल से बेगम शबाना तो परदापोशी नहीं कर सकती। माँ से बेटे का हिजाब कैसा? वैसे भी नवाब अधिक नहीं तो कम प्रगतिवादी भी नहीं थे।

मसलन, अपनी नई-नवेली दुलहन को बग्घी में बेनकाब बिठाकर गाँव की सैर कराना उन दिनों तो क्या, कंप्यूटर के इस युग में भी दकियानूस परिवारों में कयामत के आने की एक निशानी समझा जाता है।

आनंदीलाल जब भी हवेली पर आता, बाल अकीक के कमरे में चला जाता। वैसे नवाब के मुलाकातियों का ताँता सुबह से लगा रहता था। जो भी शख्स पधारता, वह सीधा नवाब के दरबार में घुसा चला जाता। उन सबका अपना-अपना कोई मतलब होता था। आनंदीलाल कभी किसी स्वार्थ से यहाँ नहीं आया। (पहली बार भी नहीं, क्योंकि सिफारिशी-पत्र के लिए वह बाइज्जत बुलवाया गया था।) सच्चाई यह भी थी कि इस दर से कुछ लेने के बजाय हमेशा वह उपहार में कुछ देकर जाता था।

वह था उसका निर्मल, स्फटिक सा पवित्र प्रेम, उसकी निर्दोष शिशु सी मधुर मुसकान, कैसे भी तनावग्रस्त वातावरण को शांत करनेवाली उसकी शीतल तरंगें।

कभी उसे देखकर बेगम शबाना को विचार आता—गाँव गलानियाँ में इत्ते सारे घर हैं, पिछले दशक में एक से बढ़कर एक कई बँगले बने हैं, फिर भी खुदा का यह बंदा केवल यहाँ आना क्यों पसंद करता होगा?

इस प्रश्न का उत्तर बेगम को एक ही मिलता, वह अकेला था। 'बेचारे का कोई भी तो नहीं है, इस भरी-पूरी दुनिया में...' मगर जब वह गायब हो जाता, महीनों दिखाई नहीं देता। फिर एक रोज अलादीन के जिन्न की भाँति अचानक उपस्थित होकर ऊँची आवाज में घोषणा करता, ''पाय लागूँ देवी माँ, हुजूर को आदाब।''

चाहे वे दोनों मौजूद हों या नहीं, वह अपने आगमन की सूचना हवेली की दीवारों को देता हुआ सीधा लल्ले के कमरे में पहुँच जाता।

उसके पहनावे में अब तक कोई खास फर्क नहीं आया था। वही लंबे बेतरतीब केश, सफेद मगर मैला कुरता-पायजामा और पाँवों में कैनवास के फटे जूते, जिसमें से उसकी दो उँगलियाँ दिखाई देती थीं।

अगर गौर से देखा जाए तो उसमें थोड़ी तब्दीली भी आई थी। उसके वस्त्रों पर रंग-बिरंगी चिंदियों के पैबंद लगने शुरू हो गए थे। उसके सीने पर सोते-जागते कुली का बैज लगा रहता था। दूसरे, भारी माल-सामान उठाने के कारण बाढ़ के पानी की तरह उसके शरीर पर से चरबी की परतें उतर गई थीं। अब वह छरहरा मर्द लगता था।

काबिले-दीद उसमें एक बात और थी और वह थी—उसके साथ आते परिंदे। कभी उसके माथे पर बुलबुल बैठी होती तो कभी उसकी कलाई पर नीलकंठ दिखाई देता। जाने वह कहाँ से इन परिंदों को खोज लाता था? शायद झील पर से, शायद पहाड़ियों तले के शांतिवन से या फिर ये पखेरू ही उसे तलाशते हुए आते हों, तब भी कोई अचरज नहीं। आज उसके कंधे पर एक कठफोड़वा बैठा था। उसे आया देख नन्हा अकीक हर्षोन्मत्त होकर तालियाँ बजा उठा। फिर अपने पलंग पर से फिसल आनंदीलाल के पास दौड़ आते हुए उसने प्रश्नों की झड़ी बरसानी शुरू कर दी।

''अंकल, इसकी पीठ हरी क्यों है?''

आनंदीलाल ने फर्श के गलीचे पर पालथी मारकर बैठते हुए बताया, ''गीर के वन में इस जाति के कठफोड़वे पाए जाते हैं।''

''तब यह यहाँ क्यों आया?''

उसे व्यंग्य सूझा, ''यह जाँबाज भारत-जोड़ो यात्रा पर निकला है।'' गर्व से उसने बच्चे को समझाया, ''चाहता है कि इस देश के सारे परिंदे एक हो जाएँ, बड़ा परिंदा छोटे को कभी न मारे।''

''यह तो हो ही नहीं सकता, अंकल, गिद्ध छोटी चिड़ियों को अपने पंजों में दबोचकर खा जाता है।''

''यह भी सच।''

''तब इसकी यात्रा का क्या मतलब?''

''कुछ भी नहीं।''

''फिर यह अपना घोंसला छोड़, निकला क्यों?''

''है मुझ जैसा बौड़म।'' थोड़ा रुककर उसने अपनी विशेष मुसकान फैलाते हुए कहा, ''बेटा, कोशिश करने में तो कोई हर्ज नहीं।''

कुछ सोचते हुए अकीक घुटनों के बल बैठ गया। ''अंकल, क्या यह सचमुच कठफोड़वा है?''

''बिलकुल।''

''मैं कैसे मानूँ?''

''इसे ध्यान से देखो।'' कहते हुए आनंदीलाल ने कठफोड़वे को कंधे पर से कलाई पर लिया और अकीक के आगे बढ़ाया। ''इसके पाँव साधारण पक्षियों जैसे नहीं हैं, बल्कि एक-एक पाँव में दो-दो उँगलियाँ आगे और दो-दो पीछे हैं।''

''अंकल, इसे कठफोड़वा क्यों कहते हैं?'' यह प्रश्न उसने सोच-समझकर किया था। पिछले कुछ सप्ताह से वह एक दुकान में देखी हुई खिलौने के आकारवाली कुरसी खरीदना चाहता था। उसने सोचा, जब तक अपनी पुरानी कुरसी नहीं टूटेगी, नई कभी भी नहीं आएगी।

''क्योंकि...' आनंदीलाल ने निर्दोषता से जवाब देते हुए कहा, ''अपनी नुकीली चोंच से यह पक्षी कैसी भी लकड़ी तोड़ सकता है।''

''सब झूठ। सरासर झूठ।''

''अंकल कभी झूठ नहीं बोलते।''

चतुराई से उसने आनंदीलाल को उकसाया, ''आज बोल रहे हैं।''

''आजमाकर देख लो।''

''अपने जाँबाज से कहो कि मेरी कुरसी की एक टाँग तोड़कर दिखाए।''

आनंदीलाल ने तैश में आकर कठफोड़वे को अपनी कलाई पर से कुरसी पर लिया। वह तुरंत शुरू हो गया। 'खट्-खट्' की क्रमबद्ध ध्वनियाँ हवेली में गूँज उठीं। अकीक प्रसन्न होकर किलकारियाँ मारने लगा।

अभी कुरसी में केवल एक छेद पड़ा था और कठफोड़वे ने पंख फड़फड़ाए। देखते-ही-देखते वह उड़ता हुआ खुली खिड़की से बाहर भी निकल गया। दोनों एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। वे कुछ समझ पाएँ, इससे पहले पीछे से बम फूटा—

''**आनंदीलाल!**''

पलटकर देखा तो कमरे की चौखट पर नवाब खड़े थे। उनके तेवर से साफ जाहिर था कि वह खफा हैं।

चुपके से खिसक अकीक अपना बस्ता खोलकर पलंग पर बैठ गया।

आनंदीलाल ने खड़े होकर आदाब किया।

''कम-से-कम तुम्हें सौ कोड़े मारने चाहिए।''

उत्तर में वह मुसकराया तो नवाब का पारा और चढ़ा, ''क्या तुम यह भी जानना नहीं चाहते कि तुमसे क्या गुस्ताखी हुई है?''

''जरूर कोई भारी भूल हुई होगी,'' उसने अदब से कहा, ''वरना हुजूरेवाला मुझपर थोड़े ही नाराज होते!''

अब तक बेगम शबाना भी आकर नवाब के पीछे खड़ी हो गई थी।

''अपने साथियों को तुम क्या फतवे सुनाते रहते हो?''

आनंदीलाल ने अपने दिमाग पर जोर डाला। बहुत सिर मारने पर भी उसे कोई ऐसी बात याद नहीं आई, जो सरकार को आपत्तिजनक लगे।

''क्या तुम मुसलमान कुलियों को नहीं बहकाते कि वे नमाज पढ़ने के लिए मसजिद में न जाएँ, वो खुदा का घर नहीं है?'' नवाब बरस पड़े, ''क्या हिंदू मजदूरों को नसीहत नहीं देते कि गाँव के मंदिर का ढाँचा ढहा दिया जाए, उसमें कोई भगवान्-वगवान नहीं रहते?''

''हाँ... सो तो है।''

''क्या खाक सो तो है!''

''हुजूर, जो घर में खो गया हो, उसे बाहर खोजने में कैसा तर्क?'' आनंदीलाल की आक्रामक वाणी कड़की, ''यह शरीर तो ठाकुरद्वार है। इसमें अनहद शब्द का अगम नाद बज रहा है, फिर भी लोग घंटे और शंख की कर्णकटु आवाज सुनने के लिए मंदिरों में क्यों जाते हैं? क्यों वहाँ मिट्टी के दीए जलाते हैं, जबकि भीतर नूर की ज्योति जल रही है?''

एक ही साँस में काफी कुछ कहकर वह थोड़ा नम्र हो गया, ''सरकार तो बड़े नामी शायर हैं, अपने शास्त्रों के ज्ञाता भी हैं। क्या रब ने कुरान शरीफ में नहीं फरमाया : अलीफ लाम मीम...यकीनन मैं तुम्हारे भीतर विराजमान हूँ। क्या वेदों में नहीं कहा—सोऽहं?''

''मगर इससे तुम्हें क्या मतलब?'' नवाब परेशान होकर बोल उठे। उनका स्वर भी ऊँचा हो गया, ''क्या तुम कोई पीर-औलिया हो? शेखे-हर-दो आलम हो?''

''यह क्या कहते हैं, आली जाह?'' वह रिरियाया, ''मैं तो एक अँगूठाछाप कुली हूँ।''

''तब अपनी जबान को लगाम देना सीखो, वरना किसी रोज बेमौत मारे जाओगे।''

''जो स्वयं मुरदा हो, उसे मौत का खौफ कैसा?''

''खामोश!'' नवाब चिल्लाए।

वह सिहर गया।

अब तक तमाशबीन की भाँति नवाब के पीछे खड़ी हुई बेगम एकबारगी बोल उठी, ''वो ठीक ही तो कहते हैं, जी।''

नवाब लट्टू की तरह घूम गए। आँखें चार हुईं। वह आनंदीलाल को भूलकर बेगम को ही डाँट पिलाने लगे, ''आप जानती हैं, इस फसादी के सच बोलने का नतीजा क्या निकला?'' उनके दीदे देखकर बेगम मौन रही तो उन्होंने ही आगे कहा, ''दोनों कौमों के कठमुल्ले एक हो गए।''

''लो जी...यह तो खुशी की बात हुई।'' तंग वातावरण को हलका करने का प्रयास करते हुए वह बोली, ''कल

तक जो लोग एक-दूसरे के लहू के प्यासे थे, वो आज गले मिल रहे हैं।''

''अब दु:ख की बात सुनो, बेगम।'' उनकी आवाज पर बेगम के व्यंग्य का प्रभाव था, ''देवी माँ के लाड़ले को महंत केवलानंदजी ने कल बुलवाया है।''

आनंदीलाल उछल पड़ा। यह जानने के बजाय कि मठाधीश ने उसे सजा फटकारने के लिए बुलवाया है या तमगा देने, वह आनंद से भर्राए हुए स्वर में बोला, ''इतने बड़े महात्मा मुझसे मिलना चाहते हैं? मैं अभी ही उनके दर्शन को जाता हूँ।''

नवाब उसे रोकते, कुछ और कहते, इससे पहले तो वह असद महल के फाटक से बाहर निकल गया था। असमंजस में पड़ी बेगम अभी भी उसी दिशा में देख रही थी। ''क्या सोच रही हैं आप?'' उन्होंने प्यार से पूछा।

बेगम ने उनकी तरफ मुड़ते हुए चिंतित स्वर में बताया, ''यही कि अब क्या होगा हमारे भोले मौला का?''

''इस बार उसने साँप के बिल में हाथ डाला है। खुदा खैर करे।''

''क्या सजा देंगे उसे मठवाले?''

''उसे काफिर करार देकर धर्म से बाहर कर देंगे।''

''मगर वह तो पहले से ही मजहब के दायरे से बाहर खड़ा शख्स है।''

बेगम की बात गलत नहीं थी। आनंदीलाल के कुल-गोत्र के विषय में आज भी कुछ निश्चित नहीं था, तब दावे के साथ यह कैसे कहा जा सकता है कि वह हिंदू है या मुसलमान? रहा प्रश्न उसके नाम का, तो वह कनैयालाल नाई की देन था।

हकीकत चाहे जो भी हो, अब तक यह स्वीकार कर लिया गया था कि आनंदीलाल हिंदू है और हिंदू धर्म में नुक्ताचीनी करने का जन्मसिद्ध अधिकार केवल मठाधीश केवलानंद का था। कोई छुटभैया ऐसी गुस्ताखी कैसे कर सकता है?

शांतिमठ के महंत से उसकी एक झड़प पहले होली के रोज हो चुकी थी। फाग खेल वह भंग के नशे में धुत्त होकर मैले पानी के चहबच्चे में चित् गिरा था, खड़े होने के लिए कछुए की तरह हाथ-पाँव मार रहा था। उसकी हरकतें देख वहाँ से हाथी पर सवार होकर गुजरते हुए हाथी के बच्चे से मठाधीश मुसकरा दिए।

आनंदीलाल ने तभी उठ खड़े होते हुए सिर उठा कर कहा, ''महात्मन्! मुझे तो गिरकर सँभल जाने की आदत है, कीचड़ सने अपने वस्त्र झाड़कर मैं आगे भी बढ़ जाऊँगा; मगर याद रहे, जिस रोज आपका पाँव फिसला, बड़ी मुश्किल होगी, क्योंकि आपके पीछे आपके सारे शिष्य भी गड्ढे में पड़ेंगे।''

महंत केवलानंद के लिए उसकी स्पष्ट वाणी सुइयों की चुभन थी और डंकों की करारी चोट भी। वह तिलमिलाकर रह गए। रंगों का, हँसी-मजाक का त्योहार जो था। अब वैसी कोई बाधा नहीं थी। ''नादान छोकरे ने खुद ही अपनी गरदन फँसा ली है।'' वह प्रसन्न थे। क्यों न होते? चारों वेद के साथ वे शास्त्रों को भी घोलकर पी गए थे। वे धर्मशास्त्र के महापंडित थे।

केवल पंडित, आत्मसात् सद्गुरु नहीं। यदि होते तो कम-से-कम जीवन की सार्थकता का जो बुनियादी नुस्खा औघड़ आनंदीलाल ने समझा था, उनके पल्ले भी अवश्य पड़ता : 'हमारा कल्याण दूसरों के अनुभव पढ़ने से नहीं, खुद के अनुभव प्राप्त करने में है। प्यास पानी पीने से बुझती है, पानी की महिमा के सुंदर बखान करने से नहीं।'

महंत को शास्त्रार्थ का भी बड़ा चस्का था। अपने अहंकार को हवा देने का यह उनका प्रिय शौक था। मठ में ठहरा हुआ कोई संन्यासी भूल से भी अध्यात्म के विषय में छेड़खानी करता तो उनका दिन सुधर जाता। वह उसे अपने दीवाने-खास में बुलवाकर शिष्यों के बीच ललकारते और जब तक जटाधारी त्राहि-त्राहि पुकार, पिंड छुड़ाकर

नहीं भाग निकलता, उन्हें तसल्ली नहीं होती।

आनंदीलाल को उन्होंने शास्त्रार्थ के लिए ही बुलवाया था। यदि वह विजयी हो (जो असंभव था), तब केवलानंद उसे अपने एक सौ एक कमरोंवाले शांतिमठ की गद्दी सौंप दें और वह स्वयं जीते तो धर्मशत्रु आनंदीलाल अपना मुँह काला कर गाँव छोड़ दे।

''महाराज!'' उनके बावन शिष्यों में से वरिष्ठ एक चेले ने उन्हें समझाने का प्रयास किया, ''तनिक सोचिए, आप भी किसके मुँह लग रहे हैं? वह तो एक साधारण कुली है।''

केवलानंद ने मुसकराकर उदारता से बताया, ''कबीरजी जुलाहे थे, रैदासजी चमार...''

''वो सब ठीक है, किंतु...'

''किंतु?''

''शेर कभी गीदड़ को नहीं ललकारता। यदि शेर हार गया, तब उसे डूब मरने को चुल्ल भर पानी भी नहीं मिलता।''

पास बैठे एक विदेशी चेले ने कहा, ''और जीता भी तो किससे? गीदड़ ही से न?''

अभी तर्क-वितर्क जारी थे कि धूप में, गाँव की दिशा से लंबे डग भरता हुआ आता आनंदीलाल दिखाई दिया। केवलानंद ने गौर से देखा तो उसके सिर पर लहराता हुआ एक बादल भी चला आ रहा था।

उन्होंने आँखें झपकाईं। उन दोनों के बीच लगभग आधे कोस का अंतर होने के कारण न आनंदीलाल को स्पष्ट देख सकना मुमकिन था, न ही बादल के रहस्य को समझना।

जैसे-जैसे वह बीहड़ पार कर छिदरे बन के करीब आता गया, केवलानंद के दिल की धड़कनें तेज होती गईं। जिसे वे तिलस्मी बादल समझ रहे थे, वह रंग-बिरंगे और भाँति-भाँति के परिंदों का झुंड था, जो आनंदीलाल को छाँव दे रहा था।

ऐसा अलौकिक दृश्य न महंत ने, न उनके शिष्यों में से किसी ने पहले कभी देखा था। प्रेममार्ग का ऐसा पथिक जिसमें प्रकृति के सारे जीव एकरस हो गए हों, उस भगवा-भीड़ ने कभी नहीं जाना था। ऐसी निर्मल आत्मा, जो निसर्ग के कण-कण से जुड़ी हो, केवलानंद ने ठीक पहचान ली। शिष्यगण अभिभूत हो गए।

इन्हीं थोड़े क्षणों में मठाधीश का सारा ज्ञान धुल गया, अहंकार घुल गया। उनके प्रज्ञाचक्षु उघड़ गए। भीतर सचखंड से आता अनहद शब्द गूँज उठा, ''शब्द ब्रह्म, निशब्द ब्रह्म, प्रणवो ब्रह्म।'' यही था वेद का गुप्तज्ञान। यही था 'कुन' या 'कलमा', यही था सारे संसार के शास्त्रों का रहस्य, सच्चे प्रभुभक्तों का साझा मार्ग।

अब महंत के लिए अपनी नरम-नरम गद्दी पर बैठे रहना संभव नहीं था। उनका शरीर झनझना रहा था, रोआँ-रोआँ थिरक रहा था। वे आनंदीलाल का स्वागत करने थलकते हुए उसकी ओर दौड़े। बावन शिष्यों का जमघट उनके पीछे चला।

हैरान होने की बारी अब आनंदीलाल की थी। वह रुका तो तैरता हुआ बादल भी ठहर गया। परिंदे उसके माथे पर चक्कर काटते हुए बिखरने लगे। वह एकटक मठ की दिशा में देखता रहा।

आगे-आगे स्थूलकाय महंत और पीछे-पीछे उनके शिष्यों को मध्य युग के शत्रु-सैन्य दल की भाँति धँस आते देख वह तेजी से सोचने लगा, नवाब साहब की मानिंद कहीं ये सब मुझसे खफा तो नहीं हैं न? हुजूर तो खैर, उसके बड़े भैया के समान थे। उनकी डाँट-फटकार में से भी प्यार छलकता है, मगर इन लँगोट-लपेटियों का क्या भरोसा?

वह पलटकर भागा। उसने सोचा था, खुरहर से होकर फटाफट गाँव पहुँच वह सीधा असद महल में घुस जाएगा। 'देवी माँ मुझे किसी ऐसे तहखाने में छिपा लेगी, जहाँ इनके फरिश्ते भी नहीं पहुँच सकेंगे।'

नियति को कुछ और ही मंजूर था : आनंदीलाल झाड़-झंखाड़ पार कर बस्ती तक आए, ताकि इस अनोखी घटना

का अंत सारा गाँव जान सके, सच और झूठ के बीच का भेद पहचान सके।

बाण की तरह छूटा हुआ आनंदीलाल चौक से होकर हवेली तक पहुँचा तो बाहर खड़े चौकीदार ने घबराकर फाटक ही बंद कर लिया। वह विवश हो गया।

उस समय बेगम शबाना अपने कमरे की खिड़की पर खड़ी थी। उसे आज भी याद था। बौखलाए हुए आनंदीलाल के चरणों में मठाधीश केवलानंद पड़ा था। सारे शिष्य सिर नवाकर दो-जानू बैठे थे और आनंदीलाल खिड़की की ओर देख अपना सिर खुजला रहा था।

10

देखा जाए तो घर से कब्रिस्तान तक का फासला अधिक नहीं होता। जाने क्यों यह रास्ता खिंचता ही चला जा रहा था, जैसे यह कभी न खत्म होनेवाला सिलसिला हो। 'ढलती उम्र के साथ ये मरी राहें भी लंबी हो जाती हैं।'

बर्फ से ढके रास्ते पर अपनी जूती और लकड़ी के निशान छोड़ती हुई बूढ़ी बेगम कच्ची पगडंडी की ओर मुड़ी। उसे लगा कि हमेशा की तरह आज भी वह अपने कदम गिने, ताकि चौकस गिनती पूरी होने पर कब्रिस्तान में प्रविष्ट होने का उसे होश रहे। यह आवश्यक भी था।

कभी अपनी धुन में वह कब्रिस्तान के उस पार बीहड़ में निकल जाती, तब उसके लिए लौटकर आना दुश्वार होता। मुश्किल यह भी थी कि बदले हुए मौसम के कारण बार-बार उसकी साँस फूल रही थी। ऐसी दयनीय स्थिति में गिनती याद रखना सरल नहीं था।

उसने दुआओं का सहारा लिया। जूतियाँ घिसटती, एक-एक कदम उठाती वह कब्रिस्तान के फाटक पर आई और दमभर ठहर गई। यहाँ से केवल पैंतीस कदम पर स्थित नवाब की कब्र को वह ऐनक के पीछे से देख सकती थी। वह आँखें बिछाए मौन खड़ी रही।

बर्फ की महीन परत तले छिपी कब्र उसे आकर्षक लगी। नवाब की आरामगाह के लिए पलास के पेड़ तले का यह स्थान सआदत जाँ की मौजूदगी में, दोनों ने मिलकर चुना था। उसके करीब की खाली जगह बूढ़ी बेगम के लिए आरक्षित थी...

मगर कब तक?

इस समय आनंदीलाल अपना कफन सिलता यहाँ बैठा होता तो कहता, ''साँसों की सरगम समाप्त नहीं हो जाती, तब तक।''

अफसोस कि आज हरिहरन फूलवाले की दुकान पर वह मौजूद नहीं था। बूढ़ी बेगम की यह नाराजगी भी कैसा उपहास थी? जब भी आनंदीलाल फूलों का गुलदस्ता लिये उसके मार्ग में खड़ा रहा, उसने नजरें उठाकर देखने की परवाह नहीं की, जैसे वह उसके दैनिक कार्यक्रम की परिपाटी का एक हिस्सा बन गया हो।

तब वैसा नहीं था। वह विधवा नहीं थी। उसकी रगों में बिजलियाँ दौड़ती थीं। छम-छम आवाज के साथ वह पग-पग पर थिरकती थी। तब आनंदीलाल की उपस्थिति अर्थ रखती थी।

प्रसंग चाहे खुशी का हो या गम का, बिन बुलाए वह हाजिर हो जाता। बेगम शबाना माँ बननेवाली थी, उस रोज वह असद महल पर सुबह ही आकर बैठ गया था। नवाब सआदत जाँ गरम चाय की चुस्कियाँ लेते कोमल धूप में झरोखे के झूले पर बैठे थे। बेगम शबाना अभी-अभी जागी थी, शय्या पर लेटे-लेटे आनेवाले नन्हे मेहमान के बारे में सोच रही थी। यह विचार उसे जब भी आता, वह अधीर हो उठती।

अभी कल उसने फिर एक बार अनवरी बी से पूछा था, ''कहो न दाई माँ, लड़का होगा या लड़की?''

अनवरी बी ने भी हँसकर वही उत्तर दिया, ''मैं कोई खुदा तो नहीं हूँ।'' फिर कहा था, ''दो दिन बचे हैं, बेगम साहिबा। इतना सब्र किया, थोड़ा और कर लो।''

बच्चे के सैक्स के बारे में अनवरी बी यकीन के साथ नहीं बता सकती थीं, मगर उसकी दरशाई हुई तिथि पत्थर की लकीर होती थी।

बेगम ने गुब्बारे से पेट पर हाथ फेरते हुए सोचा, दो में से एक दिन गुजर गया। ''यह निगोड़ा दूसरा कैसे कटेगा?'' तभी बाँसुरी की धुन सुनाई दी। वह चौंकी। उसे भरोसा ही नहीं हुआ कि आनंदीलाल आया होगा और वह भी बेवक्त।

नवाब ने चाय की प्याली के साथ खड़े होते हुए झरोखे से नीचे देखा। सूखे फौवारेवाले चबूतरे पर बैठा आनंदीलाल अपने चरणों में दाना चुगते सफेद कबूतरों को बाँसुरीवादन सुनाते हुए डोल रहा था। मानो उनमें से एक संगीत मर्मज्ञ हो, ऐसे आकर उसके कंधे पर बैठ गया।

नवाब भी सोचने लगे। नए रिश्ते की शुरुआत के ये दिन थे। इससे पहले आनंदीलाल से उनकी केवल दो मुठभेड़ हुई थीं। पहली बार बरगद के पेड़ तले, दूसरी बार प्रधान बस-अड्डे पर। तब उन्होंने आनंदीलाल को कुली का बैज दिलवाने का निश्चय किया था, मगर उस दिन के बाद वह गायब हो गया था। यह तीसरी मुलाकात थी। वैसे नवाब की समयसारिणी से सारा गाँव वाकिफ था। आनंदीलाल कैसे अपवाद हो सकता है? 'इन महीनों में पट्ठा भूल गया कि सआदत जाँ सुबह के नाश्ते से पहले किसी से मुलाकात नहीं करते?'

वह कुछ आगे सोचें, इससे पहले बेगम को दर्द उठा। वह कराहने लगी। चाय की खाली प्याली को झूले पर रख नवाब तेजी से उसकी तरफ बड़े। दूसरी तरफ से रामप्यारी दौड़ आई। वह तजुरबेकार दासी थी। बेगम की स्थिति का एक ही नजर में जायजा लेते हुए उसने पहला हुक्म दागा, ''फौरन दाई माँ को बुलवाया जाए।''

हवेली में हड़बड़ी मच गई, मगर इसका कोई प्रभाव आनंदीलाल पर नहीं पड़ा। बेगम की प्रसवपीड़ा पर मरहम लगाते हुए बाँसुरी के सुर तब तक बहते रहे, जब तक अनवरी बी ने ऐलान नहीं किया, ''सरकार को बधाई हो, लड़का हुआ है।''

मधुर बाँसुरीवादन पर प्रसूति होने की यह एक अछूती मिसाल थी।

थोड़े सप्ताह बाद यों ही पति-पत्नी में आनंदीलाल के विषय में चर्चा हो रही थी, तब नवाब ने बताया कि प्रसव के केवल कुछ मिनटों बाद ही उन्हें बाँसुरीगान की कमी महसूस हुई थी। वे तुरंत झरोखे पर आए, मगर तब तक बंसीवाला जा चुका था।

''भले ही वह जश्न में शामिल होने के लिए नहीं रुकता...'' अफसोस जताते हुए उन्होंने कहा, ''बधाई देकर मुँह तो मीठा कर जाता!''

मुन्ने को सीने से लगाकर स्तनपान कराती बेगम बोली, ''ऐ जी, सवाल यह भी है कि उन्हें किसी से मिलना नहीं था, तब यहाँ आए क्यों थे?''

इस प्रश्न का उत्तर दोनों में से किसी के पास नहीं था। बात आई-गई हो गई। इस बीच आनंदीलाल अपनी मरजी से हवेली पर आता-जाता रहा। लगभग तीन वर्षों बाद जब दूसरी समानांतर घटना घटी, तब कुछ-कुछ धुंध छंटी थी।

उस रोज आनंदीलाल मुन्ने के कमरे में न जाकर सीधा जनानखाने में चला आया। तख्ते पर चाँदनी बिछाकर सिलाई का संचा लिये बैठी बेगम शबाना मुन्ने के लिए अचकन सीं रही थी। पुस्तकालयवाले खंड में नवाब तोशाखाने के मुंतजिम शराफत अली से शतरंज खेलने में लीन थे।

आनंदीलाल को देख बेगम को ताज्जुब नहीं हुआ। अब तक वह उसके स्वभाव से परिचित हो गई थी। कभी वह निरंतर हफ्ता पखवाड़ा आता और फिर ऐसे गायब हो जाता, जैसे असद महल से उसे कोई सरोकार नहीं हो।

''आनंदीलाल!'' बेगम रुष्ट होने का ढोंग करते हुए नाक चढ़ाकर बोली, ''आज से हम तुम्हारी अम्मी नहीं।''

बस, इतना सुनना था कि उसका चेहरा फक पड़ गया। मानो उससे कोई बड़ा भारी अपराध हो गया हो, ऐसे दोनों हाथ जोड़कर उसने क्षमा माँग ली; फिर भर्राए हुए स्वर में कहा, ''देवी माँ आप जो भी चाहें सजा दे दें, मगर इस भक्त को अनाथ तो न बनाएँ।''

बेगम सन्न सी रह गई। उसने सोचा भी नहीं था कि उसकी दिल्लगी का प्रभाव आनंदीलाल पर उलटा पड़ेगा।

''बताओ तो भला,'' अपनी आवाज में मिश्री घोल उसने मुसकान का सहारा लिया, ''इतने दिनों कहाँ खोए रहे?''

''इतने दिनों!'' गाँव गलानियाँ के मौसम की तरह चेहरे का भाव बदलते हुए आनंदीलाल बोला, ''अभी कल ही तो आया था।''

बेगम की आँखें फैल गईं। ''पूरे दो महीनों और चार रोज के बाद लौटे हो और कहते हो कि कल आए थे!'' इस बार वह सचमुच भड़क उठी, ''इतना बड़ा झूठ आज तक हमने किसी से नहीं सुना।''

उसकी तमतमाई सूरत देख आनंदीलाल से बिना हँसे नहीं रहा गया। फिर जैसे किसी अबोध कन्या को समझाता हो, उसने बताया, ''आप समय के बंधन से मुक्त हो जाएँ तो आप भी यही कहेंगी।''

सिलाई का काम रोक बेगम टकटकी बाँध उसे देखती रही। आनंदीलाल ने कोई सूक्ष्म बात कही थी, जिसकी थाह पाना उसकी अपनी बुद्धि के परे था, इतना उसने भलीभाँति समझ लिया।

''शायद आप नहीं जानतीं कि समय जैसी कोई चीज है ही नहीं।'' आनंदीलाल ने थोड़ा खुलासा किया।

वह बोली, ''समय का वजूद नहीं है, तब वह घड़ी क्यों है जी? यह दिन और रात क्या हैं?''

''हमारे कल्पित समय के कल्पित खंड,'' कहते हुए उसने मस्ती में कहा, ''देवी माँ...इस संसार का नहीं, ब्रह्मांड का सोचिए। वहाँ न सुबह होती है, न शाम। एक रोज हम सबको वहीं तो जाना है।''

इहलोक से फिसलकर विषय परलोक पर आ गया। कुरान शरीफ ने भी बार-बार कायनात और जन्नत का जिक्र किया है। उसी का हवाला देते हुए आनंदीलाल ने नया प्रश्न उछाला, ''यदि इस समय मेरी मृत्यु हो जाए और मैं दोजख की आग में झोंक दिया जाऊँ, तब आप प्रसन्न होंगी या दु:खी?''

''दु:खी।''

''और सीधा जन्नत में सिधारूँ तब?''

''हमें बेहद खुशी होगी।''

''तब लोग जन्नतनशीनों पर आँसू क्यों बहाते हैं?''

वह उलझ गई, काफी देर तक इसी मसले पर सोचती रही। बार-बार यह अंतिम प्रश्न उसके मस्तिष्क में पिंगपोंग की गेंद बनकर उछलता रहा।

आनंदीलाल के लौट जाने के लगभग घंटे भर बाद तालकटोरा से खबर आई, शबाना के वालिद मीर अली हसन का कार दुर्घटना में इंतकाल हो गया था।

वह झेंप गई। दुविधा ने उसे चारों ओर से घेर लिया। वालिद की मृत्यु पर वह जश्न मनाए या मातम करे? अंतत: वह रो ही दी। जिस फरिश्ते ने बिना माँ की शबाना को बचपन से माता-पिता, दोनों का प्यार दिया हो, उसका सदमा भला एक कोमल हृदय कैसे झेल सकता है?

तब बेगम ने इस घटना पर तवज्जो नहीं दी थी। वह सोच ही नहीं सकी थी कि आनंदीलाल की उपस्थिति और

वालिद की मौत की खबर के बीच कोई कडी भी हो सकती है।

मरहूम के चालीसवें के रोज मौलवी साहब ने बीबी फातिमा के नन्हे दुलारे अली असगर का तजकिरा सुनाया, तब सहज ही उसे अपना लाड़ला याद आया, प्रसव की सुबहवाली घटना याद आई और उसके दिमाग में रोशनी हुई। दो और दो—चार का जोड़ फिट बैठ गया।

प्रसव का निश्चित समय, जिसका सही अंदाजा लगाने में पहुँची हुई दाई अनवरी बी भी धोखा खा गई थी, आनंदीलाल को मालूम था। इसी कारण वह सवेरे-सवेरे असद महल के चबूतरे पर आकर बाँसुरी बजाते हुए बैठा था।

दूसरे, बेगम के वालिद की मृत्यु भी उसने पहले से देख ली थी, वरना वार्त्तालाप के लिए वह स्वर्ग और नर्क का विषय छेड़कर उसे क्यों रेखांकित करता? यह केवल बेगम का अपना अनुमान, अपना विश्वास था, मगर नवाब का मानना कुछ और था। ''बेगम!'' कभी यह विषय बहस का मुद्दा बन जाने पर वह कहते, ''खुदा से उसका रिश्ता चाहे कमल और सूरज का हो या दीपक और पतंगे का, यह भी तो हो सकता है—कौवे का बैठना और शाख का टूटना।''

''मगर दोनों बार?''

इस विवाद का अंत कभी नहीं आया।

यदि हम आनंदीलाल के विस्तृत जीवन के ऐसे चमत्कृत अंशों को नजरअंदाज करें तो बेशक एक सच्चाई उजागर होकर हमारे सामने आती है। बेगम के आड़े वक्त वह हमेशा मौजूद रहा था।

हकीकत यह भी है कि उसकी उपस्थिति का लाभ केवल असद महल तक सीमित नहीं था। गाँव में किसी के घर गौना हो या बरसी, हर प्रसंग पर वह मौजूद भी रहता और जरूरत पड़ने पर काम में हाथ भी बँटाता था। बेगानी शादी में उसे अब्दुल्ला दीवाने की तरह नाचते हुए या शाह पीर की दरगाह के वार्षिक जुलूस में उसे 'अली' का नारा लगाकर तलवार घुमाते हुए देखना अनोखा आनंद था।

बेगम शबाना ने उसकी मौजूदगी को तखल्लुस की तरह उसके नाम के साथ जोड़दिया।

आनंदीलाल 'मौजूद'।

यही नामकरण चौराहे-चौपाल की धुआँधार बहस का नया विषय बन गया। गुरदास के ढाबे पर मौसम की खुनकी में गरम चाय का लुत्फ लेते हुए तबलची रामरखा ने शुरुआत की, ''बड़ा अजीब लगता है यह नाम!''

शिवा माली ने पूछा, ''वह कैसे?''

''नाम सारंगी हो सकता है या तबला,' उसने बताया, ''दोनों एक साथ कैसे हो सकते हैं?''

''यह हम बताएँगे।'' गिद्धराज के अस्थिपंजर सा कनैयालाल नाई बीच में कूद पड़ा, ''हमें तो इसमें मुसलमानों की कोई नई चाल नजर आती है।''

अब दुबले-पतले खशखशी दाढ़ीवाले जुम्मन दरजी को कहना पड़ा, ''चालबाज कब के हमें लावारिस छोड़कर पाकिस्तान चले गए। अब तो हमारा पीछा छोड़ो।''

उसे अनसुना कर नाई ने अपनी टुनटुनी जारी रखी, ''कितना बढ़िया नाम दिया था हमने उसे, शुद्ध हिंदी था। उसमें उर्दू घुसेड़कर राष्ट्रभाषा पर ही थूक दिया। अब कल ये मुसलमान आनंदीलाल पर दावा जाहिर कर अपना हिस्सा माँगेंगे तो मुझे ताज्जुब नहीं होगा।''

''ओये...कहीं चाय में भंग तो नहीं घोल ली है न?'' ढाबे के मालिक ने उसे लताड़ा, ''होश में आओ बंदे, आनंदीलाल कोई गाड़ी-बँगला नहीं कि उसका बँटवारा हो सके।''

''जीते-जी भले ही न सही,'' सबको सुनाते हुए जुम्मन ने फिकरा कसा, ''मियाँ मौजूद के मरने के बाद समाधि बनाने का ठेका सिर्फ कनैयालाल को मिलना चाहिए।''

सभी ठहाका लगाकर हँस पड़े।

क्या हरिहरन फूलवाले की दुकान पर आनंदीलाल 'मौजूद' की गैर-मौजूदगी भी कोई माने रखती थी? शायद, मगर अब बूढ़ी बेगम में वह बालसुलभ कुतूहल, वह चंचलता कहाँ रही थी?

11

साँसों की सरगम का तालमेल बैठते ही उसने कदम उठाया और उसका जी चाहा, कब्रिस्तान के फाटक में बनी फुलवारी में सजाई गई दो बेंचों में से एक पर वह थोड़ा विश्राम कर ले। (दूसरी पर अपने में खोया हुआ जईफ शराफत अली बैठा था।)

कभी नवाब के साथ बग्घी में तो कभी चार कहारों के कंधों पर सुखपाल में अकेले घूमनेवाली बेगम गाँव के एक छोर से दूसरे तक पैदल आए तो दम भर बैठने को उसका मन ललचाना सहज था।

''यह मरी उम्र ऐसी है कि एक बार कहीं आसन जमाने पर उठने को जी ही नहीं करता।'' और आरामतलब हो तो कब्र पर सिर नवाए, क्यों नहीं बैठा जाए? वहाँ नवाब की बाँहों में होने का सुख तो मिलता है।

बेंच का मोह त्यागकर वह चंद मिनटों में पलास के पेड़ के पास आ पहुँची। कब्र पर फैली बर्फ की महीन लेकिन उजली परत पर पड़े टेसू के चंद फूल लालो-गुहर की तरह चमक रहे थे।

बूढ़ी बेगम ने पेड़ के तने से अपनी लकड़ी टिकाकर साथ लाई पुड़िया खोली और चमेली के फूलों की चादर कब्र पर बिछा दी, हरिहरन ने आनंदीलाल के नाम जो गुलदस्ता अलग से दिया था, वह कब्र के सिरहाने रखा।

अभी तो उसने धूपबत्तियाँ भी नहीं जलाई थीं और आँखें नम हो आई। 'लोग जन्नतनशीनों पर आँसू क्यों बहाते हैं?' आनंदीलाल के इन अमिट शब्दों की प्रतिध्वनि मन के कुएँ में उठी, फिर भी वह बिखर गई। जहाँ खड़ी थी, वहीं ढह गई। उसके दोनों हाथ कब्र पर पसर गए।

वह कब्र से नहीं, जैसे अपने सुहाग से लिपटकर रो रही थी। अगर आज उसकी शादी की सालगिरह का अवसर नहीं होता तो शायद घर से कब्र तक यादों का कारवाँ साथ-साथ नहीं चलता। वह अपनी भावनाओं पर से काबू भी न खोती।

स्त्री के जीवन में एक यही तो सुनहरा दिन होता है, जिसके स्मरण के गुलमोहर उसके अचेतन मन के किसी अज्ञात कोने में महकते हुए पड़े होते हैं। उसे केवल एक बहाना चाहिए किस्सागोई के लिए।

शबे-आशूर को मशाल के प्रकाश में सआदत जाँ ने काले अबाओं में लिपटी हुई स्त्रियों के बीच जामाजेब शबाना को खुले सिर क्या देखा, वह उस पर कुरबान हो गए थे। उनका दुर्भाग्य यह था कि सारा राजनीतिक माहौल डाँवाँडोल था।

अखंड भारत का बँटवारा होने जा रहा था। राज-रजवाड़ों और रियासतों का मृत्यु-घंट कब का बज चुका था। नवाब अमीरुद्दौला, उनके पिता वैसे ही त्रस्त थे। कभी वे रातों में असद महल के छज्जे पर जाकर अँधेरी बस्ती पर अपनी सूनी-सूनी नजरें घुमाते, तब ऐसा लगता, जैसे वे खुद अँधेरे पी रहे हों। अगर चंद रोज में उनका देहांत नहीं हुआ होता तो रस्मे-निकाह खटाई में भी नहीं पड़ती।

भारत की स्वतंत्रता के ठीक तीन महीनों बाद गाँव गलानियाँ की मश्शाता शादी का प्रस्ताव लेकर जब तालकटोरा

पहुँची, मीर अली हसन की कोठी में जैसे ईद के एक रोज पहले चाँद निकल आया हो, ऐसी हड़बड़ी मच गई।

शबाना के पिता मीर साहब भी कोई मामूली हस्ती नहीं थे, मगर सामने से रिश्ता आना और वह भी एक शिष्ट, कुलीन घराने से, अपने आप में बड़ी अहमियत रखता था। अब रुकावट का भी कोई प्रश्न नहीं था, मगर इतनी जल्दबाजी भी क्या?

सबकुछ इतनी तेजी से होने लगा कि शबाना खुद चौंधिया गई। मुँह दिखाई की रस्म में उसने पहली बार दूल्हे राजा का चेहरा शीशे में देखा था और वह भी झलक भर। उस छवि को कल्पना में सँजोकर वह मन में अंकित करे, इससे पहले अंग्रेजी ऑर्गनवाले बैंड-बाजों और नौबत-नगाड़ों के साथ नौशे मियाँ बारात लेकर आ पहुँचे।

डोली उठी, तब शबाना की एक आँख रो रही थी, दूसरी हँस रही थी। कैसे-कैसे भाव उठे थे भीतर! न कभी जाने, न पहचाने थे। न कभी सोचे, न समझे थे।

''बेगम...'' वस्ल की रात सआदत जाँ ने पहला जुम्ला यही कहा था, ''हम आपको शबाना के बजाय सुबू कहेंगे, आप बुरा तो नहीं मानेंगी?''

उसने 'ना' में सिर हिला दिया।

''जानती हैं, सुबू का मतलब क्या होता है?''

उसने 'हाँ' में सिर हिला दिया।

''हमें कैसे यकीन हो?''

शबाना के होंठ थिरके, ''सुबू माने सुराही शराब की।'' फिर थोड़ा सा हँसकर वह अपने से बोली, ''हम सुबू...''

''जाम भी आप, साकी भी आप, मय भी आप और मयखाना भी आप।'' शायराना अंदाज में कहते-कहते उन्होंने रोशनी गुल कर दी।

बूढ़ी बेगम के जीवन में अब न रोशनी थी, न रौनक। नवाब के स्वर्गवास के बाद कुछ बचा था तो वह थी एक कब्र, थोड़े अश्क और मीलों लंबी यादें। साठ साल के सफर में वह पेड़ से झरे पीले पत्तों की तरह कदम-कदम पर कुछ-न-कुछ छोड़ आई थी। अब इस कब्रिस्तान का ही उदाहरण लें। जाने कितनी कब्रें थीं यहाँ अपनों की! चंद रिश्तेदार, जो करीब के थे और दूर के भी। थोड़ी सहेलियाँ जिनके साथ मंडली जमाकर बतियाते हुए भोंपूवाले ग्रामोफोन पर गीत-संगीत सुनना उसका शौक था। पति के कुछ मित्र, जो उसके हुस्नदान से उसके हाथों बनी पान की गिलौरी खाने के बहाने हवेली पर आया करते थे...सभी खाक में मिल गए।

गाँव गलानियाँवाले भी गैर नहीं थे। आनंदीलाल, जो अपने आपको बीच बाजार में मुरदा घोषित करता था, वह भी कहाँ पराया था?

वर्ष में एक बार, शबे-बरात के रोज बेगम अपने मियाँ के साथ कब्रिस्तान में फातिहा पढ़ने के लिए आती, तब यहाँ मेला लगता था। शाम से ही शाह पीर की दरगाह से उठती हुई कव्वाली की धुनें फिजा बाँधे, इससे पहले गली-कूचे सूने पड़ जाते, इस वीराने में एक नया गाँव बस जाता।

हर कब्र पर फूलों की एक नई चादर होती, धूपबत्तियों की महक हवा में घुलकर एकरस हो जाती, दीयों और मोमबत्तियों की रोशनी में माहौल अलिफ-लैला की नगरी की भांति जगमगा उठता। तब मुरदों की यह बस्ती अंतिम पड़ाव न रहकर सोलह सिंगार से सजी हुई दुलहन सी लगती।

वह रात भी वैसी ही दप-दप थी, जब आनंदीलाल दोपहर से फुलवारी की एक बेंच पर बैठा था। उजली धोती से किसी वस्त्र पर वह एकाग्र होकर कुछ सिल रहा था। शाम को नवाब के साथ बेगम शबाना बग्घी पर सवार हो

आई, तब भी वह उसी स्थान पर डटा था। उसका समग्र ध्यान अपने काम में लगा देख नवाब ने ही पूछा, ''क्या सिल रहे हो, मियाँ मौजूद?''

''अपना कफन।'' बिना सिर उठाए उसने उत्तर दिया। मियाँ-बीवी ने अचरज जताते हुए एक-दूसरे के सामने देखा।

जब से शांतिमठ के महंत ने आनंदीलाल पर सद्‌गुरू का ठप्पा लगाया था, उसने अपना कफन सिलना शुरू कर दिया था। उसके दैनंदिन कार्यक्रमों में भी फर्क आया था। अब वह केवल आधा दिन कुली का काम करता, बाकी समय कब्रिस्तान की बैंच पर बैठ कफन को सजाता और रात में शराब पीकर कहीं भी लेट जाता।

यही कारण था कि केवलानंद के सरेआम उसे संत घोषित करने पर भी किसी ने न उसे, न ही मठाधीश को गंभीरता से लिया। यही नहीं, सप्ताह भर बाद मठ में खटराग पैदा हुआ। उनके चहेते शिष्य ही उनके वैरी बने और ढेले मार-मारकर उन्हें गाँव से बाहर खदेड़ दिया।

(मठाधीश की गद्‌दी ऐसे बावलों के लिए नहीं होती।)

आनंदीलाल को यकायक दोनों हितैषियों की उपस्थिति का खयाल आया। वह कफन के साथ खड़ा हो गया, ''किब्ला-ओ-काबा को आदाब...देवी माँ को पाय लागूँ।'' कहते हुए उसने बेगम के चरण छुए।

औपचारिकता के बाद नवाब ने उसके कुरते पर लगे चिंदियों के पैबंदों को देखते हुए उसे छेड़ा, ''सिलने के लिए तुम्हें कुछ और नहीं मिला?''

''सरकार, सिलने के काबिल इस नश्वर संसार में दूसरा है ही क्या?'' वह बोला, ''मौत आएगी, तब सारे सूट-बूट धरे-के-धरे रह जाएँगे। साथ तो सिर्फ इस कफन को ही चलना है।''

''आखिरत का इतना खयाल है, तब शराब पीकर अपनी जिंदगी क्यों तबाह कर रहे हो?''

''मैं मुरशिद बनना चाहता हूँ।''

वे चौंके, ''क्या मतलब?''

''सच्चा सद्‌गुरु बनने के लिए मौत से पहले एक बार मरना जरूरी होता है।'' उसकी बात बेगम के पल्ले नहीं पड़ी, मगर नवाब ने ताड़ लिया। कामिल फकीरों ने पूर्ण यकसूई, पूर्ण एकाग्रता या समाधि की इस अवस्था को जीते-जी मर जाना कहा है। आनंदीलाल आसमान के परिंदों के नक्शे-कदम पर चलनेवाला प्रेम-मार्ग का पथिक था। वह अहम की मृत्यु का जिक्र कर रहा था, ताकि जीव को स्थूलता से ऊपर उठाकर सूक्ष्मता के केंद्र में दाखिल किया जा सके, मन-माया के परदे हटाकर आत्मा अपने दिव्य गुण दोबारा प्रकट कर सके।

उसके विचारों के आगे नवाब को कभी अपने ज्ञान के बौनेपन का एहसास होता, मगर इसका उन्हें अफसोस नहीं था। चंद सालों के रिश्ते में आनंदीलाल उनकी समझ में थोड़ा-बहुत आने लगा था।

वह अनपढ़ था। नवाब स्नातक थे, फिर भी आनंदीलाल के अज्ञान के आगे उनका अपना समग्र ज्ञान ओछा क्यों उतरता था?

एक रोज आनंदीलाल ने कुरान का हवाला देते हुए उनसे एक जुम्ला कहा था, ''जो यकीनन तुम्हारे भीतर बिराजमान है, उसे पहचानो।'' तब वे आनंदीलाल के ही एक झमेले के कारण थोड़े परेशान थे। उन्होंने ध्यान नहीं दिया था।

उसी शाम वे इशा की नमाज के बाद कुरान शरीफ की तिलावत कर रहे थे और वही संदर्भ 'अलिफ लाम मीम' पढ़ने में आया। वे दंग रह गए। अरबी वर्णमाला में तीन अक्षरों का यह रहस्यमय मेल 'अलमुकताआत' कहलाता है। कुरान में इसका प्रयोग अट्‌ठाईस स्थानों पर हुआ है, मगर इसके भावार्थ के बारे में आज भी आलिमों की जमात एकमत नहीं है।

सामान्यत: अलिफ से अल्लाह, लाम से जिब्राईल और मीम से मुहम्मद, यह अर्थघटन स्वीकारा जाता है, यानी कि अल्लाह ने जिब्राईल फरिश्ते द्वारा मुहम्मद पर पाक कलाम उतारा।

नवाब को आज तक जो प्रश्न अखर रहा था, वह भी बेबुनियाद नहीं था। जब वही बात कुरान में खुलकर कही गई हो, तब सांकेतिक रूप में कहने की खुदा को क्या आवश्यकता पड़ी?

उनकी यह पहेली आनंदीलाल ने बुझा दी थी। अलिफ से अहद, लाम से लारैब और मीम से महलसरा...उसका यह अर्थघटन स्वीकारा जाए तो मतलब होगा, ''वह अद्‌वितीय यकीनन तुम्हारे भीतर है।''

नवाब के अंतरतम में गूँज उठी, यही सच है, मानव-जाति के लिए यही परवरदिगार का संदेश है और यही तो आनंदीलाल बार-बार दोहराता था।

''अगर वह भीतर है, तब मसजिद, जो, खुदा का घर कहलाता है, वहाँ कौन विराजमान है?'' वह फिर से उलझ गए।

बेगम कब की नमाज-दुआ-सलवात आदि से फारिग होकर कूँडे की नियाज चखने के लिए निकल गई थी। घंटे भर बाद वह शयनागार में लौटी, तब भी नवाब जानमाज पर बुत बने बैठे थे।

उसने सोचा, सरकार शायद किसी मिसरे की तलाश में खुद अपने को खो बैठे हैं; मगर उनका मुबारक चेहरा कुछ और ही बताता था। कभी वह मुसकराते थे तो कभी ऐसे गंभीर हो जाते थे, मानो वे शबेहश्र के रोज अपने कर्मों का हिसाब दे रहे हों।

''ऐ जी...' बेगम घबराकर बोली, ''सब खैरियत से तो है न?''

नवाब ने उसे सामने देखकर पहले मुसकान बिखेरी, फिर कहा, ''सुबू बेगम, शायद आपको भरोसा नहीं हो, मगर यह सच है कि आपके अँगूठाछाप भक्त ने हमारे ईमान की कश्ती को साहिल से उठाकर भँवर में छोड़ दिया है। हमारी श्रद्‌धा, हमारा अकीदा डाँवाँडोल हो गया है।''

''होगा कच्चा,'' वह इठलाकर बोली, ''हमारे यकीन की तरह चट्‌टान होता तो भला उसे कोई हिला पाता?''

उसका भोलापन देख नवाब ने हँसते हुए कहा, ''शायद इसीलिए मियाँ मौजूद आपको देवी मानकर आपकी पूजा करते हैं।''

तभी उन्हें मतला सूझा और उन्होंने जानमाज पर बैठे-बैठे ही पूरी गजल लिख डाली। उसके चंद शेर इस प्रकार थे —

सहराओं में बसता है वो
हँसते-हँसते रोता है वो।
खामोश तेरी महफिल में
कुछ कहके भी फँसता है वो।
कौन बताए तितलियों से
तन्हा सा एक गुलदस्ता है वो।
उल्फत की इन फिजाओं में
जंजीर से वाबस्ता है वो।

कब्रिस्तानवाली घटना के दूसरे महीने आनंदीलाल का बैज छीन लिया गया। उसपर आरोप था—गले में बेल-बूटोंवाला कफन डालकर कुलीगीरी करने का। कफन में कशीदाकारी नहीं होती, तब भी प्रधान बस-अड्डे का अधिकारी उसे खदेड़ देता।

वैसे उसे दो चेतावनी अवश्य दी गई थीं। पहली उसने नजरअंदाज की, मगर दूसरी की अवहेलना करना थोड़ा कठिन था, क्योंकि वह कड़ी थी और लिखित भी। आनंदीलाल तिलमिला उठा। वह सीधा प्रबंधकर्ता के कमरे में पहुँचा और आव देखा न ताव, बरस पड़ा उन पर, ''महाशय, यहाँ के कुलियों की कोई वरदी तो है नहीं, मैं कफन बाँधूँ या कंठलंगोट, आप लोगों को इससे क्या एतराज हो सकता है?''

प्रबंधकर्ता ने उतनी ही शांति से बताया, ''यह सरकारी बस-अड्डा है, श्मशान घाट नहीं।''

उनका स्वस्थ सक्त देख आनंदीलाल ने भी सुर बदला, ''साब, आप जरा इसे एक नजर ध्यान से देखें, इन गुलबूटों के बीच मैंने बखूबी तितलियाँ काढ़ी हैं। जो कोई यात्री इसे देखता है, बिना प्रशंसा किए नहीं रहता।''

अब उसने अपने गले से कफन खोल, प्रबंधकर्ता की फैली आँखों के सामने मेज पर बिछा दिया, ''आप मानेंगे, चारों कोनों में जो ये कीट दिखाई देते हैं न, उनका जीवनकाल चौबीस घंटों से अधिक नहीं होता।''

वह लगातार बोले जा रहा था, ''हैरत की बात यह है कि इसी एक दिन में वे सौ साल जी लेते हैं, यानी कि जन्म, प्रेम, प्रजनन और मरण; जबकि हम इनसान सौ साल में सौ पल भी नहीं जीते।''

प्रबंधकर्ता चपरासी के आने की बड़ी व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे थे। चुपके से उन्होंने दोबारा बिजली की घंटी का बटन दबाया।

अंत में आनंदीलाल ने याचना करते हुए बताया, ''जीवन का यही संदेश मैं हमारे यात्रियों द्वारा दूर-दराज के गाँवों तक पहुँचाना चाहता हूँ। यकीन कीजिए, एक रोज जमाना कहेगा कि आपके इसी बस-अड्डे से स्वतंत्र भारत देश में खुशहाली की नई लहर उठी थी। लोग जीना सीखे थे, जीते-जी मरना सीखे थे...'

तभी चपरासी अंदर घुस आया। प्रबंधकर्ता के आँखें तरेरने से उसने संकेत पा, सबसे पहले आनंदीलाल के सीने पर से बैज झपट लिया, फिर चीखते-चिल्लाते हुए आनंदीलाल के साथ उसके कफन को भी उठाकर रास्ते पर फेंक आया।

वही कशीदाकारीवाला कफन अंततः नवाब के काम आया था; मगर देहत्याग के बाद।

13

मरहूम सआदत जाँ की कब्र पर दोनों हाथ पसारे कलपती बूढ़ी बेगम के माथे पर किसी के स्नेहयुक्त हाथ का स्पर्श हुआ। सहसा उसे विचार आया, आनंदीलाल के अतिरिक्त दूसरा कौन उसके दिल के छालों पर मरहम लगाने यहाँ आ सकता है?

धीरे-धीरे उसने चेहरा उठाया। उसे सचमुच ताज्जुब हुआ। उसके पास जईफ शराफत अली खड़ा था। कौन था यह वृद्ध? कोई परिचित था या असद महल का पुराना सेवक? इस लंबी जीवन-यात्रा की किस मंजिल पर टकराया था वह? बूढ़ी बेगम को धुँधला सा स्मरण था।

वृद्ध के पिता मीर शौकत अली कभी असद महल के तोशाखाने के मुंतजिम थे। वृद्ध स्वयं भी अपने समय का शाही बावरची था। जितना प्रसिद्ध वह अपनी भोजन-कला के लिए था, उतना ही काबिल वह शतरंज का खिलाड़ी

भी था। असली खेल का लुत्फ लेने के लिए कभी-कभी नवाब उसे हवेली पर बुलवा लिया करते थे।

''बेगम साहिबा...'' वृद्ध ने काँपते स्वर में कहा, ''इनसान दुनिया में दो राज नहीं जान पाया...एक—जिंदगी, दूसरा मौत। ये दोनों खुदावंदे-करीम की मुट्ठी में बंद हैं। वह जिंदगी देता है और वक्त आने पर उसे वापस लेने का हक भी रखता है।''

बूढ़ी बेगम ने कुछ सुना ही नहीं। वह लकड़ी के सहारे खड़े जईफ शराफत अली को एकटक देखती रही। उसका चेहरा झुर्रियों का जाल था। शरीर अपनी आयु से आगे निकल आया था। सिकुड़ी हुई लिजलिजी त्वचा पुराने कागज सी जीर्ण लगती थी। जमाने के थपेड़ों ने उसकी कमर को ऐसे झुका दिया था कि बैठे-बैठे बूढ़ी बेगम उसकी आँखों में झाँक लेती थी।

वह सोच रही थी। थोड़ी देर पहले वृद्ध कब्रिस्तान के फाटक के पास बनी फुलवारी की बैंच पर खोया सा बैठा था। इस समय निकट खड़ा है। कुछ कह भी रहा है। शायद दिलासा दे रहा हो!

बूढ़ी बेगम की आँखें अभी भी गीली थीं, अभी भी भूली-भटकी एकाध बूँद भीतर कहीं से उभरकर चुपचाप बह जाती थी।

नवाब के देहांत के बाद जब वह पहली बार यहाँ अकेली आई थी, छाती फटती थी, कलेजा जलता था। सिर पीट-पीटकर वह रोई थी। उसके अश्कों का बाँध टूट गया था। फिर घंटों तक वह कब्र को निहारती मौन बैठी रही थी। तब उसका दु:ख बाँटनेवाला कोई नहीं था, आनंदीलाल भी नहीं।

(वह जेल में एक साल की सजा काट रहा था।)

''रोने से मरनेवाले वापस तो नहीं आते।'' कहते हुए जईफ शराफत अली उसके आगे बैठ गया, ''वैसे भी हुजूरेवाला को जन्नतनशीन हुए एक अर्सा बीत गया है...क्यों मरहूम की रूह को तकलीफ पहुँचा रही हैं आप?''

इस बार बूढ़ी बेगम ने होंठ खोले, ''अपनों की याद में दो आँसू बहाना...''

''आपके मिजाज मुबारक के लिए ठीक नहीं।'' उसने टोक दिया, ''देखिए, मेरी इन सफेद आँखों में आपको एक कतरा भी नजर नहीं आएगा।''

दुपट्टे से चेहरा पोंछ उसने अपनी लकड़ी उठाई और उसी की टेक लेकर वह हौले से खड़ी हो गई, ''आपकी बेगम का इंतकाल इसी महीने हुआ है न, मियाँ?''

''आज चालीसवाँ है।'' वृद्ध भी खड़ा हो गया, ''यही वक्त था, जब लाश कब्र में उतारा गया था।''

''और इतनी जल्दी आप उसे भूल गए!'' दोनों अपनी-अपनी लकड़ी के सहारे साथ-साथ कदम बढ़ा रहे थे, ''काश कि हम भी मर्द होते!''

बात तल्ख थी, मगर वृद्ध ने उसका बुरा नहीं माना। गुफ्तगू का सिलसिला जारी रखते हुए उसने आगे कहा, ''आप अपने मरहूम की कब्र पर हफ्ते में एक बार आती हैं, सच?''

''यह हमारा उनसे वादा था...जब तक जिएँगे, जुमेरात-जुमेरात फूलों की चादर चढ़ाने बराबर आते रहेंगे।''

''मैं रोजाना आता हूँ।'' प्रवेश-द्वार के निकट फुलवारी की एक बैंच तक आकर वृद्ध रुक गया, फिर हाथ टेककर बैठते हुए बोला, ''ऐसा लगता है जैसे मैं अपने दालान में खाट बिछाकर बैठा होऊँ और बेगम अभी-अभी मेरा मनपसंद गाजर का हलवा बनाकर दरी पर लेटी हो। जो...जो मेरी हर साँस में धड़कती हो, उसके लिए मैं कैसे गम मनाऊँ?''

बूढ़ी बेगम उसके पास बैठते हुए बोली, ''क्या आपको जरा भी अकेलापन महसूस नहीं होता?''

''जब मैं उसे पुकारता हूँ और कहीं से कोई जवाब नहीं आता, तब जरूर एहसास होता है।''

''तब आप क्या करते हैं जी?''

''किसी काम में मसरूफ हो जाता हूँ। कोई काम न मिले तो मैं पैदा करना भी जानता हूँ। मसलन...' कहते हुए उसने अपनी जेब से माचिस निकालकर दोनों के बीच बेंच पर उलट दी, ''मसलन, एक-एक तीली उठाकर फिर से डिबिया में सजाने का काम।''

बूढ़ी बेगम हैरत से देखती रही। बैंच पर बिखरी पड़ी तीलियों को, वृद्ध की उँगलियों को, जो एक-एक सलाई को उठाकर सलीके से डिबिया में वापस रख रही थीं। पहली बार उसने नोट किया, वृद्ध के दाहिने हाथ में छह उँगलियाँ थीं।

''मेरी मदद नहीं करेंगी, आप?''

अपने विचारों से वह जाग उठी, फिर ऐनक के पीछे से वृद्ध को देख थोड़ा सा मुसकराई और उसके साथ वह भी व्यस्त हो गई।

14

उस रोज रात देर तक वह सो नहीं सकी। शयनागार में अँगीठी रख, शरीर को तपाती वह खोई सी बैठी रही। उसका दिल परदार हो गया। ऐसा मुलायम और महीन कि जैसे किसी उड़ती चिड़िया का टूटा पंख हवा के झकोरों के साथ लहराता चला जा रहा हो।

उसकी नींद भी वैसी ही नाजुक थी। उसकी पलकें गिरी थीं, लेकिन वह सो रही थी या केवल लेटी थी, यह बताना सरल नहीं था; क्योंकि उसके होंठ मुसकरा रहे थे। वह एक सपना देख रही थी।

झील के किनारे एक पेड़ पर बैठ बाँसुरी बजाता हुआ आनंदीलाल फिजाओं में प्रेमरस घोल रहा था, मानो उसकी ठिठोली कर रहा हो, ''क्यों देवी माँ, अब हमारी गैरमौजूदगी नहीं अखरती?''

स्वप्न में ही बूढ़ी बेगम ने उसे पेड़ पर से खींचकर अपनी लकड़ी से फटकारना शुरू किया, ''मरगिल्ले, अपनी अम्मीजान का मजाक उड़ाता है?'' वह आनंदीलाल को सजा देती रही और ढीठ बच्चे की भाँति वह उछल-उछलकर हँसता रहा।

बूढ़ी बेगम ने आँखें खोलीं, तब शयनागार में नीम अँधेरा था और सामने खड़ी चंदा अपनी तीखी आवाज में उससे कुछ कह रही थी, ''कब तक मैं यों ही फालतू खड़ी रहूँ?''

बूढ़ी बेगम उसे एकटक देखने लगी, जैसे अपनी दासी रामप्यारी की बेटी को उसने पहले कभी देखा ही नहीं हो।

''तुम जाग रही हो?'' आखिर उसने पूछा।

उत्तर में चंदा खिड़की तक गई और छत से झूलते लंबे परदे किरकिरी आवाज के साथ हटा दिए। सूरज की किरणों का सैलाब मौसम की सिहरावन के साथ भीतर धँस आया। बूढ़ी बेगम सीने पर से रजाई खिसकाकर उठ बैठी।

''अब फरमाइए...' चंदा ने फिर करीब आते हुए आँखें तरेरीं, ''क्या काम है?'' बूढ़ी बेगम ने सिर खुजलाया। कुछ न सूझा तो यों ही पूछ डाला, ''माचिस की डिबिया होगी?''

''उसका आप क्या करेंगी?''

''शायद तुमने ठीक ही कहा, भला माचिस का हम क्या करेंगे जी?'' कहते-कहते वह हँस दी। उस हँसी में बिखरी हुई तीलियों की रंगोली थी। ''ऐसा करो चंदा, यहाँ से अँगीठी ले जाओ और हमारे लिए फटाफट एक प्याली गरम

चाय ले आओ।''

केतली में चाय की पतीली उँड़ेलते हुए चंदा को लगा, आखिर उसकी भली-चंगी मालकिन भी सठियाने लगी है। उसे क्या पता कि यह तो केवल इब्तिदा थी।

चाय की ट्रे तैयार कर वह शयनागार में लौटी तो उसने क्या देखा? शय्या खाली और मालकिन गायब! उसने सोचा, बुढ़िया शायद कुल्ला-पानी करने स्नानागार में गई होगी, मगर सटर-पटर की कुछ रहस्यमय आहट तो उसे किसी अन्य कमरे से मिल रही थी।

चाय की ट्रे शयनागार में ही रख वह जासूस की तरह चल दी। उसे अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। वह वर्षों से बंद पड़े एक कमरे की चौखट तक आई और ठिठक गई। इस बार उसके सामने अनोखा दृश्य था।

बूढ़ी बेगम एक स्टूल पर चढ़ी थी और बरसाती में रखे कबाड़ से सिलाई की मशीन खींच निकालने के लिए कुश्ती लड़ रही थी। वह मशीन भी मानो पिछले जन्म की सौतन हो, ऐसे टस-से-मस होने को राजी नहीं थी।

आँखों में परेशानी लिये चंदा टूटे-फूटे पुराने सामान के बीच से रास्ता बनाती धीरे-धीरे स्टूल के पास आई। अब वह खुद न ऊपर चढ़कर मालकिन की मदद कर सकती थी, न ही उसका हाथ खींचकर उसे जबरन नीचे उतारने की उसकी औकात थी।

''मुझ पर न सही,'' झुँझलाकर वह बोली, ''कम-से-कम अपनी उमर पर तो तरस खाइए!''

''तुम जरा इस तरफ आ जाओ।'' बूढ़ी बेगम ने उसकी नसीहत अनसुनी कर उसे स्टूल और बरसाती के बीच खड़े रहने को कहा।

''आज आपको हो क्या गया है?'' वह और भन्नाई, ''कहीं टाँग-वाँग टूटी तो इस बुढ़ापे में...''

''बुढ़ापा!'' सिलाई की मशीन को थोड़ी देर के लिए छोड़ बूढ़ी बेगम ने नजरें झुकाकर उसकी आँखों में अपनी आँखें गड़ा दीं, ''कौन है बूढ़ा यहाँ? तुम? तुम्हारी तो अभी शादी भी नहीं हुई।''

चंदा सोच न सकी कि उसे डाँटा जा रहा है या उससे छेड़खानी की जा रही है।

''यह मरा संचा भी ऐसे फँसा है कि...'' कहते हुए वह फिर मुड़ी और स्टूल डगमगा गया। यदि चंदा सही स्थान पर, सही समय खड़ी नहीं होती तो बूढ़ी बेगम की शताब्दि वहीं मनाई जाती। मगर उसे परवाह कहाँ थी?

वह फिर स्टूल पर चढ़ने लगी। चंदा ने खीजकर स्टूल अपनी तरफ खिसका लिया। फिर पाँव पछाड़कर खुद ही ने ऊपर चढ़कर मशीन नीचे उतारी।

एक हाथ से पहिया घुमानेवाला यह पुराना संचा अपने बक्से में बंद होता तो कोई आपत्ति नहीं थी। यह खुला था और जाने कितने वर्षों से कबाड़ में पड़ा था। इसे अच्छी तरह साफ करने में चंदा का आधा दिन शहीद होना ही था।

बावरचीखाने से वह झाड़न ले आए, तब तक बूढ़ी बेगम ने अपने एक पुराने दुपट्टे से सफाई का काम शुरू कर दिया था। जैसे कोई दाई शिशु की मालिश कर रही हो, वह बड़ी नजाकत से घिस-घिसकर कलपुर्जों को चमका रही थी।

चंदा को यह हरकत कचोट गई, ''घर के सारे काम आपने खुद करने का फैसला कर लिया हो, तब यहाँ मेरी क्या जरूरत है?'' वह गुर्राई, ''दे दो छुट्टी।''

चंदा की माँ ने कभी ऐसे मुँहफट जवाब देने का साहस नहीं किया था। उसके लिए बेगम शबाना का हर एक बोल सिर-आँखों पर चढ़ाने के काबिल होता था। चाहे रामप्यारी हो या कोई रामदुलारी, दासियों को यह सोचने का अधिकार नहीं था कि मालकिन का आदेश हुक्म है या उसकी सनक।

अफसोस कि नई पीढ़ी की ये पौध तमीज से बात करना भी नहीं जानती थी, बात-बात में काटने को दौड़ती थी।

इन सारी शिकायतों के बावजूद इस हकीकत को नकारा नहीं जा सकता कि चंदा के अवचेतन में कहीं अपनी मालकिन के लिए आदर था। रामप्यारी के स्वर्गवास के बाद बेगम शबाना ने स्वयं उसकी परवरिश की थी।

''छुट्टी! कैसी छुट्टी!'' पहिए में तेल डालते हुए बूढ़ी बेगम मन-ही-मन मुसकराई, ''हम तो तुम्हें इस हवेली की मालकिन बनाने की सोच रहे हैं जी।'' चंदा की आँखें फैलीं तो उसने कहा, ''हमने तुम्हारी जगह ली, तुम हमारी ले लो।''

बुढ़िया के दिमाग के कलपुर्जों में भी थोड़ा तेल डालने की आवश्यकता है...चंदा ने सोचा। हो-न-हो, उसका एकाध पुर्जा जरूर खिसक गया होगा, वरना यह इतनी रसीली नहीं थी। अंतिम दस वर्षों से तो कभी नहीं।

चंदा को भी इस हवेली में स्थायी हुए लगभग उतने ही वर्ष हुए थे, यानी कि बचपन से लेकर यौवनकाल तक उसने अपनी मालकिन को हँसते या व्यंग्य करते हुए देखा हो, ऐसा उसे याद नहीं था। उसने तो जब भी नजरें टिकाईं, एक धीर-गंभीर चेहरा उसके सामने आया था।

कभी गाँव की बुढ़ियाएँ उसे बतातीं, बेगम साहिबा पहले वैसी नहीं थी। वह अपनी सहेलियों के साथ महफिल जमाकर भोंपूवाला बाजा सुनती, तब कहकहों के फौवारे उड़ाती थी। जब वह पतंगबाजी के मुकाबिले में नवाब साहब को मात देती, उसकी किलकारियों से आकाश गूँज उठता था।

चंदा को यकीन नहीं आता, मगर जब वह अपने बचपन में गहरे तक उतर जाती, कुछ यादें उभरकर पलकों के पीछे झिलमिलाने लगतीं।

15

उन दिनों चंदा कभी-कभी अपनी माँ की उँगली पकड़कर एकाध-दो घंटों के लिए असद महल आया करती थी, मगर जिस रोज शादी की सालगिरह का अवसर होता, वह गुड़िया की तरह कंघी-चोटी कर सुबह से ही चली आती। (वह तिथि नवाब और बेगम के बीच पतंगबाजी के कार्यक्रम की भी होती।)

उस दिन सूरज चढ़े दोनों प्रतिस्पर्धियों के उस्ताद अपने-अपने शागिर्द के लिए पतंगबाजी का सामान लेकर हाजिर हो जाते। उनके सत्कार और आवभगत पर उतना ही ध्यान दिया जाता, जितना कि गुरुजनों का अधिकार होता है। दोपहर का शाही भोजन भी वे नवाब सआदत जाँ और बेगम शबाना के साथ खाने की मेज-कुरसियों पर बैठकर शान से लेते।

वे बताते थे...जिसे आज हम पतंग के नाम से जानते हैं, वह 'तुक्कल' का ही चिकना रूप है। तुक्कल इतने आकर्षक नहीं होते थे, फिर भी उन्हें खूबसूरत बनाने के लिए हर संभव प्रयास किए जाते थे।

कभी, शाह आलम प्रथम के दौर में, उसकी खपच्चियाँ मुर्शिदाबाद के बाँस से बनाई जाती थीं, जिसका खर्चा अस्सी रुपए होता था। बीस रुपए की झिलमिल लगती, दो रुपए का कागज आता और पाँच रुपए मजदूरी के अलग। संक्षेप में, एक बढ़िया तुक्कल एक सौ सात रुपए में तैयार होता था।

चाहे अवसर त्योहार का हो या मातम का, आनंदीलाल कभी समय पर आया हो, ऐसा किसी को याद नहीं था; मगर उस मुकाबले के रोज जब वह दोपहर के खाने के बाद दिखाई दिया, मीठा फालूदा और फालसा की कुल्फी के एक-एक दौर खत्म हो चुके थे।

पहर भर दिन रहे छत दो छावनियों में बँट गई। एक तरफ नवाब, उनके उस्ताद और मित्रगण मुस्तैद थे। दूसरी तरफ बेगम अपने उस्ताद और सहेलियों के साथ चहक रही थी। अकीक ने पापा का गुट चुना था तो नन्ही चंदा ने

अपनी माँ की पसंद को स्वीकार कर लिया था।

सबकी नजरें आकाश पर छाई थीं।

जब हवा में लहराती हुई दोनों पतंगें दाँव-पेंच आजमाने के लिए पैंतरे बदलने लगीं तो माहौल शोरो-गुल से गूँज उठा। दोनों गुट के सदस्य अपने-अपने उम्मीदवार का उत्साह बढ़ाते हुए जोश में आकर चीखने-चिल्लाने लगे।

मजमे से दरकिनार आनंदीलाल पतंगों का टकराव देखते हुए आकाश में कहीं खो गया। मानो इस हंगामे से उसे कोई मतलब नहीं था। मानो उसने अपने हाथों मोह-माया की कन्नी काट मन की पतंग को अंतरिक्ष में तैरता छोड़ दिया हो। मानो वह जान गया हो कि कैक्टस के फूल जितने आकर्षक होते हैं, उतने ही अस्थायी और दु:खदायी होते हैं। मानो इस चिकने, चमकीले संसार का रहस्य उसने ताड़ लिया हो—तृष्णा का एक छोटा सा बीज वटवृक्ष को जन्म देता है।

चंदा आज भी वह दिन भूली नहीं थी। बेगम शबाना की जीत के बाद उसकी छावनीवाले गाते-बजाते, नारे लगाते हुए नीचे हवेली में आए और दूसरी छावनी के लोग मुँहबाए। आनंदीलाल ऊपर ही बैठा रहा।

दूसरे दिन सवेरे कपड़े सुखाने के लिए रामप्यारी छत पर आई, तब भी वह मस्तराम आकाश को निहारता अपने स्थान पर गुमसुम बैठा था।

तब आनंदीलाल डाकिया था। कुली का बैज छिन जाने के बाद नवाब ने उसे डाकघर में नौकरी पर लगवाया था। साथ ही उसे चेतावनी भी दी थी, ''अब कभी गले में कफन बाँधने जैसी कोई हिमाकत की तो हम खुद तुम्हें बिना कफन जिंदा ही गाड़ देंगे।'' उसी पल आनंदीलाल ने अपना गुलबूटों और तितली-कीटों की कशीदाकारीवाला कफन उनको सौंप दिया। वह चौंककर बोले, ''इसका हम क्या करें?''

''जब यह मेरे किसी काम का नहीं तो इसे हुजूरेवाला रख लें। शायद हवेली में ही किसी के काम आ जाए।'' फिर उसने करुण-कातर नजरों से चिरौरी करते हुए कहा, ''बड़ी लगन से बनाया है, सरकार। इसे हिफाजत से रखें।''

पहले तो नवाब के माथे पर बल पड़ गए। बाद में यह सोचकर कि फिर कहीं पट्ठे के सिर पर जमाने को जीना-मरना सिखाने की सनक सवार न हो जाए उन्होंने कफन अपने पास रख लिया था।

आनंदीलाल एक आदर्श डाकिया बना। वह भी ऐसा बेमिसाल कि जिसे पद्मश्री का पुरस्कार देते हुए गलती से भारतरत्न का सर्वोच्च खिताब दिया जाए और फिर भी किसी को अफसोस नहीं हो।

कुलीगीरी की तरह यह नया काम उसकी रुचि के अनुकूल था। वैसे वे सारे काम उसे पसंद थे, जिनमें लोकसेवा की गुंजाइश हो। उदाहरणार्थ, कुली का काम छूटने के बाद उन फाकाकशी के थोड़े महीनों उसने किसी नई कंपनी के नहाने के साबुन बेचने का काम हाथ लिया था।

वह ठेला लगाकर चौराहे पर खड़ा रहता और कोई खरीदार आता, तब वह कंपनी के माल के साथ अपना 'माल' भी खपाने की कोशिश करता, ''तन की सफाई का इंतजाम तो आपने कर ही लिया श्रीमान।'' कहते हुए वह एक फैंसी डिबिया निकालकर ग्राहक के आगे धर देता, ''अब मन का मैल उतारने की यह करामाती टिकिया भी लेते जाओ।'' लोग इसे मजाक समझ हँसते हुए चल देते, मगर कभी कोई सयाना इस लतीफे को आगे भी बढ़ा देता। वह पूछता, ''क्या दाम है इसका?''

''समझदारों के लिए यह कोहेनूर है'', आनंदीलाल प्रसन्न होकर बताता, ''और नासमझों के लिए ढेले के बराबर भी नहीं।''

''हाँ, मगर इसका दाम क्या है?''

''मुफ्त।''

''मुफ्त!''

''दिव्यज्ञान की यह टिकिया है, इसका मोल कैसे हो सकता है?''

वह सयाना डिबिया को झपटकर वहीं खोलता और उसे निपट खाली देख चकरा जाता, फिर डिबिया आनंदीलाल के मुँह पर मार, दीदे दिखाकर कहता, ''खिंचाई करने को तुम्हें कोई और नहीं मिला?''

''यह हँसी की बात नहीं।'' डिबिया उठाकर आनंदीलाल उतनी ही गंभीरता से बोलता, ''संस्कारों और विकारों के मैल को धोने का यही तो एक रामबाण नुस्खा है।''

''मगर खाली डिबिया?''

''अरे बावले, यह डिबिया नहीं, मनुष्य-मन है।'' अब वह मुसकरा देता, ''यदि इसमें भरा जन्म-जन्मांतर का कूड़ा हम खाली नहीं करेंगे, इसे कैसे धोकर साफ कर सकेंगे?''

सयाना सोच में पड़ जाता। यही आनंदीलाल का सुख था। महीने भर में वह यदि एकाध ग्राहक के मन में 'शब्द' का बीज बोने में सफल रहता, धन्य हो जाता।

अंतत: नतीजा यह निकला कि न वह कंपनी का साबुन बेचने में सफल रहा, न अपनी करामाती टिकिया। अलबत्ता इन भुखमरी के दिनों में उसका जनसंपर्क थोड़ा और बढ़ा था।

डाकिया बनकर वह घर-घर में घुस गया।

जब वह डाक लेकर अपनी वरदी में निकलता, न केवल गली के कुत्ते उसके आगे-पीछे चलते, बल्कि खिलौनों के बैंड-बाजे बजाते, नाचते हुए बच्चे भी साथ-साथ चलते। तब ऐसा समा बँध जाता, जैसे डाक से भरा झोला लेकर कोई डाकिया नहीं, चुनाव का मौसम लेकर कोई नेता निकला हो।

दूर से ही शोर-शराबा सुनकर स्त्रियाँ चूल्हे-चौके छोड़ ड्योढ़ी पर आकर खड़ी हो जातीं, तरुणियाँ खिड़की और झरोखों से उसे आता हुआ निहारतीं, पुरुष अपनी-अपनी दुकान, ठेले पर से उसका स्वागत करते। इसका एक खास कारण भी था।

आनंदीलाल सिर्फ डाक नहीं, दीन-दुखियारों के दु:ख-दर्द भी बाँटता था। गाँव में जब हैजे या चेचक की बलाएँ आतीं, वह छुट्टी लेकर बस्तीवालों की सेवा-शुश्रूषा में जुट जाता।

गिद्धराज के अस्थिपंजर से नाई कनैयालाल की रीढ़ की एक हड्डी खिसक गई थी। ठीक से बैठ वह अपनी दाढ़ी भी नहीं बना सकता था, गैरों की हजामत कैसे बनाता? गाँव के हकीम ने उस पर तरस खाकर मालिश करने के लिए उसे साँड़े का तेल दिया। समस्या यह थी कि मलता कौन?

उसकी जोरू एक मल्ल की बेटी थी। उससे मालिश करवाने में बाकी सारी हड्डियों का चूरा हो जाने का पूरा खतरा था। उसके एक बेटी भी थी, मगर उसकी आयु अभी अपने बापू की गोद भिगोने की थी।

आनंदीलाल डाकिया नापित की गली में आता, तब अपना झोला उसकी खटिया तले रख प्यार से रगड़-रगड़कर उसकी पीठ की मालिश करता।

''तू तो भगवान् का अवतार है, बेटा।'' वह औंधे मुँह लेटे-लेटे ही आनंदीलाल की स्तुति करता, ''तेरे इस रूप को सबसे पहले मैंने पहचाना था। तू गुमनाम था, तुझे आनंदीलाल जैसा शुभ नाम देने का यश भी मुझ ही को है। इस नाते तू मेरा बेटा हुआ कि नहीं? अब एक बेटा बाप जैसा परोपकारी हो, इसमें हैरत काहे की!''

यह जग-जाहिर बात थी कि कनैयालाल के शब्द खोखले और मन मैला था। इस पर तुर्रा यह कि वह वैरीला भी था।

जब आनंदीलाल गाँव गलानियाँ में नया-नया आया था, उसका वरिष्ठ शिष्य बन, बैठे-बिठाए लखपति बनने के

उसने सपने सँजोए थे। उन्हीं रंगीन स्वप्नों पर आनंदीलाल ने कुली बन घड़ों पानी डाल दिया था। वह दाग भी अभी कहाँ मिटा था?

गाँववाले आपस में उसे मीठी छुरी कहते थे, इसमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं थी। उसके काटे को पानी तक नहीं मिलता था।

लोगबाग आनंदीलाल को चेताते, मगर वह कब माननेवाला था! एक रोज अवसर देख अल्लाहरखा पनवाड़ी ने कहा, ''भला शैतान की भी कोई सेवा करता है?'' मुसकराकर उसने उत्तर दिया, ''जिस दिन शैतान नहीं रहेगा, अल्लाह की भी खटिया खड़ी हो जाएगी मियाँ!''

वहाँ खड़े चंद भिश्ती, कहार, धोबी, जुलाहों में कोई चार्वाक या सुकरात तो था नहीं, जो उसका अद्वैतवाद का फलसफा पकड़ पाता। अपनी जेब से रानीछाप रुपए का एक सिक्का निकाल उसने जादूगर की तरह प्रदर्शित कर आगे कहा, ''बताओ, इसके कितने बाजू हैं?''

उत्तर पनवाड़ी ने ही दिया, ''किबला, यह तो कोई अंधा भी बता सकता है कि एक सिक्के के दो पहलू होते हैं।''

''अगर हम इसमें से एक पहलू हटा लें, तब?''

''नामुमकिन।''

''क्यों?''

''जिसके दो पहलू हों, वही तो सिक्का कहलाता है।''

''बिलकुल वैसे ही...' आनंदीलाल ने समझाया, ''शैतान के न रहने पर खुदा भी नहीं टिक सकता।''

सच और झूठ, उजाला और अँधेरा, दिन और रात, नेकी और बदी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, यह हकीकत सूरज बनकर सामने आई, मगर इसे स्वीकारना दूसरी बात थी।

आनंदीलाल का सच ऐसा पैना होता था कि उसे अब तक कोई पूर्ण रूप में स्वीकार कर सका हो तो वह सिर्फ एक ही शख्स था—शांतिमठ के महंत केवलानंद; जिन्होंने उसे अपना सद्गुरु माना था। तब इन गाँववालों ने भी यकीन कर लिया था। महान् मठाधीश कभी झूठा नहीं हो सकता, ऐसा श्रद्धालुओं का विश्वास था।

उसी अकीदे पर आनंदीलाल ने करारी चोट की थी, बल्कि जब कभी जनता ने उसे सिर-आँखों पर बिठाने की चेष्टा की, उसने अपनी इमेज, अपनी छवि रौंद डाली। प्रारंभ के दिनों में अपनी लंबी दाढ़ी मुँडवाने से लेकर शराब पीने तक उसने कई हरकतें की थीं।

डाकिए की नौकरी स्वीकार कर वह फिर एक बार शराफत के दायरे में आ गया। उसका आदर बढ़ने लगा। वह एक अच्छा इनसान बनकर खुश था, मगर डाकघर के अधिकारी नाराज। इसकी जायज वजह भी थी।

डाकिए का काम उसे जितना प्रिय था, डाकिए की खाकी वरदी से उसे उतनी ही चिढ़ थी। नौकरी में लगने से पहले साक्षात्कार के रोज ही उसने मुख्याधिकारी से गुजारिश की थी, ''क्या वरदी पहनना आवश्यक है?''

वह चौंके। आज से पहले कभी किसी उम्मीदवार ने न ऐसा सीधा, सरल सवाल किया था, न ही उन्होंने इसके बारे में सोचने की जरूरत समझी थी। सावधानी बरतते हुए वह राजनीतिज्ञ की चतुराई से बोले, ''क्या...आवश्यकता नहीं होनी चाहिए?''

''हरगिज नहीं।''

''भला क्यों?''

''इससे कर्मचारी अपनी पहचान खो बैठते हैं।'' आनंदीलाल ने बताया। ''आज वे अपनी वरदी से जाने जाते हैं, कल नंबर से जाने जाएँगे।''

मुख्याधिकारी को बात जँच गई, ''है...दमखम तो है!'' डाकघर में तबादला होने से पहले वह सेना में क्लर्की कर चुके थे। वहाँ जब युद्ध या दुर्घटना में किसी जवान की मृत्यु हो जाती, तब भोजनालय के काले तख्ते पर खड़िया से एक आँकड़ा लिख दिया जाता—फलाँ-फलाँ नंबर का निधन हो गया है।

जब पहली बार उन्होंने ऐसी सूचना देखी, उन्हें अजीब सा लगा था। भला नंबर भी कहीं मरते होंगे? मृत्यु तो प्राणियों, जीवों की होती है। तभी उनके मस्तिष्क में डुगडुगी बजी।

मनुष्यों को संगदिल, भावनाशून्य बनाने का यह सफल प्रयोग था। यदि सैन्य के जनरल मृतक का पूरा नाम दें तो आँखों के आगे तुरंत एक जीते-जागते इनसान की तसवीर खड़ी हो। उसके माता-पिता, बहू-बेटे, उसका भरा-पूरा कुनबा झिलमिलाने लगे। संभव है कि उस मृतक का नाम पढ़नेवाले मनुष्य का मन करुणा से भर जाए, वह दो आँसू भी गिरा दे।

''आनंदीलाल!'' मुख्याधिकारी ने उसके विचार से सहमत होते हुए फैसला सुनाया, ''सरकार की नौकरी करनी हो, तो उसके नीति-नियम भी स्वीकारने होते हैं। वरदी केवल आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।''

इस तर्क के आगे दलील देने की कोई गुंजाइश नहीं थी। आनंदीलाल अपनी वरदी के बोझ तले दबकर रह गया। इसी दबाव के एहसास के कारण वह अकुला उठता, दो-चार महीनों में एकाध बार उसके सिर पर धुन सवार होती और वह उसी पुराने प्रश्न को लेकर अपने चीफ से उलझ जाता।

वे उससे वैसे ही आजिज थे, तिस पर पापनापित कनैयालाल (जिसकी रीढ़ की हड्डी आनंदीलाल ने दुरुस्त की थी) ने उसी के खिलाफ मुख्याधिकारी के कान भरने शुरू कर दिए।

''अब काह बताए साहब,'' उनके बाल काटते हुए नाई ने पटाखा छोड़ा, ''क्या कोई डाकिया कुत्तों का जुलूस लेकर डाक बाँटने के लिए निकलता है! यह खबर तो केरल में उलट दी गई कम्युनिस्ट सरकार से ज्यादा दिलचस्प है। इसे रेडियो पर देना चाहिए।''

जिस किस्से की शुरुआत ऐसी रसीली हो, उसको आगे सुनने को किसका मन लालायित नहीं होगा! हरी झंडी मिलने पर कनैयालाल ने विस्तार से सबकुछ बताया। यही नहीं, पिछले एक पखवाड़े में इकट्ठा की हुई सारी जानकारी उसने मिर्च-मसाले के साथ बयान की।

''अभी कल ही की बात है, साहब! अपने मदरसे के मुल्ला की जोरू के सीने में अचानक दाह उठी तो वह फटीचर अपना झोला-वोला फेंक सीधा डॉक्टर बाबू को लिवाने दौड़ गया।''

तीर निशाने पर सटीक बैठा जान काइयाँ नाई अपनी छवि पर सुरखाब के पंख लगाना भी जानता था। ''हाँ...एक बात हमने जरूर काबिले-तारीफ देखी,'' साहब की हजामत पूरी कर उनके हाथ में शीशा थमाते हुए उसने जोडा, ''जब तक डॉक्टर बाबू के साथ वह नहीं लौटा, कुत्ते उसके झोले पर पहरा देते रहे। किसी की मजाल कि कोई एक लिफाफा भी छूले।''

अपने फर्ज के समय डाक का झोला छोड़ किसी दूसरे का काम करना अपने आप में आनंदीलाल को दफा करने के लिए ठोस वजह थी, मगर मुख्याधिकारी ने वैसा नहीं किया। जाने-अनजाने उन्हें अलबेले डाकिए से लगाव हो गया था। डाकघर के सर्वोच्च ओहदे पर होने के बावजूद भी मन की जो शांति उन्हें नहीं मिल सकी, वह इस फक्कड़ की आँखों से, चेहरे से, अंग-अंग से झाँक रही थी।

और—

एक रोज उन्हें पता चला, वरदी के खिलाफ आनंदीलाल दूसरे कर्मचारियों को भड़का रहा है। वह चौंक उठे। खतरे की घंटी बज उठी। ''कहीं ये सारे डाकिए एक हो गए तो यहाँ भी यूनियन बनने की पूरी संभावना है।''

आनंदीलाल की वरदी उतार ली गई।

चंदा के जीवन में इससे कोई फर्क नहीं आया। आनंदीलाल की डाकिएवाली छवि, जो उसके बाल्यकाल में अंकित हुई थी, आज भी उसके मन में यथावत् थी। आज भी उसे याद था, जब आनंदीलाल डाकिया अपनी ढीली-ढाली वरदी और कैनवास के फटे जूतों में कंधे पर झोला डाले आता, उसके लिए एक ताजा गुलाब लाना कभी नहीं भूलता था।

तब वह नहीं जानती थी कि रोजाना उसे एक फूल क्यों दिया जाता है! करीब दस वर्ष की होने पर उसे यह राज पता चला। रामप्यारी, उसकी माँ 'देवी माँ' की सेवा करती थी। वह रामप्यारी की बेटी पर फूल चढ़ाता था, यह जानते हुए भी कि चंदा की असली माँ रामप्यारी नहीं, उसकी स्वर्गीय बहन थी।

बूढ़ी बेगम को सिलाई की मशीन में तेल डालकर पहिया घुमाती देख चंदा को सहज ही विचार आया-कहीं इसे भी आनंदीलाल की हवा तो नहीं लगी है?

वह नादान क्या जाने, बात उतनी सतही नहीं थी!

16

खशखशी दाढ़ीवाले जुम्मन दरजी को लगा, बात बेमिसाल भी थी।

''बेगम साहिबा, आप!'' बूढ़ी बेगम को अपनी दुकान के आगे खड़ी देख उसने विस्मय से कहा, ''कहीं रास्ता तो नहीं भूली?''

''इत्ता सा गाँव है जी,' दुकान में काम कर रहे आधा दर्जन दरजी और उनकी बड़ी मशीनों पर नजरें घुमाते हुए वह बोली, ''इसमें छोटी सी एक सड़क है। साठ साल में हम राह नहीं भूले तो अब क्या भूलेंगे?''

हकीकत यह थी कि अब न गाँव छोटा रहा था, न सड़क। आजादी के बाद से अधिक नहीं तो थोड़ी-बहुत प्रगति कुमाऊँ के इस इलाके में भी नजर आती थी।

'इत्ता सा गाँव' फैलकर कस्बा बन गया था। छोटी सी सड़क काफी चौड़ी हो गई थी। बसों और अन्य वाहनों का आवागमन बढ़ा था। फासले बड़े थे, फिर भी बूढ़ी बेगम को सबकुछ करीब लगा।

दुकान के ओटले की दो सीढ़ियाँ चढ़कर भीतर जाते हुए उसे खुद अचरज हुआ। अभी दो रोज पहले वह कब्रिस्तान गई थी, तब यही अंतर मीलों लंबा लगा था और एकाएक घट कैसे गया?

''साठ साल में आपने कभी भूले से भी हमारी दुकान पर कदम नहीं रखा।'' जुम्मन दरजी ने उसे अपने आगे बाइज्जत गद्दी पर बैठाते हुए याद दिलाया, फिर कहा, ''कहिए चाय लेंगी या दूध?''

''हम तो काम की तलाश में आए हैं जी।''

जुम्मन दरजी को भरोसा नहीं हुआ कि उसने जो कुछ सुना, वह सही था। 'क्या...क्या फरमाया आपने?'' कान में एक उँगली डाल घुमाते हुए वह बोला। उसकी आँखें गौर से अपने शाही मेहमान का चेहरा टटोलने लगीं।

''हमें आर्डर का काम चाहिए।'' बूढ़ी बेगम ने बताया। बीच में पड़े कलमदान पर शोभा देती लाल रंग की खाताबही पर उसकी निगाह यों ही टिकी थी।

जुम्मन दरजी हँस दिया, ''इस गरीब की चुहल कर रही हैं आप।''

''भला हम आपसे क्यों मजाक करने लगे!''

वह गहरी सोच में पड़ गया। असद महल की रानी इतनी गई-गुजरी नहीं थी कि उसे अपना परकोटा छोड़कर

रास्ते पर आना पड़े! कम-से-कम आज भी वह पच्चीस लाख रुपए कहीं गाड़े बैठी थी। उतने ही रुपयों के जेवरात से भरी संदूकची सो अलग। ऐसी भारी-भरकम मोहतरमा को मोहताजी कैसे?

''आपका बेटा दिल्ली में है,'' थोड़े पलों बाद जुम्मन दरजी ने होंठ खोले, ''करोड़पति है। गुजर-बसर के लिए माहवार पाँच हजार रुपए वह भेजता ही होगा।''

''बड़े मियाँ...' वह चहकी, ''जो मिठास मेहनत की रोटी में होती है, वह बेटे की कमाई में कहाँ?''

जुम्मन दरजी की आँखें फिर सुराग ढूँढ़ने लगीं। फिर एक बार मायूसी के अतिरिक्त उसके हाथ कुछ नहीं लगा। ''यह एहसास आपको अचानक कैसे हुआ?''

उसने नए सिरे से कुरेदना चाहा। बेगम नाराज हो गई। वह यहाँ साक्षात्कार देने नहीं, अपने मतलब से आई थी, ''अब आप हमें काम देते हैं या हम किसी दूसरी दुकान पर जाएँ?''

जुम्मन दरजी उसके तेवर देखकर झेंप गया। आखिर तो वह नवाबजादी थी। ''रस्सी जल गई, मगर ऐंठन नहीं गई।'' ठस्सा अभी भी बरकरार था।

''आपके पास सिलाई का संचा होगा ही।''

उसने 'हाँ' भरते हुए बताया, ''कल ही सारे कलपुर्जे साफ कर उनमें तेल डाला है। आज यहाँ आने से पहले हमने आजमाकर भी देख लिया।''

''अरे मुश्ताक,'' कपड़े की कतरनें झाड़न से एक कोने में करते हुए लड़के को उसने आवाज दी, ''थैलियों के पचास टुकड़े बाँध दे, बेटा।'' फिर बूढ़ी बेगम से मुखातिब होते हुए दाँत निपोरकर जोड़ा, ''एक थैली सिलने के हम दस पैसे देते हैं।''

''हमें मंजूर है।'' कहते हुए बेगम खड़ी हुई। उसकी धुँधली आँखों से हलकी सी मुसकराहट उभरकर उसके चेहरे पर फैल गई।

जुम्मन दरजी एकटक देखता रहा। जब तक अपनी नक्काशी की हुई छड़ी के सहारे डोलती हुई बूढ़ी बेगम उसकी आँखों से ओझल नहीं हुई, वह निहारता रहा।

आखिर गड़बड़ी क्या है?

चंदा की तरह वह भी गच्चा खा गया था। चंदा की भाँति उसकी विचार-तरंगें भी भोंपूवाले ग्रामोफोन की सुई बनकर आनंदीलाल के नाम पर अटक गई थीं। यह एक ही छवि उसके आगे उभरकर बार-बार आती थी।

उसका मन चाहा, वह आनंदीलाल से जाकर पूछे कि जनाब, तुम्हारी देवी माँ के माथे पर ऐसी कौन सी मुश्किल आ पड़ी कि अब वह पराए काम करने पर विवश हो गई? क्या हवेली के तहखाने में गड़े खजाने को कोई चोर सेंध लगा गया या जमीन ही उसे निगल गई?

तर्क की यह पगडंडी भी कहाँ सही थी? यदि सचमुच उसकी विरासत गायब हो गई होती, तब बूढ़ी बेगम के चाँदी के तारवाले ऐनक पर बैठी अतीत की जो भूली-बिसरी चमक दिखाई दी थी, वह न होती। घिसटती चाल में परिवर्तन न होता। दुकान पर आकर उसे सबसे पहले अपनी बिपदा सुनानी चाहिए थी।

यह भी कैसा अजूबा था कि आज जुमेरात नहीं होते हुए भी वह ड्योढ़ी से बाहर निकली थी! नवाब सआदत जाँ के इंतकाल के बाद, यानी कि आखिरी दस वर्षों में ऐसा कभी नहीं हुआ था। यही चौक तो उसकी रहगुजर थी। जुम्मन दरजी की नजरों की जद से सप्ताह में एक बार वह मुरदा बिलानागा गुजरता था।

जीते-जी जामाजेब बेगम शबाना को तिल-तिल नष्ट होते देख कभी उसके होंठों से एक ठंडी आह निकल जाती, ''हाय, क्या से क्या हो गया!''

दो घोड़ोंवाली शानदार बग्घी का वह मंजर गाँव गलानियाँ के बड़े-बूढ़े (जिनमें जुम्मन दरजी भी शामिल था) चटखारे लेकर आज भी अपने नाती-पोतों को शब्दों में सजाकर बताते थे।

नवाब की बगल में और कोचवान के स्थान पर बेनकाब बैठी सन्नीकाश बेगम शबाना सैर करने के लिए निकलती, तब उसका ठस्सा, वह शानो-शौकत, खुशमिजाज मुखड़ा और ऊपर से सादगी का छिड़काव देख मर्दों के पाँव जहाँ-के-तहाँ थम जाते। कई बाँके दिलों पर बिजलियाँ टूटतीं, कई होंठ थिरक उठते...यूसुफ की जुलेखा ने दोबारा जन्म लिया है।

पुश्तैनी कारीगर होने के नाते किसी जमाने में जुम्मन दरजी का सीधा संबंध अड़ोस-पड़ोस के पंद्रह गाँवों के रईस घरानों से था। नवाब की हवेली उनमें अपवाद नहीं थी। लिबास ईद के लिए बनवाने हों, चाहे मोहर्रम के लिए वह हाजिर हो जाता। (युवावस्था में उसने स्वप्न में भी सोचा नहीं था कि बदलता समय उससे थैलियाँ भी सिलवाएगा।)

एक शाम हवेली पर से न्योता आया तो उसे ताज्जुब हुआ। ''गुस्ताखी माफ...'' कहते हुए उसने छोटे नवाब के खिदमतगार से पूछा, ''न कोई तीज, न त्योहार और ये बुलावा कैसे?''

''अगले हफ्ते खीर-चटाई की रस्म जो है।''

''क्या नन्हे मियाँ छह महीनों के हो गए?''

यह 'मियाँ' शब्द खिदमतगार को कहीं चुभ गया। असद महल से अपनी वफादारी जताते हुए वह तुरंत बोला, ''नन्हे मियाँ नहीं, छोटे नवाब कहो किब्ला।''

''तब हुजूरेवाला सआदत जां को हम क्या कहें?''

''सरकार तो घर में पालना बँधते ही छोटे से बड़े नवाब कहलाए हैं।''

युवा जुम्मन को लगा, रियासतों पर बुलडोजर चल गया, मगर इनके चोंचले अभी नहीं गए। जब देखो तब किसी-न-किसी बहाने नए लिबास सिलवाते हैं और पुराने गरीबों में बाँट देते हैं।

अब दुधमुँहे बच्चे के लिए भी आधा दर्जन नई पोशाकें बनानी होंगी। 'कोई मजाक थोड़े ही है, खीर-चटाई की रस्म है। नन्हे मियाँ अब मालमलीदे खाने की बिस्मिल्लाह करेंगे।'

अपने विचारों में काफी तंज घोलने के बावजूद उसके होंठों पर मुसकान फैल गई। नवाबी चोचलों के कारण कई मुफलिसों के साथ उसका भी लाभ था।

जैसे किसी महँगे गुड्डे को सजाना हो, जुम्मन ने ढाके की मलमल और जामदानी से नन्हे अकीक के लिए छोटी-छोटी अचकनें और छोटे-छोटे पायजामे सिले, खिलौनों जैसी नोकवाली दुपल्ली टोपियाँ बनाईं और खुद भी अपनी शेरवानी पर दुशाला और कान में जन्नतुल-फिरदोश का फाहा डाल हवेली का रुख लिया।

आज सुबह से जनानखाने में डोमनियों के नाचगान का कार्यक्रम था। रस्मअदायगी के बाद बाराहदरी में कव्वाली की महफिल जमनेवाली थी। इस अवसर की शोभा बढ़ाने के लिए लखनऊ के दो प्रसिद्ध कव्वाल भाइयों को नवाब ने खास तौर से बुलवाया था।

यह वाकया तब का है, जब आनंदीलाल बीच बाजार में दस हजार रुपयों के नोटों की होली खेल नया-नया कुली बना था। वही लंबे बेतरतीब बाल, शरीर पर वही मैला कुरता-पायजामा (अभी उसमें चिंदी का केवल एक ही पैबंद लगा था), पाँव में वही कैनवास के फटे जूते (जिसमें से अब दो के बजाय तीन उँगलियाँ झाँकती थीं) और सीने पर चमकता हुआ बैज।

उन्हीं दिनों जुम्मन की उससे पहली भेंट हुई, जो वह शायद ही भूल सकनेवाला था। तिथि उसे आज भी याद थी। स्वतंत्रता के बाद पंद्रह अगस्त की पहली छुट्टी का वह दिन था। जुम्मन अपनी परदानशीन बीवी और तीन बच्चों

को लिए चिनारबाग में सैर करने निकला था। नहर के किनारे यह स्थान वही था, जहाँ गाँव के लौंडे लड़कियों को पटाकर इश्क फरमाते थे।

जुम्मन ने अपनी शादी (या बरबादी) के बीज यहीं बोए थे। तब उसे कहाँ पता था कि प्रेम के अनार से लाल मिर्च भी निकल सकती है।

मन-ही-मन कुढ़ते हुए वह बीवी-बच्चों के साथ चहलकदमी कर रहा था कि उसकी नजर दूर कहीं चिपक गई। उसने ध्यान से देखा। आनंदीलाल उसी पेड़ तले लेटा था, जिसके तने पर जुम्मन ने कभी बड़ी लगन से अपने नाम के साथ मिर्च-बेगम का नाम भी कुरेदा था।

जुम्मन-जमीला!

तब कितना सुहाना लगता था वह!

और अब?

''लाहौलवला...।'' बुदबुदाते हुए वह थूका। बीवी ने छाँववाली जगह पसंद कर फर्श बिछाया और तीनों बच्चों के साथ वह खुद भी नमकीन और बेसन के लड्डू के डिब्बे खोल बैठ गई। जुम्मन नहीं बैठ सका।

कोई अनजानी कशिश उसे आनंदीलाल की तरफ खींचने लगी। वह चाबी दिए हुए खिलौने की भाँति नाक की सीध पर चलने लगा। साथ-साथ उसके, उसके विचार भी चले।

हो-न-हो, मगर आनंदीलाल कोई आला दरजे का आरिफ, पहुँचा हुआ ब्रह्मज्ञानी मालूम पड़ता है, वरना धन को ठुकराकर कोई कुली बनने की कैसे सोच सकता है?

चलते-चलते उसे थोड़ा अफसोस भी हुआ। कई महीनों तक आनंदीलाल गाँव की सीमांत पर डेरा डाले पड़ा रहा, बैलगाड़ियाँ भर-भरकर लोगों की भीड़ उसके दर्शन को (और 'एक पैसे का तमाशा' देखने को भी) आती रही, उसने कभी आँखें उठाकर उस दिशा में नहीं देखा था। जब कभी किसी ने 'बरगदवाले ब्रह्मचारी बाबा' का जिक्र किया, उसने केवल एक ही वार में चर्चा पर फुलस्टाप लगा दिया था, ''अमाँ ऐसे लँगोटे हमने उतने देखे हैं, जितने कि हमारी दाढ़ी में बाल हैं।''

जैसे-जैसे वह आनंदीलाल के करीब आता गया, मंजर साफ होता गया। उसने देखा: चिनार तले लेटे हुए आनंदीलाल के सिरहाने बैठी एक बँदरिया उसके झोंटों में से जुएँ ढूँढ़ रही थी।

शुबहा के लिए अब जुम्मन के दिल में कोई कोना भी नहीं रहा। ''यही सच्चे सूफियों की पहचान होती है, बंदर भी उनके दास बन जाते हैं।''

यकायक छलाँग लगाकर बँदरिया पेड़ पर चढ़ने लगी, तभी आनंदीलाल को खयाल आया—कोई अजनबी पधारा है। वह उठ बैठा। सामने जुम्मन को दोनों हाथ जोड़े अदब से खड़ा देख उसने कहा, ''तशरीफ रखिए।''

कुछ भी रखने के लिए यहाँ न दरी थी। न चटाई। तनिक वह हिचकिचाया, उसे अपने क्रीजरहित केंचुली के सफेद अँगरखे और वैसे ही नफीस, चमकीले, लाल नैफेदार चौड़े पायजामे का विचार आया, फिर भी वह परवाह नहीं कर घास पर बैठ गया।

मन की जो शांति उसे आनंदीलाल के सत्संग में महसूस हुई, वह उसने शादी से पहले भी कभी नहीं जानी थी। चंद पलों के लिए वह भूल गया कि वह मिर्च-बेगम का पति है, दुखियारा है, उसकी जिंदगी नरक बनी हुई है।

तभी उसकी नजर पेड़ पर कुरेदे हुए नामों पर जा बैठी। भीतर कहीं दाल के बघार का छनाका उठा और सच्चाई सामने आ गई। वह भावावेश में आकर बोला, ''हमारी शान देख जमाना भले ही हमें सुखी समझता हो, अंदर से हम बहुत दु:खी हैं। न दिन का चैन है, न रात को आराम। अब आपसे क्या छिपा है? आप तो लोहे को सोना

बनानेवाला पारस हैं, मरदे-हक्कानी हैं। उस बादल जैसे हैं, जो किसी भी भेदभाव के बिना सबके खेतों पर एक जैसा बरसता है। क्या आपकी दया और मेहर का थोड़ा सा छिड़काव हम पर नहीं हो सकता?''

ध्यान से सबकुछ सुनकर आनंदीलाल ने पहला प्रश्न किया, ''तुम नमाज पढ़ते हो, मियाँ?''

वह तपाक से बोला, ''जब से होश सँभाला है, एक रकात भी नहीं छूटी।''

''और रोजे?''

''रमजान शुरू हों, उससे दी दिन पहले ही हमारे रोजे शुरू हो जाते हैं। उस मुबारक महीने में हम रात-रात भर इबादत भी करते हैं।''

''फिर भी कुछ पल्ले नहीं पड़ा?''

वह चौंका, ''क्या मतलब?''

''सालों की इबादत के बावजूद जब खुदा ने तुम पर अपनी कृपा की एक बूँद भी नहीं टपकाई, तब मैं क्या खाक छिड़काव करूँगा?''

यही समस्या जुम्मन की भी थी। कभी-कभी इसी विचार को लेकर वह बेचैन हो उठता। दुआ के लिए जब उसके हाथ उठते, वह एक ही राग अलापता था, ''रब्बा, हमने ऐसा कौन सा गुनाहे-कबीरा किया है, जो तू अपने नेक बंदे से रूठा हुआ है?''

''क्योंकि तुमने रोजे नहीं रखे, नमाजें नहीं पढ़ीं, केवल पहलवानों की भाँति मश्क ही की है।''

बिना पूछे ही आनंदीलाल ने अपनी स्पष्ट वाणी में कारण बताया तो जुम्मन ने उसका एक पाँव खींचकर अपनी गोद में ले लिया। फिर उसे दबाते हुए कहा, ''अब आप ही बताएँ हम क्या करें?''

''वही...' आनंदीलाल बोला, ''जो इस समय मैं कर रहा हूँ।''

''यानी कि कुछ भी नहीं?''

वह मौन रहा।

पाँव दबाना छोड़कर जुम्मन सोच में पड़ गया। इस दौरान वह अपने सिर के बजाय अपनी सलमदार टोपी खुजलाता रहा। थोड़ी देर बाद कुछ समझ में आने पर उसने सवाल किया, ''कहीं आप यह तो नहीं कहना चाहते कि हम मसजिद से मुँह मोड़ लें?''

उसने इशारे से 'हाँ' कहा।

''हम काम-धंधा भी छोड़ दें?''

उसने फिर 'हाँ' कहा।

''तब हमारे बच्चों का क्या होगा? कौन पालेगा उन्हें?''

''किसी को पालने-पोसनेवाले तुम कौन होते हो?'' आनंदीलाल ने उसे आड़े हाथों लिया, ''क्या सबको रिजक तुम देते हो? सूरज तुम्हारे कहने से निकलता है? फूल तुम्हारे हुक्म से खिलते हैं? हवाएँ तुम्हारे इशारे से चलती हैं?''

वह सन्न रह गया। इसलिए नहीं कि आनंदीलाल के एक-एक शब्द में सच्चाई की खनक थी, बल्कि इसलिए कि यही सब कुरान शरीफ में लिखा है।

''कमाल है, इतनी सरल बात आज तक सूझी ही नहीं!'' वह रोजाना तोते की तरह रटता रहा था—कर्ता केवल एक है, वह परवरदिगारे दो आलम है। फिर भी वह कैसे चूक गया?

''इसीलिए कहता हूँ कि जैसे हजरत मुहम्मद गारे-हीरा में जा बैठे थे, तुम भी कोई खामोश जगह चुनकर थोड़े दिनों के लिए बैठ जाओ।'' आनंदीलाल ने आगे कहा, ''शुरू-शुरू में तुम्हारा जी घबराएगा, खुदा के रसूल की तरह तुम

भी काँपने लगोगे, पसीना-पसीना हो जाओगे, क्योंकि तुम्हारे भीतर का सारा मैल उभरकर सतह पर आने लगेगा। धीरे-धीरे तुम्हारी आत्मा शीशे की तरह साफ होती जाएगी। एक रोज तुम खुद अल्लाह के नूर को अपने मन में पाओगे।''

''मगर मैं मसजिद से मुँह मोड़ लूँ तो मेरा ईमान ही डूब न जाए?''

चर्चा समाप्त करते हुए आनंदीलाल ने अपना तकियाकलाम दोहराया, ''हाँ...सो तो है।''

वह अपना पायजामा झाड़ते हुए खड़ा हो गया। आत्मा की शांति के लिए उसे जादू की कोई छड़ी पाने की जो थोड़ी उम्मीद थी, वह भी मिट्टी में मिल गई।

''सुसरा, लानती यजीद है यजीद।'' बीवी-बच्चों के पास लौटते हुए वह ईमाम हुसैन के कातिल का स्मरण कर बड़बड़ा रहा था, ''कहता है कि उसकी तरह मैं भी जहन्नुमी हो जाऊँ।''

इस मुलाकात के तीन महीनों बाद वे दोनों फिर रू-ब-रू हो गए। खीर-चटाई के जश्न में शामिल होने का नेवता आनंदीलाल को भी मिला था।

इस बार जुम्मन ने उससे दुआ-सलाम करने की आवश्यकता नहीं समझी। आनंदीलाल ने मुसकराकर आदाब किया तो वह मुँह फेरकर बगलें झाँकने लगा।

कव्वाली के इस जलसे में बन-ठनकर आए नवाबजादों के बीच फटेहाल आनंदीलाल उसे मोती-पुलाव के कौर में आए कंकड़ सा लगा। ''कैसा दौर आ गया है, मेरे मौला! अब तेली-तंबोली भी शाही महफिलों में दिखाई देने लगे हैं।''

खीर-चटाई की रस्म चंद मिनटों में समाप्त हो गई। जैसे ही बादाम, पिस्ते और केसरवाली गाढ़ी खीर का एक चम्मच दूल्हा बने नन्हे अकीक के मुँह में दिया गया, बधाइयों की बदली बरस गई।

किसी बेगम ने उसके पालने में सौ का नोट रखा था तो किसी शेखजादी ने सोने की अशरफी। किसी खाला ने उम्रेदराज के लिए दुआ की थी तो किसी फूफी ने बोसा भीलिया।

सुबह से जनानखाने में नाच-गा रही डोमनियाँ बख्शीश पाकर चलीं तो बारहदरी में कव्वाली शुरू हुई। 'साँसों की माला पे मैं, सिमरूँ पी का नाम' कलाम सूफियाना था। लखनऊ के दोनों कव्वाल भाइयों ने जुगलबंदी से ऐसी इब्तिदा की कि देखते-ही-देखते समा बँध गया। मजमा झूमने लगा। एक-एक शेर पर दाद और नोटों की बारिश होने लगी। परदापोश औरतों के साथ बैठी बेगम शबाना ने चिक के पीछे से देखा, भरी महफिल में आनंदीलाल दरवेश की तरह नाच रहा था। उसके भावपूर्ण नृत्य में मस्ती थी और बेखुदी भी, खुमारी थी और रंगीनी भी। यह कोई नई बात नहीं थी। तकल्लुफ, संकोच जैसे शब्द आनंदीलाल के शब्दकोश में नहीं थे।

जब जुम्मन निरंकुश होकर उसके साथ जुड़ा, केवल बेगम शबाना ही नहीं, सारे आमंत्रित मेहमान भी कव्वालों की नशीली धुन और उनकी सुरीली आवाज के जादू को मान गए। अभी कल तक आनंदीलाल को काफिर कहकर जो शख्स चौक-चौराहे पर बदनाम कर रहा था, आज वह उसी के साथ नाच रहा था।

कव्वाली का पहला दौर खत्म हुआ और साथ ही उसका कैफ भी। जुम्मन होश में आया, तब वह मजमे के सामने आनंदीलाल की बाँहों में बाँहें डाले खड़ा था। वह घबरागया।

''मियाँ जुम्मन!'' किसी को व्यंग्य सूझा, ''आखिर तुमने भी काफिर से हाथ मिला लिया!''

वह अभी भी बौखलाया हुआ था, इसलिए उत्तर आनंदीलाल ने दिया, ''उसे भी पता चल गया है, जब खुदा एक है तो बंदों में भेदभाव कैसा?''

यह अमृत वचन भी तो पत्थर की लकीर के समान था। इसका जवाब न किसी मुल्ला के पास था, न किसी

काजी के, जुम्मन जैसे एक साधारण मुसलमान के पास कैसे होता?

यौवनकाल की यादों के साथ कुफ्र और ईमान के द्वैत-अद्वैत का यह मसला भी उसने ताक पर चढ़ाकर रख दिया था। काम की तलाश में निकली शाही मेहमान के बदले हुए तेवर देख आज उसे फिर सबकुछ याद आ गया था।

❑

बहता पानी : दो

1

बूढ़ी बेगम की दिनचर्या अब बदल चुकी थी।

पहले वह तड़के उठती, फजर की नमाज पढ़ती और गरम चाय की दो प्यालियाँ पीकर सो जाती। फिर दिन चढ़े ग्यारह और बारह के बीच जगकर बावरचीखाने में एक चक्कर लगाती, चंदा को कुछ सूचनाएँ देती। तब तक जोहर-असर की नमाज का समय हो जाता।

वह नमाज पढ़, दोपहर का भोजन निपटाकर फिर लेट जाती तो शाम से पहले उसकी आँखें कभी नहीं खुलतीं।

उसका यह समय सूखे फौवारेवाले चबूतरे पर बैठ रंग बदलते आकाश को निहारने का होता। देर तक वह मौन दृष्टि से देखती रहती। कभी एक तन्हा बदली को नीलगगन में भटकती हुई देख उसे अपने अभिशप्त एकाकीपन में से टीस उठती महसूस होती।

कभी यायावर परिंदों के झुंड को एक दिशा से दूसरी में जाते हुए देख वह सोचती, ये पंछी कहाँ से आते होंगे? जन्नत कहाँ होगी? जानेजाना सआदत जाँ कहाँ होंगे? कौसर के किनारे हूरों के बीच बैठ उनको शेरों सुखन सुनाते होंगे, शतरंज की बिसात पर फरिश्तों के संग अंगूर की शराब पीते होंगे? क्या ऐसे हसीन माहौल में उन्हें हमारा खयाल भी आता होगा?

इन प्रश्नों के उत्तर मिलें, इससे पहले परछाइयाँ सिमट जातीं, सूरज ढल जाता, आकाश में बिखरा हुआ गुलाल धुल जाता। वह स्वयं भी मगरिब-इशा की अंतिम सात रकातें नमाज अदा कर दूध-खिचड़ी लेती। फिर सोने का समय हो जाता।

आज पहली बार बूढ़ी बेगम अपनी सुबह की नमाज चूक गई। उसने घंटा भर बाद कजा नमाज अदा कर अपने मन को दिलासा दिया, ''मेरा मालिक गफूरूर रहीम है, दयावान है, माफ कर देगा।''

जानमाज तह कर उसने अलमारी में रखी और चाय पी। नया काम शुरू करने की खुजलाहट कब की हो रही थी। सिलाई का संचा लेकर वह तख्ते पर बैठी। तुरंत थैलियाँ सिलने में वह जुट गई।

उसकी उभरी हुई नसोंवाले बूढ़े हाथ फुरती से पहिया घुमाने लगे। उसकी कोमल उँगलियाँ अठखेलियाँ करती हुई सुई के इर्द-गिर्द नाचने लगीं। मशीन से उठ रही खटखटाहट हवेली के सन्नाटे में गूँज उठी।

खिड़की के पास खड़ी होकर गेंहूँ साफ करती चंदा बीच-बीच में कनखियों से मालकिन की ओर देख लेती थी। उसकी आँखों में थोड़े अनुत्तरित प्रश्न थे तो कुछ कड़वाहट भी। अब तो संचे की आवाज भी उसे अखरने लगी, मगर वह लाचार थी। जब भी उसने मालकिन की आयु को मद्देनजर रखकर कुछ कहने का साहस किया, वह चिढ़ गई, लेकिन उत्तर हँसकर ही दिया था, ''अभी हमें बुढ़ापा नहीं आया, बेटी। देखो, हमारी रगों में आज भी बिजलियाँ भरी हैं।''

''मालकिन!'' चंदा ने उसके बेटे को याद कर नया विषय छेड़ा, ''सरकार को पता चलेगा कि आप दस-दस पैसों में थैलियाँ सिलती हैं, तो वे खफा नहीं होंगे?''

बूढ़ी बेगम ने उसकी तरफ बिना देखे ही 'ना' में सिर हिला दिया।

उसने फिर पूछा, ''क्यों?''

''हम पैसों के लिए थोड़े ही काम करते हैं?''

''तब?''

''तीलियों के बदले करते हैं जी।'' पहिए को रोक अब उसने चंदा को देखा, ''या सलाई की डिबिया उलटो या संचा चलाओ। हमें यही ठीक लगा।''

हाथ में गेंहूँ की थाली धर वह मशीन पर झुके हुए बूढ़ी बेगम के चेहरे को एकटक देख सोच रही थी, मालकिन के उत्तर में पहेली थी या सनक?

वास्तव में बूढ़ी बेगम थोड़ी शरारती भी हो गई थी। कभी चंदा को जान-बूझकर उलझाने में उसे खुशी होती थी। खासकर जुमेरात के रोज वह तैयार होकर अलमारी में जड़े आईने के आगे खड़ी होती, चंदा के दीदे बाहर निकल आते।

आज जुमेरात थी। आज शौहर की कब्र पर फूलों की चादर चढ़ाने और फातिहा पढ़ने का दिन था। बूढ़ी बेगम आँखों पर चाँदी की कमानीवाला ऐनक लगा, हाथ में लकड़ी लिये सीधी सड़क पर सीधी जा रही थी।

फूल-फूल पर बैठते भौंरे की भाँति उसकी नजरें कहीं टिकती ही नहीं थी। कभी वह चौक की दुकानों को देखती थी तो कभी प्रधान बस-अड्डे की भीड़ को। अलमोड़ा से अभी-अभी आई हुई एक बस के यात्री बाहर निकल रहे थे। उनमें कुछ देशी थे तो चंद विदेशी भी। कुलियों की टोली बस पर चढ़कर माल-सामान उतारने के लिए आपाधापी कर रही थी।

आनंदीलाल ने अपने जीवन की शुरुआत यहीं से की थी। बूढ़ी बेगम को उसकी याद आना बिलकुल सहज था, मगर नहीं आई। यदि आती तो उसके पीछे नवाब सआदत जाँ भी चुपके से आकर मुसकराने लगते। वे दोनों पुरुष उसकी स्मृति में ऐसे घुल-मिल गए थे कि एक को दूसरे से जुदा कर देखना कठिन था।

दूसरा, इस समय उसे जीवन में रस था। वह जीवन जो उसके चारों ओर धड़क रहा था, वह आकाश जो उसके सिर पर फैला था, वह धरती जो हरियाली बिछावन थी, वे पहाड़ जो बर्फ की रजाई ओढ़े थे।

बालक के इंद्रधनुषी नेत्रों से सबकुछ देखती हुई वह नीम के पेड़ तले के खुले मदरसे के सामने से गुजरी। उसे लगा, तेजी से प्रगति कर रहा जमाना यहाँ आकर रुका हुआ है। वह भी रुक गई।

''दो दूनी चार...'

वृद्ध मुल्ला, जिसके मुँह में न दाँत थे, न पेट में आँत, हाथ में बेंत लिये हुए बच्चों के अतराफ घूम रहा था, फटे बाँस सी आवाज में बोल रहा था। बच्चे उससे भी ऊँचे स्वर में चिल्लाते थे—''दो दूनी चार...''

बूढ़ी बेगम को अपने बेटे अकीक का विचार आया। उसे खुद आश्चर्य हुआ। नवाब के देहांत के बाद उसे शायद ही बेटे का खयाल आया था। इसकी कोई खास वजह नहीं थी। यदि हो भी तो वह केवल इतनी कि तब उसका समग्र ध्यान मरहूम खाविंद के आसपास घूमता रहता था।

''चार दूनी आठ...''

अकीक!

वह भी तो इसी मुल्ला से बिस्मिल्ला कर आगे बढ़ा था। बूढ़ी बेगम बच्चों को देखते हुए सोचने लगी, बढ़ते-बढते बरखुरदार इतना आगे बढ़ गया कि दिल्ली जा बैठा।

बूढ़ी बेगम को इसका गम नहीं था। अकीक आज भी उसे उतना चाहता था, जितना कि श्रवण कुमार ने अपने नाबीना माता-पिता को चाहा था। इसकी वजह थी...परिवरिश, प्यार, दुलार। कोई कमी नहीं छोड़ी थी मियाँ-बीवी ने

उसके लालन-पालन में।

छठी की रस्म के समय बेगम शबाना को नहलाने के लिए गरम पानी लाया गया तो उसमें से उठ रही भाप को देख वह ठिठक गई।

यह परंपरा थी। प्रसव के बाद पहले स्नान का पानी गुनगुना नहीं, लगभग खौलता हुआ होना चाहिए। रिश्ते की खालाओं ने बताया कि उसकी सेहत के लिए यह आवश्यक भी है। माँ ही मरियल सी रहेगी, तब बच्चे की देखभाल कौन करेगा? इस अंतिम तर्क ने बेगम को विवश कर दिया।

बच्चे की खातिर नवाब को भी जाने कितनी बार अपने उसूलों से समझौते करने पड़े थे। बेटा एक वर्ष का हुआ, तब खत्ना यानी रस्मे मुसलमानी आन खड़ी हुई। आले-इब्राहीम की यह अनिवार्य रस्म है। इस रस्म यानी कि 'सुन्नत 'के बाद लड़का पूर्ण मुसलमान कहलाता है।

नवाब का विरोध सुन्नत से नहीं, उससे जुड़े हुए जुलूस से था। जख्म भर जाने पर बच्चे को दूल्हा बनाकर उसकी सवारी निकालना किसी शास्त्र में नहीं लिखा था। नौबत-नगाड़ों के साथ सारे गाँव में घुमाना हिमाकत नहीं तो और क्या था? यह दिखावा और फिजूलखर्ची किसलिए?

हुआ वही जो होना था। परंपरा की जीत हुई। प्रगतिवादी होते हुए भी नवाब को इस ढकोसले के आगे झुक जाना पड़ा था।

और...

अकीक जब चार वर्ष चार महीनों और चार दिन का हुआ, 'बिस्मिल्लाह 'का अवसर आया। इस मौके पर मियाँ-बीवी दोनों ही अड़ गए। वे चाहते थे कि अपने लाड़ले की पढ़ाई का शुभ मुहूर्त किसी आलिम द्वारा हो, लेकिन बड़े-बूढ़े नीम तले के इस मदरसे के इसी मुल्ला को पकड़ लाए।

यही नहीं, अकीक को छह महीनों तक उसी के मातहत तालीम लेनी पड़ी, जबकि नवाब और बेगम अपने समय के बड़े-से-बड़े विद्वान् को नियुक्त कर बेटे को श्रेष्ठ शिक्षा देने की क्षमता रखते थे।

अलबत्ता, समय की अवधि पूर्ण होने पर उन्होंने वैसा ही किया। हाई स्कूल में अकीक का दाखिला करवाने के साथ उसे तीन गुणीजनों के हाथों में सौंप देने का निश्चय किया, जिनमें एक आनंदीलाल था।

शिक्षा की तिथि निश्चित करने से पहले नवाब ने तीनों गुरुजनों को दावत दी। आनंदीलाल के यह बेरोजगारी के दिन थे। कुली का उसका बैज छिन चुका था। बाजार में वह साबुन का ठेला लगाकर जैसे-तैसे फाकाकशी के दिन काट रहा था। मगर उसकी खुमारी यथावत् थी।

वह कभी संजीदगी से सोचता, छलिया मेरी राह में काँटे बिछाता है, मुझे भूख और प्यास देता है, दुःख-दर्द देता है। आखिरकार मुझमें ऐसी कौन सी अच्छाई है, जो अपनी कृपा के कुंभ वह मुझ पर छलकाता रहता है?

सोचते-सोचते वह बाँसुरी उठाता। उसके बाँसुरीवादन के सुर संध्या के रंगों में घुलकर गोधूलि को अधिक रोमांचक बनाते थे। कभी रात के सन्नाटे में मधुर सुर उठते, तब कैसी भी भयावह अमावस क्यों न हो, सुहावनी लगती।

समय से पहले ही दोनों विद्वान् मौलाना अली नकी और पंडित योगानंद हवेली में पधार चुके थे। दीवानखाने के लंबे सोफे पर बैठ हुक्का गुड़गुड़ाते हुए नवाब उनसे गपशप लड़ा रहे थे, किंतु विषय मजाक का नहीं था।

क्या आनंदीलाल नन्हे मियाँ का उस्ताद बनने की काबिलियत रखता है या नहीं? जो शख्स नीम-तले के मदरसे में खड़िया-पाटी लेकर बैठा हुआ दिखाई दिया हो, उसके उस्ताद बनने का प्रश्न ही कैसा?

एक रोज वह अचानक ही आकर नन्हे-मुन्नों के बीच खुले मदरसे में बैठ गया। बच्चे उसके हाथ में खड़िया-पाटी

देख खुशी में झूम उठे।

हवा में अपनी छड़ी फटकारकर मुल्ला आनंदीलाल के पास आए और उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा, ''इल्म हासिल करने का तुम्हारा इरादा देख हमें खुशी हुई। कहो, कुरानशरीफ सीखोगे?''

''उस्तादजी!'' उसने खड़े होते हुए अदब से बताया, ''यह मैं जानता हूँ कि अलिफ के बाद बे होता है, मगर यह नहीं जानता कि अलिफ से पहले क्या होता है?''

ऐसे बावले पर हवेली में धुआँधार बहस हो रही थी।

योगानंदजी ने नवाब को संबोधित कर विवाद आगे बढ़ाया, ''मौलाना की बात गलत नहीं। कहाँ हम दोनों और कहाँ वह अज्ञानी! कोई तुलना ही नहीं।''

अली नकी साहब ने अपने शब्दों को तोल-मोलकर कहा, ''वैसे हुजूर, जो खुद इसलाम को बेहतर समझते हैं, उन्होंने मियाँ मौजूद को हमारी बराबरी का समझा है, तब उसमें कोई बात तो होगी ही।''

''यह सच है कि हम इसलाम को बेहतर समझते हैं, मगर वह खुदा को हमसे बेहतर जानता है।'' नवाब ने हुक्के का दम भरकर बताया, ''उसके देहाती सच का सिर्फ एक जुमला कभी शास्त्रों के मोटे-मोटे पोथों पर भारी पड़ता है।''

''गुस्ताखी माफ, मगर यह आपने कैसे मान लिया?'' अली नकी साहब बोले, ''सच न तो देहाती होता है न कस्बाई। वह तो सिर्फ सच ही होता है।''

''मियाँ मौजूद वैसा नहीं मानते।''

योगानंदजी ने व्यंग्य कसा, ''क्या उनका सत्य कई खंडों में बँटा हुआ है?''

''सिर्फ खंडों में नहीं, रंगों में भी।'' कहते हुए नवाब ने एक किस्सा सुनाया, जो वह आनंदीलाल की जबानी सुन चुके थे।

एक रोज मुल्ला नसीरुद्दीन और बादशाह सलामत के बीच खटक गई। बादशाह का मानना था कि सच, सच होता है, वैसे ही जैसे काला रंग काला और सफेद, सफेद होता है।

मुल्ला का कहना था कि एक ही रंग के कई उतार-चढ़ाव होते हैं, वैसे सच के भी कई रूप हो सकते हैं।

बादशाह सलामत ने उन्हें चुनौती देते हुए, तुरंत घोषणा की—कल से जो भी मुलाकाती महल में आए, उससे आने का कारण पूछा जाए। अगर वह झूठा साबित हो तो उसे वहीं सूली पर लटका दिया जाए।

दूसरे दिन तड़के ही मुल्ला ने महल के फाटक पर दर्शन दिए। सिपाही ने उनके आगमन का कारण पूछा। वह सहज ही बोले, ''सूली पर चढ़ने के लिए आया हूँ।''

सिपाही झेंप गया। उसने कहा, ''आप सरासर झूठ बोलते हैं, मुल्लाजी!''

''तब तुम्हें किसने रोका है? लटका दो हमें फाँसी के तख्ते पर।''

वह दुविधा में पड़ गया। यदि वह मुल्ला को लटका दे, तब उनका झूठ सच में बदल जाए, क्योंकि वह पहले ही बता चुके हैं, वह यहाँ सूली पर चढ़ने के लिए पधारे हैं।

अंत में नवाब ने बताया, ''मियाँ मौजूद मुल्ला नसीरुद्दीन की मानिंद देहाती हैं, उनके सच को भी साफ देख पाना उतना आसान नहीं।''

खाने की मेज सज चुकी थी। आनंदीलाल का इंतजार करना मेजबान को उचित न लगा। वे उसके स्वभाव से भलीभाँति परिचित थे। ''पट्ठे का क्या भरोसा, शायद नहीं भी आए!''

हुक्के की नली को एक तरफ रख वे अपने दोनों विद्वान् मेहमानों के साथ उठे। अब तक बेगम शबाना भी

बावरचीखाने से फारिग होकर आ पहुँची थी।

डिनर लेते हुए चर्चा फिर आगे बड़ी, ''मियाँ मौजूद के सच कई हैं, तब उनका खुदा भी एक नहीं हो सकता।'' कहते हुए अली नकी साहब ने योगानंदजी की ओर देखा, ''क्यों पंडितजी, आपके पवित्र वेद इसके बारे में क्या बताते हैं?''

योगानंदजी ने नौरतन बिरयानी पर हाथ आजमाते हुए उनसे सहमति दरशाई, ''आपने एकदम सही फरमाया। परमात्मा का दूसरा नाम ही सत्य है। यदि सत्य खंडित हो, तब ईश्वर अद्‌वैत कैसे हो सकता है?''

तभी हड़बड़ाया सा आनंदीलाल दिखाई दिया। कोई कुछ कहे, उसका स्वागत-सत्कार करे, इससे पहले वह एक कुरसी खींचकर शाही मेज पर पिल पड़ा। मिनटभर के लिए बाकी लोग सकते में आ गए।

अली नकी साहब और योगानंदजी ने उसकी अशिष्टता को गंभीरता से नोट करते हुए आँखें चार कीं। बेगम शबाना उसे दोनों हाथों से खाता देख मुँह फेरकर हँस दी। नवाब अपनी पतली मूँछों में मुसकरा रहे थे।

कोई कुछ नहीं बोला। सबके चेहरे पोस्टर बने हुए थे। किसी को कुछ कहने की आवश्यकता भी नहीं थी।

थोड़ी देर के लिए रुके हुए हाथ फिर कार्यान्वित हुए। आनंदीलाल सपाटे से खा रहा था। जाने कितने दिनों का वह भूखा था।

आधा पेट भर जाने पर उसे अचानक अपनी गलती का एहसास हुआ।

''लो...'' उसने बेगम शबाना की ओर मुड़ते हुए निर्दोषता से कहा, ''आज तो हम देवी माँ के चरण छूना ही भूल गए।''

नवाब ठहाके के साथ क्या हँसे, उन्हें ठसका पड़ गया।

भोजनपान के बाद शीत-कॉफी के दौर के साथ बारहदरी में फिर बैठक जमी। दिन गरमियों के थे, रातें भी शीतल नहीं थीं। अत: दिन का एक पहर रहे खिदमतगारों ने यहाँ पानी का छिड़काव किया था। खस की सूखी टट्टियों को भी भिगोया गया था।

इस बैठक का शुभारंभ दोनों विद्‌वानों को संबोधित करते हुए आनंदीलाल ने स्वयं किया, ''आप दोनों नामी-गिरामी विद्‌वान् हैं।'' उसके स्वर में दीनभाव था, ''मेरे गुरु समान हैं। यदि आज्ञा दें तो मैं कुछ अर्ज करूँ।''

शीत-कॉफी पीते हुए योगानंदजी ने उदारता से मौन संकेत दिया। आनंदीलाल ने उन्हीं से मुखातिब होकर पहला प्रश्न उछाला, ''पंडितजी, क्या आप पूर्ण विश्वास के साथ मानते हैं कि ईश्वर एक है?''

योगानंदजी के साथ अली नकी साहब भी चौंके। वे दोनों नहीं जानते थे कि उनकी दीवानखानेवाली बहस का आखिरी जुमला आनंदीलाल ने आते समय गाँठ बाँध लिया होगा।

''ईश्वर तो सबका एक होता है, बेटा।'' योगानंदजी ने कहते हुए नजरें घुमाईं, ''क्यों मौलाना, आपका कुरान शरीफ भी यही फरमाता है न?''

''बेशक-बेशक!'' अपनी शीत-कॉफी पूरी करते हुए वह बोले, ''हर तरफ एक ही खालिक का जलवा और नूर है।''

''तब आप काबा को बुतखाने से बेहतर कहेंगे या कमतर?''

अली नकी साहब को साँप सूँघ गया देख वह योगानंदजी की तरफ मुड़ा, ''आपका क्या विचार है पंडितजी? परमात्मा कण-कण में विराजमान है, तब आर्य जाति म्लेच्छों से श्रेष्ठ कैसे? सभी मनुष्य उन्हीं पाँच तत्त्वों से बने हैं, तब ब्राह्मण और अछूत का भेदभाव कैसा?''

काटो तो लहू न निकले, ऐसी हालत उनकी भी हो गई। बेगम और नवाब आँखें मिलाकर मुसकरा रहे थे, मानो

अपने आदरणीय मेहमानों का मखौल उड़ा रहे हों—जान ली हमारे मियाँ मौजूद की काबिलियत?

''गूँज सदाओं में वो नहीं तो क्या
फिर भी तिनका गगन थर्राता तो है''

अंततः आनंदीलाल ने ही मौन तोड़ा, ''दो पत्थरों का रंग जुदा हो सकता है, उनमें से निकलनेवाली आग का रंग कभी अलग नहीं होता। जिसकी पकड़ में यह सच आ गया, वह धर्मों, देशों और जातियों की कैद से मुक्त हो गया।''

नवाब के मन में महीनों से कुंडली मारे पड़ा एक प्रश्न उमड़-घुमड़कर फिर सामने आया—जो शख्स वास्तव में अशिक्षित हो, उसके विचारों में यह बुलंदी कैसे?

पिछले वर्ष काइरो में आयोजित 'विश्व इसलामिक सम्मेलन' में अपना सिक्का जमाकर लौटे अली नकी साहब अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के लेक्चरर रह चुके थे। इसलाम को समझने में उन्होंने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया था, फिर भी अनपढ़ आनंदीलाल न सिर्फ इसलाम धर्म, बल्कि कुरानशरीफ जैसे दिव्य ग्रंथ के रहस्यमय संकेत मौलाना से बेहतर कैसे समझ सका था?

अमरीका और इंग्लैंड में हिंदुत्व के झंडे गाड़कर इसी महीने लौटे योगानंदजी भी कोई उन्नीस नहीं थे। वे काशी विद्यापीठ के स्नातक थे। वेद और योगशास्त्र उनके अध्ययन के विषय थे। उनके बारे में यह कहा जाता था कि वह 'धर्म को पीते हैं, खाते हैं और ओढ़ते भी हैं', फिर भी अबोध आनंदीलाल उनसे वेद का श्रेष्ठ ज्ञाता कैसे बन पाया था? यह कैसे मुमकिन था?

क्या आंतरिक प्रकाश के उजियारे में अंधकार के साथ अज्ञान भी मिट जाता होगा? भीतर अपने आप ज्ञान के ज्योतिस्तंभ फूट निकलते होंगे? इसके अतिरिक्त उत्तर दूसरा क्या हो सकता है?

लंबी खामोशी के बाद नवाब मूल विषय पर आए, ''मौजूद मियाँ'' आनंदीलाल पर आँखें टिकाते हुए उन्होंने कहा, ''मौलाना हमारे दुलारे को दीन की तालीम देंगे, पंडितजी ने पतंजलि का योगशास्त्र सिखाने का जिम्मा लिया है, मगर अब तक यह साफ नहीं हुआ है कि तुम क्या सिखाओगे?''

''हुजूरेवाला,'' उसने बताया, ''नन्हे मियाँ को मैं सिर्फ फूलों की जबान सिखाऊँगा।''

दोनों विद्वानों के साथ नवाब और बेगम को भी चक्कर में डाल आनंदीलाल वापसी के लिए चला, तब रात के ग्यारह बजे थे। शांतिवन से उठती गीदड़ों और कुत्तों के रोने की आवाजें यहाँ तक सुनाई दे रही थीं। चौराहे की दिशा में जाती सड़क सूनी थी। रात भी कोई चाँदनी नहीं थी। अँधेरे मार्ग पर से कोई स्कूटर घरघराता हुआ गुजरता तो उसके प्रकाश में रास्ता थोड़ी देर के लिए जगकर फिर लेट जाता।

दस मिनटों बाद वह चौक पहुँचा। यहाँ भी सन्नाटा छाया था। सारी दुकानें बंद थीं, सिवाय एक के। वह था शराब का अड्डा। स्वतंत्रता के बाद गाँव गलानियाँ को एक हाई स्कूल और परिवार नियोजन केंद्र के साथ वह भी कांग्रेस सरकार की कृपा से भेंट मिला था।

जैसे ही आनंदीलाल की नजर टाट के परदेवाले कलाल के किवाड़ पर लटकते फानूस पर ठहरी, उसने सड़क के किनारे पड़ा हुआ बाँस का टुकड़ा उठा लिया। टाट के भीतर इक्का-दुक्का ग्राहक, जिनमें एक शिवा माली भी था, सड़ी-गली मेज-कुरसी पर नशे में धुत्त बैठे थे। एक पियक्कड़ कोने में लुढ़का पड़ा था।

शराब के अड्डे का मालिक निहालसिंह अपने दो मुस्टंडों के साथ उसे उठाकर बाहर फेंक आने की पशोपेश में था कि अचानक बोतलें टूटने की आवाजें उठीं। वह चौंककर पलटा तो पलभर के लिए हक्का-बक्का रह गया।

बाईं दीवार के पासवाली एक लंबी मेज पर सजाई हुई शराब की बोतलों पर आनंदीलाल बाँस के साथ टूट पड़ा

था। हैरत की बात यह थी कि इस वक्त वह पिए हुए भी नहीं था।

दूसरे पल होश सँभालते हुए निहालसिंह ने अपने मुस्टंडों को पुलिस के कुत्तों की तरह उस पर छोड़ दिया। उन दोनों ने मिलकर आनंदीलाल की धुनाई उसी के बाँस से कर डाली।

दूसरे दिन सवेरे सफेद कबूतरों को दाना डालते हुए बेगम शबाना सहन में चहलकदमी कर रही थी और शिवा माली द्वारा उसे आनंदीलाल के इस नए कारनामे का आँखों-देखा हाल जानने को मिला। करुणा से उसकी आँखें डबडबा आईं। 'हाय...उस बावले का क्या हश्र हुआ होगा? उसने रात कैसे काटी होगी?'

अपनी भावनाओं को रौंदकर बेगम ने तुरंत कहारों को बुलवाया और थोड़ी देर में सुखपाल पर सवार हो, आनंदीलाल की तलाश में वह अकेली निकल पड़ी।

उसका कोई ठौर-ठिकाना था नहीं कि कोई अजनबी पता पूछते हुए उसकी मिजाजपुरसी को जा सके; फिर भी बस्ती से दूर दो-चार स्थान ऐसे थे, जहाँ वह अकसर पाया जाता था।

सुखपाल उठाए कहार पहले झील पर आए तो खुशकिस्मती से उन्हें आनंदीलाल वहीं दिखाई पड़ा। वह एक पेड़ तले लेटा था।

सूर्योदय अभी घंटे भर पहले हुआ था। झील में तैरती चमकीले हरे सिरवाली बतखें सूर्य की कोमल किरणों में अधिक आकर्षक लग रही थीं। पुरवाई के गीत गुनगुनाते भौंरे कमल के फूलों पर मँडरा रहे थे।

ऐसे नैसर्गिक वातावरण में बेगम को सुखपाल का परदा हटाकर बाहर आते हुए देख आनंदीलाल एकबारगी उठने लगा और उसके मुँह से एक आह निकल गई। बेगम ने वह सुनी और झट से उसके पास चली आई। आनंदीलाल जैसे-तैसे उसके पाँव छूकर वापस लेट गया।

अब बेगम ने दो-जानू होकर उसे गौर से देखा। देख न सकी। आनंदीलाल के चेहरे पर भूरे चकत्ते उभर आए थे। उसकी एक आँख खुली थी, दूसरी मुँदी हुई। उसके खुले कुरते से कंधों पर के जख्मों के निशान स्पष्ट दिखाई देते थे। ''जाने कितने और वार उसने पीठ पर झेले होंगे?''

मन-ही-मन हाहाकार करते हुए उसने कहारों को हकीम को लिवाने के लिए भेजना चाहा। आनंदीलाल ने उन्हें रोकते हुए बेगम से टूटे शब्दों में कहा, ''अ...अपने कर्मों की सजा मैं यहीं भुगत लूँ, इसमें बुरा क्या है?''

बेगम तड़प उठी, ''कैसे कर्म जी? कौन से गुनाह?''

''क्यों...रात में आपके पाय लगना चूक गया, वह मेरा प...पहला गुनाह नहीं था?'' कराहते-कराहते मुसकराने का प्रयास करते हुए वह कह रहा था, ''दूसरा यह कि शाही मेज की तरफ लज्जतों को देख मैं अपनी इंद्रियों पर से अंकुश खो बैठा। अब इन दो महापराधों की सजा बाँस के केवल सैंतालीस फटके अधिक तो नहीं है।''

वह हतप्रभ देखती रह गई।

आनंदीलाल की नियुक्ति नन्हे मियाँ के गुरुपद पर नहीं हो सकी, मगर इसकी वजह रातवाली घटना नहीं थी। उस बारे में जब नवाब को मालूम हुआ तो वह मुसकराकर बेगम शबाना से बोले थे, ''पट्ठे ने जो भी हिमाकत की, ठीक ही किया। अपने हाथों उसने अपने लिये शराबखाने के किवाड़ बंद कर लिये।''

उसी हफ्ते आनंदीलाल की नई नौकरी पक्की हुई। वह डाकघर का कर्मचारी बना, फिर भी छुट्टियों में वह कभी हवेली पर आता और चंद घंटे बाल अकीक के साथ गुजारकर लौट जाता था।

बूढ़ी बेगम का मानना था कि उसका बेटा आज जो कुछ भी है, वह विद्वानों की तालीम और हाई स्कूल की पढ़ाई की वजह से नहीं, आनंदीलाल के उन्हीं चंद घंटों के सत्संग के कारण है।

तब बाल अकीक और आनंदीलाल का रिश्ता फूल और माली का था। फूलों की तरह खिलना, फूलों की तरह

मुसकराते हुए जीवन भर महकना और फूलों ही की तरह अन्य कलियों को स्थान देने के लिए शाख से झरकर मिट्टी में मिल जाना।

यही तो जीवन का अमोल रहस्य है! फूल कभी यह नहीं सोचते कि उनकी महक कोई हिंदू लेता है या मुसलमान, कोई गोरा लेता है या काला।

बेगम शबाना ने क्या कुछ नहीं किया था अपने लाड़ले को आदमी से इनसान बनाने के लिए! आज वह अपनी माँ के पाँव धोकर पिए तो वह भी कोई नई बात नहीं होगी।

''आठ दूनी सोलह...'' चिल्लाता हुआ मुल्ला उसके सामने आया। बूढ़ी बेगम ने थोड़ा हँसकर आदाब अर्ज किया और डोलती हुई आगे बढ़ी। फूलवाले की दुकान करीब में थी।

वह सजग हो गई।

उसे याद हो आया था। पिछली जुमेरात को आनंदीलाल उसे फूल देना चूक गया था।

2

कदम-कदम पर चाँदी की कमानीवाली ऐनक के पीछे से अपनी आँखें बिछाती हुई बूढ़ी बेगम हरिहरन फूलवाले की दुकान के थले के सामने आई, तब तक उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव कई रंग बदल चुके थे।

जाने क्यों, आज उसे पूरा भरोसा था कि आनंदीलाल हाथ में फूलों का गुलदस्ता लिये उसका मार्ग रोकेगा। ''पाय लागूँ देवी माँ...'' फिर उसके चरण छूकर गुलदस्ता देते हुए चुटकी लेगा, ''आज आपकी आँखों में यह मुसकान कैसी?''

वह क्या जवाब देगी?

यही कि—अरे बावले, जमाने बदल गए, अखंड भारत का बँटवारा हो गया, पाकिस्तान भी टूटकर दो हिस्सों में बँट गया, मगर तू नहीं बदला।

नहीं, नहीं, उस माटी-मिले को तो तड़क-भड़ककर डाँट पिलानी होगी, ''खबरदार जो फिर कभी माँ की खिंचाई की तो!''

''मगर देवी माँ,'' वह भोलेपन से बोलेगा, ''आपकी तो उँगलियाँ भी मुसकरा रही हैं।''

हाँ...यह गलत नहीं है। सिलाई का काम करते समय उसे खुद कई बार यह धोखा होता था कि उसकी उँगलियाँ संचे पर केवल थिरक नहीं रहीं, गुनगुना भी रही हैं।

''अब मुँह से एक लफ्ज भी निकाला तो हम तुझे मार-मारकर दुंबा बना देंगे।''

वह नटखट कब मानेगा? वह बेलौस जवाब देगा, ''देवी माँ का तो अंग-अंग हँस रहा है।''

अपने आप से संवाद की शतरंज खेलते हुए अनायास ही उसने छड़ी चला दी। सहसा वह सिमट गई—ना...आनंदीलाल बावला नहीं, पगली वह खुद है, वरना यों कोई हवा में वार थोड़े ही करता है?

फूलवाले की दुकान पर आनंदीलाल को न पाकर वह लजा गई। मानो उससे कोई हसीन भूल हुई हो, उसको करते हुए किसी ने उसे देख लिया हो। 'सुबू बेगम, आज आपको हो क्या गया है? जरा इतना तो खयाल करो कि हरिहरन क्या सोचेगा?' वह तुरंत सँभल गई।

''सुना है...' फूलवाले ने उसके हाथ में फातिहा का सामान थमाते हुए हौले से पूछा, ''आप जुम्मन मियाँ से थैलियाँ सिलने का काम लेती हैं।''

''बिलकुल सही सुना है जी, तुमने।'' बूढ़ी बेगम ने बेहिचक बताया, ''कहीं शादी- ब्याह का मौका हो और ढेर सारे गजरे बनाने का काम आए, तब तुम हमें याद कर सकते हो। हम तुम्हारा भी हाथ बटाएँगे।''

इस विषय पर हरिहरन विस्तार से चर्चा करना चाहता था, किंतु वह दूसरा प्रश्न करे, इससे पहले बूढ़ी बेगम ने नया विषय छेड़ दिया, ''यह तो बताओ बेटा, आजकल मियाँ मौजूद कहाँ गायब रहते हैं?''

''वह कभी टिककर कहीं बैठे भी हैं?'' प्रतिप्रश्न करते हुए उसने बताया, ''रमता जोगी है। आज यहाँ कल राम जाने कहाँ?''

''फिर भी वह किसी जगह टिके हैं तो वह यही थला है।'' बूढ़ी बेगम ने कहा, ''आखिरी दस साल से हम जुमेरात-जुमेरात फातिहा पढ़ने के लिए कब्रिस्तान जाते रहे हैं और वह भी हमें फूल देने के लिए बिलानागा आते रहे। कभी वह चूके हों, ऐसा हमें याद नहीं।''

''मगर तब आपने उनकी परवाह कब की?''

हरिहरन का यह जुम्ला उसे अखर गया, क्योंकि वह सच था। नवाब के स्वर्गवास के बाद बूढ़ी बेगम का समग्र जीवन मरहूम की यादों के इर्द-गिर्द घूमता रहा था, उनकी स्मृतियों के ताने-बाने वह बुनती रही थी। इसके अतिरिक्त उदासी भरे उन सूने-सपाट दिनों में काम्य था ही क्या? अपने बेटे-बहू को उसने अहमियत नहीं दी थी, आनंदीलाल पर उसका ध्यान कैसे केंद्रित होता?

आज उसे पहली बार एहसास हुआ, अपनी यादों का पहिया कब का धुरी पर से फिसल गया है। ठहराव के केंद्र में से छिटककर वह जीवन की परिधि पर आ पहुँची है। अपने अतीत से कटकर अब वह भविष्य में भी झाँकने लगी है। इन सब हरकतों में नवाब का स्थान कहाँ था? क्या वह उनको भूल चुकी थी?

''यह सही नहीं हो सकता।'' उसने अपने मन को थपथपाते हुए आगे सोचा, ''सचमुच वैसा होता तो हम आज किसलिए कब्रिस्तान जा रहे हैं?''

फूलवाले की निश्छल टिप्पणी का बुरा न मान उसने फिर पूछा, ''गायब होने से पहले उन्होंने कुछ तो कहा होगा जी?''

''सच तो यह है कि किसी को भनक तक नहीं आने दी।'' हरिहरन बोला, ''मगर छम्मीजान से मालूम हुआ है कि इन दिनों महात्मा आनंदीलाल को ईश्वर की तसवीर खींचने का शौक चर्राया है।''

''तभी...'' वह स्वतः फुसफुसाई।

''पहाड़ियों में वह कहीं ऊपरवाले को खोजते हुए भटक रहे होंगे।'' हरिहरन के शब्दों में व्यंग्य घुलता जा रहा था, ''परमात्मा से जब उनकी भेंट होगी, तभी वह उनकी शबीह उतार सकेंगे और उसके बाद ही उन्हें संसार की याद आएगी।''

बूढ़ी बेगम को तसल्ली हो गई। अब यहाँ रुके रहना उसके लिए बेमानी था। मुसकराती हुई वह आगे बढ़ी। जीवन की अँगनाई में चाँदनी बिखरी हो, तब चलने में भी लुत्फ आता है।

हरिहरन उसे जाते हुए एकटक देख रहा था। चलते-चलते वह डोलने लगी। जैसे वह अधखिली कली थी और हवा के हर झकोरे में लहराना जानती थी; जलप्रपात की एक धारा थी, जो सितार के तारों की भाँति झनझनाती थी।

हरिहरन को लगा, यदि आनंदीलाल यहाँ उपस्थित होता तो उसकी चाल देखकर अवश्य कहता, ''देवी माँ ने छलिया को पहचान लिया है!''

हरिहरन की आँखों के आगे से सरसराते हुए वे वर्ष गुजर गए, जिनमें झिलमिलाती एक छाया बेगम शबाना की भी थी। वह उसकी इज्जत करता था। इसलिए नहीं कि असद महल की मालकिन बनकर वह गाँव गलानियाँ में आई

थी, इसलिए नहीं कि वह उसके बचपन के दोस्त अकीक की माँ थी, इसलिए भी नहीं कि उसके पिता शिवा माली ने हवेली का नमक खाया था, बल्कि इस कारण कि आनंदीलाल उसे पूजनीय मानता था।

हरिहरन की आयु कोई ज्यादा नहीं थी, स्वतंत्रता के बाद की पहली पीढ़ी की वह संतान था। उसने दसवीं जमात तक पढ़ाई की थी। देश की प्रगति के साथ आए हुए शराब के व्यसन ने यदि उसके पिता का भोग नहीं लिया होता तो शायद वह एस.एस.सी. से दो वर्ष आगे पढ़ दिल्ली के किसी दफ्तर में बाबू बना होता; मगर वहाँ उसे आनंदीलाल की सोहबत का लाभ कहाँ मिलता?

बचपन से लेकर अब तक उसने आनंदीलाल के तीन स्पष्ट रूप देखे थे, जिनमें से मुख्य था—रिक्शा चालक।

डाकिए की नौकरी छूट जाने के बाद वह आवारा कुत्ते की तरह मारा-मारा गाँव में भटकता रहा था। कभी मतलब से, कभी बेमतलब। इन्हीं फाकाकशी के दिनों में ढाबे के मालिक गुरदास ने दो साइकिल-रिक्शे डाले। उनमें से एक आनंदीलाल को मिल गया। वह रिक्शा चालक बन गया। उसका अटल सिद्धांत था—गाँववालों से कभी पैसे न लेना।

उस दौर में भी, जब वह कुली था, गाँववालों का बोझा ढोने की उसने मजदूरी कभी नहीं ली थी। कोई सज्जन हुज्जत करता तो वह सिर्फ इतना कहता, ''यह तो देवी माँ का गाँव है। भला अपने ही घर का काम कर कोई बेटा थोड़े ही उजरत लेता है?''

वैसे तो वह बाहर से आनेवाले यात्रियों से भी कभी पारिश्रमिक नहीं माँगता था। अलबत्ता सवारी उसे जो कुछ अपनी खुशी से देती, वह स्वीकार कर लेता। उसकी जरूरत केवल दो जून रोटी थी।

चाहे घंटे भर में हो या दिन भर पसीना बहाने के बाद, वह अपने राशन का इंतजाम कर चलता बनता। फिर झील के किनारे बैठ बाँसुरी बजाता या चिनारबाग में लेट, परिंदों को आवाज देकर अपने पास बुला लेता। छोटी-बड़ी चिड़ियों को अपने जिस्म पर बैठ मधुर राग अलापती सुनते हुए वह समाधि में लीन हो जाता।

रिक्शा चालक बनने के बाद विवश होकर उसे अपने उसूलों में थोड़ी तब्दीली करनी पड़ी। बाहर की सवारियों से अब वह हिसाब से उजरत माँगने लगा था। रिक्शा का मालिक गैर न होता तो यह नौबत भी नहीं आती; मगर आज भी वह अपने मूल सिद्धांत से जोंक की तरह चिपका हुआ था, यानी कि मालिक के लिए साठ रुपए और अपने लिए एक दिन की रोटी का जुगाड़ कर रिक्शा को अलविदा कहना।

छात्रकाल में हरिहरन जरूरत पड़ने पर उसी के रिक्शा में बैठना पसंद करता था, क्योंकि उसकी बातें जग से निराली होती थीं। एक रोज रिक्शा में बैठ वह तालकटोरा के गंगा-गोपालजी के मंदिर जा रहा था, तब आनंदीलाल ने उससे कहा, ''बेटा, मंदिर में माथा रगड़ने से क्या लाभ? पत्थर की मूर्तियाँ भी कभी किसी की सुनती हैं?''

उसने रटा-रटाया उत्तर दिया, ''माँ कहती है कि सच्चे दिल से प्रार्थना करने पर भगवान् हमारी सुनते हैं।''

''वह नादान क्या जाने कि सदियों से इस देश में मंदिर ध्वस्त हुए हैं, उनमें से कई अज्ञानियों ने तोड़े तो बाकी अनगिनत शिवाले समय की मार से टूटे। तब कहाँ थे उसके भगवान्?''

आनंदीलाल रिक्शा भी चला रहा था और बातें भी कर रहा था, ''और जब भारत माता के दो टुकड़े हुए तब सारे देवी-देवता कहाँ खो गए थे? बेटा, जो अवतार अपनी पावन भूमि की ही रक्षा नहीं कर सके, वे हमारा क्या भला करेंगे?''

रिक्शा असद महल के सामने से गुजरा तो आनंदीलाल को सहज स्मरण हो आया, नवाब और बेगम हज और जियारत के लिए मक्का-मदीना गए हुए थे। दम भर रुकते हुए उसने दोनों हाथ जोड़कर श्रद्धा से सिर नवाया और फिर आगे बढ़ा। छात्र हरिहरन को सचमुच ताज्जुब हुआ। महल के आगे भी कोई सिर झुकाता है?

आनंदीलाल ने उसकी कुलबुलाहट ताड़कर संक्षेप में बताया, ''उस मंदिर में एक जीती-जागती देवी रहती है।''

''मंदिर! देवी!'' हरिहरन बोला, ''वहाँ देवी-देवता कैसे? वह तो मुसलमानों की हवेली है।''

''तुमने कभी बेगम साहिबा को देखा है?''

उसने 'हाँ' में सिर हिला दिया।

''जब मैं इस गाँव में नया-नया आया था, कच्चा घड़ा था। उसी देवी ने स्वयं दर्शन देकर मुझे पार उतरने का रहस्य बताया। मैं धन्य हो गया। मेरा जीवन सार्थक हो गया।'' छात्र हरिहरन कई और प्रश्न उछालना चाहता था। मसलन —हिंदुओं के देवी-देवता मुसलमान कैसे हो सकते हैं? मंदिर में दर्शन को जाने की हमारी परंपरा क्या खोटी है? वेदकाल से ऋषि-मुनि भगवानों की स्तुति करते आए हैं, क्या वे सारे झूठे हैं?

मगर तब तक उसे मंदिर के प्रांगण में असमंजस की दशा में छोड़ आनंदीलाल दूसरी सवारी उठाकर रिक्शा दौड़ा गया था।

इस घटना के बाद छात्र हरिहरन चैन से सो नहीं सका। उन अनुत्तरिय प्रश्नों से लैस होकर उसने कई बार आनंदीलाल को ललकारा। वह मुसकराकर बात टाल गया, या 'हाँ...सो तो है' कहकर उसने विषय को ही गोल कर दिया।

आज उसे जवाब की एक झलकी बूढ़ी बेगम की आँखों में दिखाई दी थी...जहाँ प्रेम होता है, वहाँ परमात्मा होता है। बूढ़ी बेगम के रोम-रोम में परमात्मा बसा था। अब उसे सीता कहो या मरियम, क्या फर्क पड़ता है?

3

बूढ़ी बेगम कब्रिस्तान में दाखिल हुई, तब अपने में खोया हुआ जईफ शराफत अली एक बैंच पर बैठा, अकेले-अकेले प्रलाप रहा था। मानो उसकी जन्नतनशीन बीवी हयात हो और उसके आगे सिर झुकाकर खड़ी हो।

''बार-बार तुमसे कहा, हजार बार कहा, कहा था या नहीं? तुम्हारे कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। आखिर मैं क्या करूँ? कहाँ-कहाँ ढूँढूँ? अब तो बीनाई भी मेरा साथ छोड़ रही है।'' अपनी बीन बजाते हुए उसका स्वर थोड़ा ऊँचा हुआ, ''कुछ सुनाई दिया भी?''

बूढ़ी बेगम ने केवल आखिरी जुमला स्पष्ट सुना था, ''आपने हमसे कुछ कहा?'' कहते हुए वह दो कदम बढ़ाकर उसके पास आ गई।

वृद्ध अपनी सनक में उसी पर बरस पड़ा, ''क्या तुम इतना भी नहीं जानतीं कि सोते वक्त अपनी ऐनक ठीक जगह पर रखनी चाहिए?''

''हम बराबर जानते हैं जी।'' नाक पर उतर आई चाँदी की कमानी को ऊपर खिसकाते हुए वह तपाक से बोली।

''तब दालान में क्यों छोड़ आई थीं! अब यह मत कहना कि अपने बड़े मियाँ को सताने में तुम्हें लुत्फ आता है।'' कटुता से किनारा कर वह थोड़ा हँसा, फिर आगे कहा, ''बेगम, वैसे तुम सताती हो, तब अच्छा भी लगता है। कसम परवरदिगार की, तुम हो तो यह जहान है। जब तुम नहीं होगी, खुदा जाने हमारा क्या होगा? अब मुसकरा भी दो।''

बूढ़ी बेगम जाने-अनजाने मुसकरा दी, मगर यह हँसी वह नहीं थी, जिसकी खनक से वृद्ध परिचित था। आँखों की धुंध छँटने पर वह धीरे-धीरे खड़ा हुआ। उसने देखा, सामने का चेहरा भी वह नहीं था।

वृद्ध समझ गया, अपनी भावनाओं के साथ वह स्वयं बह गया था।

''आज जुमेरात है न?'' बूढ़ी बेगम के हाथ से दोने की पुड़िया लेते हुए उसने यों ही पूछा।
''हम इसी रोज अपना वादा निभाने आते हैं।''
''मुझे आप पर नाज है।''
''वो कैसे जी?''
अपनी-अपनी छड़ी के सहारे दोनों साथ-साथ पलाश के पेड़ की दिशा में बढ़ रहे थे।
''लोगबाग तो जिंदगी में भी जबान देकर मुकर जाते हैं,' वृद्ध ने बताया, ''और एक आप हैं कि...'
''वो देखिए!'' अपनी छड़ी से संकेत देते हुए यकायक बूढ़ी बेगम बज उठी।
''क्या है?''
''हमारे मरहूम की कब्र पर खिले दो फूल!''
नवाब सआदत जाँ की कब्र के पास पलाश तले दोनों खड़े थे। वृद्ध अपने ललाट पर एक हाथ धरे अभी भी फूलों को ढूँढ़ रहा था। बूढ़ी बेगम ने अपनी ऐनक उतारकर उसकी नाक पर चढ़ा दी।
''रंग गुलाबी है।'' गौर से देखते हुए वह बोला, ''शायद बारहमासा है। हर मौसम में ये फूल खिलते हैं। किसी की कब्र पर तब लहराते हैं, जब अपनी जिंदगी में मरहूम ने किसी का दिल नहीं दु:खाया हो।''
''किसी और का न सही,'' बूढ़ी बेगम ने उसके हाथ से पुड़िया वापस लेते हुए कहा, ''कम-से-कम हमारे दिल को गहरी चोट जरूर पहुँचाई है।''
उसने ऐनक के पीछे से बूढ़ी बेगम का चेहरा देखा। फूलों की तरह वह भी साफ नजर आया।
धूपबत्तियाँ जला, फूलों की चादर बिछाते हुए वह कह रही थी, ''जिंदगी- भर साथ निभाने की कसम खाई थी उन्होंने और हमें छोड़कर अकेले चले गए।''
''क्या आप सचमुच अकेली हैं?''
उसने धीरे-धीरे चेहरा घुमाकर वृद्ध को देखा। अपनी ऐनक में झुर्रियों के जाल सा उसका चेहरा कुछ अलहदा लग रहा था। तभी हवा के एक झोंके ने पेड़ पर से पलाश के फूल दोनों पर बरसाए।
कुछ देर बाद वे बेंच पर बैठे थे। फाटक के पास आमने-सामने रखी दो बेंचों के आसपास फुलवारी थी। रंग-बिरंगे फूल उसमें डोल रहे थे। सुबह की कोमल धूप में तितलियाँ तैर रही थीं। वे कभी पीले गेंदे पर बैठती थीं तो कभी सफेद गुलाब पर।
यह कब्रिस्तान पहले कभी इतना मनमोहक नहीं लगा था, जईफ शराफत अली सोच रहा था। तभी उसे खयाल आया, अभी उसने ऐनक नहीं लौटाई थी। अपने हाथों से बूढ़ी बेगम को कमानी पहनाते हुए उसने कहा, ''आज आप रोई नहीं।''
''आपने जो टोका था।''
''बेगम साहिबा को टोकने की जुर्रत भला इस नाचीज में कहाँ?'' फीकी हँसी हँसते हुए वृद्ध ने कहा, ''अलबत्ता गुजारिश जरूर की होगी।''
''और हमने मान भी ली।''
''अगर मैं एक बार और करूँ, तब?''
''फरमाइए।''
उसने अपने लंबे कोट की जेब में से एक चुरमुरा कागज निकालकर कहा, ''इसमें गुड़धानी है। खाने में जरा भी तकलीफ नहीं होगी। चखकर देखिए।''

बूढ़ी बेगम ने एक दाना उठाया।

''मुँह में रखते ही दाना पिघल जाता है, है न?''

''हाँ' में सिर हिलाते हुए वह बोली, ''आप भी तो खाइए।''

''हलवाई की दुकान से दो पुड़िया बँधवा ली। अब तक मैं एक खा चुका हूँ।'' फिर वृद्ध ने स्पष्ट शब्दों में बताया, ''ये सिर्फ आपके लिए हैं, चलें?''

''जल्दी है क्या जी?''

''घर में भरा-पूरा कुनबा है, लेकिन मेरा इंतजार करनेवाला कोई नहीं।'' कहते हुए उसकी आँखों में पहले दो नाफरमान बेटे उभरे, बहुएँ उभरीं, नाती-पोते उभरे, फिर नमी तैर आई। 'कोई भी नहीं,' उसने इस बार स्वत: कहा।

तभी छलछला आई आँखों में अश्क बनकर बैठे आनंदीलाल ने उसे जवानी में से पुकारा, ''अन्नदाता!'' वृद्ध को वह इसी नाम से पहचानता था, ''क्या मेरा सबक भूल गए? आप रो रहे हैं, वह हँस रहा है, क्योंकि नीला आकाश वही है और उसमें यात्रा करनेवाले हंस भी वही। दिन में खिलनेवाला कमल वही है और रात में महकनेवाली कुमुदिनी भी वही। राम में प्रेम की लौ जगानेवाला वही है, रावण में अहंकार के बीज बोकर उसका सर्वनाश करनेवाला वही है और संसार की इस माया को देख बाँसुरी बजानेवाला छलिया भी तो वही है! मियाँ, बेसुर बजनेवाले आप कौन होते हैं?''

उसने मुँह फेरकर चुपके से आँखें पोंछ लीं।

बूढ़ी बेगम ने गुड़धानी की लज्जत लेते हुए अपने कुरते में से एक रूमाल निकाला और हथेली पर खोलकर उसके सामने हाथ बढ़ाया।

''क्या है?'' वृद्ध ने नजरें झुकाते हुए पूछा।

''चखकर आप ही बताएँ।''

रूमाल में केले के पत्ते का एक टुकड़ा था, उस पर खालिस घी में बना हुआ बादाम-पिस्तोंवाला हलवा था। वृद्ध ने एक उँगली डालकर मुँह में ली और चंद पलों के लिए वह चूसता रहा, फिर यकायक बोला, ''ये...ये तो गाजर का हलवा है!''

''हमने अपने हाथों बनाया है जी।'' गर्व से बूढ़ी बेगम चहकी, ''उम्मीद करते हैं, जैसा लजीज आपकी बेगम बनाती थी, जैसा यह भी होगा।''

उसकी हथेली पर से रूमाल के साथ हलवा लेते हुए वृद्ध ने प्रशंसा में केवल एक ही शब्द कहा, ''माशाअल्लाह!'' और यह एक शब्द तारीफ के पुल पर भारी था।

यही तो वह शब्द था, जिसे नवाब के मुँह से सुनने के लिए बेगम शबाना सप्ताह में कम-से-कम एक बार कोई ऐसा स्वादिष्ट पकवान बनाती थी कि दुश्मन के होंठों से भी लार के साथ 'वाह' टपक पड़े, मगर बेगम के स्नेह से सराबोर शीरमाल खाकर नवाब 'अलहम्दोलिल्लाह' जैसे स्तुति के दो-चार शब्द और जोड़ देते थे।

हकीकत में यह रोटी, पराँठा, तंदूरी, रूमाली बाकिरखानी और राजस्थानी फुलके की तुलना में अधिक नाजुक, महक भरी और दिखने में भी सुंदर होती थी।

अपने पोपले मुँह में गाजर का हलवा ले जुगाली करते हुए वृद्ध अतीत की पगडंडियों पर दौड़ गया। वह कौन सा दिन था, कौन सा महीना या वर्ष, वह नहीं जानता था। सारी तिथियाँ उसके मस्तिष्क में गड़बड़ा गई थीं।

कभी उसे लगता कि उसकी बीवी का स्वर्गवास अभी-अभी हुआ है, कभी लगता कि यह दु:खद घटना वर्षों पहले की है, तो कभी उसे ऐसा भी भ्रम होता कि बीवी उसे छोड़कर कहीं गई ही नहीं।

आनंदीलाल के विषय में भी उसे कई भ्रांतियाँ थीं, मगर थोड़ी कोशिश करने पर भले ही निश्चित तिथि उसकी पकड़ में न आए, घटना आ जाती थी।

तब वह जईफ नहीं था। दो नन्हे बच्चों का बाप होने के बावजूद उसका रौब कुँवारों जैसा था। सिर पर लाल तुर्की टोपी डाल जब वह असद महल में कदम रखता, चिलमन और मरमर की जालियों के पीछे से दासियाँ उसे एक नजर देखती रह जातीं।

तब वह नवाब सआदत जाँ के तोशाखाने का मुंतजिम था। चाँदी के खोमचों में मसालों से महकते हुए पकवान कलात्मक ढंग से सजाना; उन पर टोकरी रख, सफेद कपड़ा लपेटकर अपनी मुहर लगाना और खिदमतगार द्वारा नवाब की ड्योढ़ी पर पहुँचाना उसका जिम्मा था।

यह फन उसके कुल में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आया था। उसके दादा हुजूर स्वयं अपने दौर के एक नामी बावरची थे। उन्नाव जिले में आए शफीपुर के वह बाशिंदे थे। फैजाबाद के छोटे-बड़े रईसों के बावरचीखानों से अपने जीवन की शुरुआत कर वे दिल्ली दरबार के तोशाखाने तक पहुँचे थे। किस्सा कोताह वे अपने जीवनकाल में ही अनगिनत कहानियों का संकलन बन गए थे।

कहा जाता है कि एक रोज मिर्जा खुर्रम बख्त के बेटे मिर्जा आसमान कद्र को वाजिद अली शाह ने खाने पर बुलवाया। जब मेहमान दस्तरख्वान पर आ बैठा, सबसे पहले उसकी दृष्टि चाँदी के वर्क में जगमगाते दूधी के हलवे पर ठहरी।

दिखने में वह इतना आकर्षक था कि मिर्जा आसमान कद्र ने भोजनपान का शुभारंभ उसी प्लेट से किया। जैसे ही पहला कोर मुँह में रखा, उसका भ्रम टूट गया। जिसे वह दूधी का हलवा समझा था, वह भूना हुआ गोश्त था।

उसी पल उसने कसम खा ली कि चुपके-चुपके मुसकरा रहे आलमपनाह को यह मजाक महँगा पड़ेगा। इसके दूसरे रोज से ही उसने ऐसे बावरची की तलाश शुरू कर दी, जो ईंट का जवाब पत्थर से दे सके।

किसी ने उसे उजड़ी हुई दिल्ली से बेहाल आए हुए हसन रजा खान उर्फ मियाँ हसनू का पता दिया। मिर्जा आसमान कद्र ने तुरंत उनसे संपर्क साधा। उन्होंने चुनौती स्वीकार कर ली, किंतु एक शर्त पर। यदि वे मिर्जा की नाक रख लें, तब वह उन्हें अपने आसमान महल के तोशाखाने का मुंतजिम नियुक्त करें।

इस लाजवाब खोज के हफ्ते भर बाद आसमान कद्र ने शाह आलम को दावत दी। वाजिद अली शाह भी यह सोचकर पधारे कि उनका मेजबान निश्चित कोई दाँव खेला होगा। अफसोस कि फिर भी वे गच्चे-पर-गच्चा खा गए।

दस्तरख्वान पर पुलाव, जरदा, बिरयानी, कोरमा, सब्जी, अचार, रोटियाँ, पराँठे आदि अलग-अलग किस्म के छप्पन भोग सजाए हुए थे; मगर आलमपनाह ने जिस पकवान को चखकर देखा, वह चीनी का बना निकला।

नौरतन कोरमा चीनी का, शिमला मिर्च का अचार चीनी का, शीरमाल चीनी के...चीनी और सिर्फ खालिस चीनी।

अंत में जब मेजबान ने उनसे गुजारिश की कि 'किब्ला-ओ-काबा, एकाध प्लेट भी चखकर देखें' तब उनकी सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो गई। चाँदी की दिखनेवाली जिन प्लेटों में भिन्न-भिन्न लज्जतदार चीजें सजाई गई थीं, वे भी चीनी से बनी थीं।

ऐसे बाजीगर बावरची का पोता था शराफत अली। वह खुद भी अपने फन का सम्राट् था; मगर बदलते समय के साथ सबकुछ बदल जाता है। रियासतें 'इंडियन यूनियन' में शामिल हो जाने पर तोशाखाने रसोईघर बन गए। शाही बावरचियों के काफिले के साथ उनके मुंतजिम को भी छुट्टी दे दी गई।

शराफत अली नहीं डिगा। उसने अपनी कोठी को तोशाखाना बना लिया। गाँव में शादी-ब्याह जैसे अवसरों पर बारातियों के लिए महाभोज की व्यवस्था करने का वह ठेका लेता और मियाँ-बीवी दोनों मिलकर देगें भर-भरकर

खाना पकाते।

इससे घर की गुजर तो हो जाती थी, मगर पहले सा अब आदर नहीं रहा था। पहले से कद्रदान भी अब कहाँ रहे थे! 'मुंतजिम' शब्द ही चलन से उठ गया था। अब गाँववाले उसे शराफत अली 'तंदूरी' के नाम से पहचानते थे।

यह दूसरी बात है कि नवाब के बाद आनंदीलाल एक ऐसा सज्जन था, जो उसके फन की कद्र करना जानता था। ''अन्नदाता!'' किसी दावत में भोजनपान कर वह चंद ऐसे शब्द अचूक कहता ताकि शराफत अली गौरवान्वित हो, ''जाने पिछले जन्म में मैंने कौन से पुण्य किए होंगे कि ऐसी इंद्रलोक की रसोई खाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।''

गाजर के हलवे का लुत्फ लेते हुए वृद्ध को इस जुमले के साथ जुड़ा हुआ एक हादसा फट् से याद आ गया। दावत की उसी शाम को मौसम बदला था, हवाएँ चलने लगी थीं, शामियाना भी बाँसों के साथ कई स्थान से उखड़कर झंडे की तरह लहराने लगा था। बारातियों में हड़बड़ी मच गई थी।

वह रात आनंदीलाल ने डेरेदार छम्मीजान के कोठे पर गुजारी थी।

4

गाँववालों को चौराहे-चौपाल पर धुआँधार चर्चा करने के लिए एक नया विषय मिल गया। स्त्रियाँ कानाफूसी करने लगीं। धीरे-धीरे बवंडर उठने लगा।

उस दशक में आनंदीलाल स्कूल मास्टर न होता तो कुहराम भी न मचता, बल्कि बात आई-गई हो जाती। किसी वेश्या के पहलू में कोई छैला सुख खोजे, इससे बस्तीवालों को क्या लेना; किंतु आनेवाली पीढ़ी के भविष्य का निर्माण करनेवाला खंभा ही खिसक जाए, तब बादलों का गरजना और बिजलियों का कड़कना लाजिम था।

खंड-खंड में आनंदीलाल का यही कारनामा हवेली में भी घुसने लगा। नवाब को यकीन नहीं हुआ। ''जो फरिश्ता हमारी सुबू बेगम की चरणधूलि अपने माथे पर चढ़ाता हो, वह कभी भी ऐसी जलील हरकत नहीं कर सकता।'' गाँववालों को यह उनका मुँहतोड़ जवाब था।

इतवार के रोज वह दाढ़ी बनवा रहे थे, तब लगाई-बुझाई करनेवाले कनैयालाल ने एक ऐसा क्षेपक चलाया कि वह सिर्फ निशाने पर ही सटीक नहीं बैठा, निशाने को छेदकर आरपार निकल गया।

''हुजूर...'' नवाब के कान में वह फुसफुसाया, ''काह बताएँ हम? अब तो जमाना हवेली पर भी उँगली उठाने लगा है। बेगम साहिबा और आनंदीलाल के पवित्र रिश्ते को लेकर...राम राम राम, कहते हुए जबान कटती है और कलेजा फटता है, सरकार।''

नाई का संकेत उस घटना से था, जब बेगम अकेली ही सुखपाल में बैठकर आनंदीलाल की मिजाज-पुरसी के लिए झील पर गई थी और उसके बाद के थोड़े दिनों वह तूफान का केंद्र बनी रही। नवाब को जब पता चला तो वे न नाराज हुए थे, न प्रसन्न। आज जैसे वह गरम तेल में नहाए हों, क्रोधित होकर ज्वालामुखी की तरह भभक उठे, ''यह कैसा नामुराद शख्स है! पाँच लाख रुपए स्कूल को चंदा देकर हमने उसे मास्टर का दरजा दिया और उसी ने हमारी इज्जत धूल में मिला दी?''

नवाब से शतरंज खेलने के लिए बिसात लगाकर प्रतीक्षा में बैठे शराफत अली को उन्होंने आदेश दिया, ''उस नमकहराम को ढूँढ़कर यहाँ हाजिर किया जाए। आज हमने उसकी खाल उधेड़कर न रख दी तो हमारा नाम भी सआदत नहीं।''

किवाड़ की आड़ में खड़ी बेगम शबाना ने यह सुना और वह पाँव से सिर तक काँप उठी। नवाब के गुस्से से वह

अच्छी तरह वाकिफ थी। वे शायद ही आपे से बाहर होते थे, मगर जब उनका माथा ठनकता था, हवेली में भूकंप आ जाता था।

बेगम ने किवाड़ के पीछे से निकलकर शराफत अली को गलियारे में घेर लिया। ''मियाँ...'' फिर दबी आवाज में कहा, ''क्या आप चाहेंगे कि हमारे बेटे पर कोड़े बरसे?'' इससे पहले बेगम कभी उसके आगे ऐसे अकेले में नहीं आई थी। वह सन्नाटे में आ गया। उसे जाड़ा चढ़ते देख बेगम चिक के पीछे सरक गई। वह पसीने में नहाते हुए बुत बना खड़ा रहा। यह भी कैसी विडंबना थी? वह किसका हुक्म माने? किसका नहीं माने? दोनों ही तो उसके सरपरस्त थे।

अपने ही विचारों की भूलभुलैया में ठोकरें खाता हुआ वह झील पर आया और उसकी नजरें ठहर गई।

आनंदीलाल पानी पर पालथी मार अपनी मस्ती में बाँसुरी बजा रहा था। पलभर के लिए उसने मान लिया कि वह आनंदीलाल का अद्‌भुत चमत्कार देख रहा है। उसने आँखें मलकर दोबारा देखा तो उसे खयाल आया, बंसीवाला शायद भीतर की किसी शिला पर बैठा होगा।

शराफत अली ने उसे पुकारा, ''मियाँ मौजूद...''

उत्तर में आनंदीलाल ने बाँसुरीवादन रोक उसकी ओर देखा। लाल तुर्की टोपी का फुंदा हवा में लहरा रहा था। उजली अचकन पर उसने दुशाला डाला था, पतली-पतली टाँगों पर चूड़ीदार पाजामा मढ़ा था।

''तुम्हें लिवाने आया हूँ।'' शराफत अली ने फिर कहा। उसका इरादा आनंदीलाल को नवाब के कहर से बचाकर अपने घर ले जाने का था।

''अन्नदाता...' वह बोला, ''पानी में से मैं बाहर नहीं निकल सकता। कोई दुखियारा मेरे वस्त्र हर गया है।''

शराफत अली फिर उलझ गया। तुर्की टोपी में एक उँगली घुसाकर सिर खुजलाते हुए उसने दम भर सोचा, ऐसे मस्तमौला से कोई क्या कहे? उसका क्या करे?

इस नमकीन परेशानी के कारण कयामत से पहले आनेवाली जिस कयामत के बारे में वह यहाँ आनंदीलाल को चेताने आया था, वह भी भूल गया।

''कब तक पानी में पड़े रहोगे, मियाँ?'' उसने मुसकराते हुए किनारे पर से पूछा।

''जब तक छलिया कोई इंतजाम नहीं करता।''

''दो जहान का मालिक क्या तुम्हारे लिए नया लिबास खरीदने बाजार जाएगा?''

''भूल मेरी नहीं, उसी की है,'' आनंदीलाल ने स्पष्ट बता दिया, ''मैंने अपने सारे वस्त्र उतारकर जहाँ आप खड़े हैं, वहीं रखे थे। क्यों उसने हिफाजत नहीं की?''

''अरे मियाँ...' किसी बालक को समझा-पटा रहा हो, शराफत अली ने ऐसे उमगते हुए कहा, ''अब समझ में आया कि उसने मुझे तुम्हारे पास क्यों भेजा है। लो, यह दुशाला कमर पर बाँध लो।''

अपने कंधे पर से दुशाला खींच, उसने गोला बनाकर आनंदीलाल की दिशा में उछाला। आनंदीलाल ने उसे कैच कर वापस लौटाते हुए धमाका किया, ''केवल एक दुशाला नहीं चलेगा अन्नदाता, मेरे सारे वस्त्र चोरी हुए हैं। जाकर उससे कह दो कि देना हो तो शराफत से आनंदीलाल मास्टर का पूरा लबादा दे।''

शराफत अली ने सिर पीट लिया। वह वापस चौक में आया और चंद दुकानों में घूमकर उसने लबादे के साथ एक छाता और जूते भी खरीदे। आनंदीलाल का नया पहनावा यही था। पगड़ी, कोट और धोती।

शराफत अली को लौट आया देख वह प्रसन्न हो उठा, ''यह हुई न बात!'' सबसे पहले उसने धोती खोलकर उससे अपनी देह पोंछते हुए कहा, ''वह जानता है, मैं अपनी जबान का पक्का हूँ। जलसमाधि लूँगा, मगर बिना

अपनी पोशाक के पानी से बाहर नहीं निकलूँगा।''

उसे तैयार होते देख शराफत अली को परिहास सूझा, ''क्या डूब मरने से पहले बाँसुरी बजाना जरूरी था?''

''हाँ, यदि मुक्ति पाना हो तो, मगर ऐसी मेरी किस्मत कहाँ कि बाँसुरी के मधुर सुर पर सवार होकर अंतरिक्ष में लहराते हुए मेरे प्राण पखेरू उड़ जाएँ।'' कमर पर धोती बाँध उस पर कोट पहनते हुए उसने पूछा, ''जानते हैं क्यों?''

''क्यों?''

''इसलिए कि बाँसुरी बजाने का ठेका छलिया ने खुद ले रखा है और मौत का ठेका हमारे नसीब में आया है।''

''क्या मतलब?''

उसने जूते भी पहन लिये थे। अब वह सिर पर पगड़ी बाँधते हुए शराफत अली को उत्तर दे रहा था, ''मतलब यह कि इस संसार के सारे प्राणी उसकी बाँसुरी के समान हैं। दिन-रात वह हम सब बंदों के द्वारा कर्णप्रिय धुनें छेड़ता रहता है; मगर अज्ञानी उसकी राग-रागिनियाँ समझ नहीं पाते। वे केवल सुखराग का रस लूटना जानते हैं, दुःखराग का आनंद लेना नहीं। सो हो जाते हैं परेशान।''

पगड़ी बँध जाने पर उसने शराफत अली के सामने देखा, ''हमें कहाँ चलना है?''

''मेरी कोठी पर।''

''ठीक है।'' उसने कुछ सोचकर कहा, ''मगर इससे पहले हुजूरेवाला से मिलना मेरे लिए आवश्यक है।''

शराफत अली का दिल दो धड़कनें चूक गया, ''किसलिए?''

''जाने क्यों ऐसा लगता है कि उनकी बाँसुरी कुछ बेसुरी बज रही है।'' कहते-कहते वह छाता खोल नई पोशाक में हवेली की तरफ चल पड़ा।

बौखलाया हुआ शराफत अली सौ-सौ मिन्नतें करता हुआ उसके पीछे चला। अंत में उसने अपनी तुर्की टोपी उतारकर उसे देवी माँ की भी दुहाई दी, मगर तब तक काफी देर हो चुकी थी।

5

हवेली सामने थी।

आनंदीलाल की प्रतीक्षा में नवाब बेसब्री से झरोखे में खड़े थे, खून खौल रहा था। पीठ पीछे बँधे उनके हाथों में कोड़ा था।

आनंदीलाल छाता बंद करते हुए उनके सामने देख मुसकराया। वह कुछ नहीं बोले। उनके भीतर दुबककर बैठा हुआ खलनायक काफी कुछ बोल रहा था।

गुजरे यहाँ से संत जब कलियुग में
घर आँगन में कुछ राह में हमल पड़े।

आनंदीलाल वही मुसकराहट लिये हुए दीवानखाने में प्रविष्ट हुआ। जीने पर से उतरकर आते हुए नवाब पर उसकी नजर ठहरी। ''आलीजाह को आदाब,'' वह बोला।

''कोट उतारो।'' आनंदीलाल के अभिवादन का यह उत्तर था।

उसने अपने कोट के बटन खोल, उसे तह करके छाते के साथ तिपाई पर रख दिया।

''कमीज उतारो।''

दहलीज तक आए शराफत अली के पाँव जहाँ-के-तहाँ गड़ गए। अब आकाश टूटनेवाला था, धरती फटनेवाली थी। वह आँखें भींच मन-ही-मन खुदा से दुआ माँगने लगा—जल तू जलाल तू, आई बला को टाल तू...

आनंदीलाल ने अपनी पगड़ी और कमीज उतारकर अभी कोट पर रखे ही थे कि उसकी पीठ पर कोड़े का पहला वार हुआ। वह सिहर उठा।

''जिनाकार,'' नवाब गरजे, ''बदकार, नीच! क्या हमने तुम्हें इसलिए रिक्शावाले से हाई स्कूल का मास्टर बनाया, ताकि सारा जमाना हम पर थूके?''

वह जहरबुझा एक-एक जुमला बोलते थे और कोड़े का एक-एक वार करते थे। ''जलील कुत्ते, जिसे तुमने देवी माँ कहकर पूजा, उसी के नूरानी चेहरे पर कालिख पोत दी?''

जीने पर खड़ी बेगम शबाना मुँह में पल्लू दबाए मौन आँसू बहा रही थी। अब उससे बरदाश्त नहीं हुआ।

आनंदीलाल की पीठ लहूलुहान हो गई थी, फिर भी वह टिका हुआ था, कोड़े-पर-कोड़े की फटकार झेल रहा था; मगर उसके होंठों से उफ तक नहीं निकलता था।

जैसे ही बेगम आकर खुदा और रसूल का वास्ता देती हुई नवाब के चरणों में लोट गई, आनंदीलाल ढह गया। नवाब ने कोड़ा फेंक, बेगम को उठाकर अपने सीने से लगाया। अभी भी उनकी आँखें आग उगल रही थीं। अभी भी सिर पर चढ़ा गुस्सा तलवे तक नहीं उतरा था।

''उठा ले जाओ नाली के इस कीड़े को,'' शराफत अली की तरफ देखते हुए वे चिंघाड़े, ''और फेंक आओ कूड़े में।''

उसके वस्त्रों के साथ शराफत अली उसे जैसे-तैसे रिक्शा में डालकर अपनी कोठी पर ले आया। उसकी लहू में नहाई हुई देह को देख शराफत अली की बीवी भरभराकर रोने लगी। शराफत अली ने उसे ढाढ़स बँधाते हुए चंदन का लेप लाने को कहा।

आनंदीलाल हतस्वर में बोला, ''उसकी मरजी से मैंने खटिया पकड़ी है, अब उसी के खिलाफ जाकर मैं अपना इलाज कैसे करवाऊँ?''

उस रोज आनंदीलाल की पिटाई की खबर सुनकर सबसे अधिक खुशी गिद्धराज के अस्थिपंजर से नाई कनैयालाल को हुई। उसने अपनी खुशी का नंगा इजहार करने के लिए रात में पटाखे भी छोड़े।

मुसीबत के उन दिनों में सिर्फ तीन लोग आनंदीलाल के हमदर्द रहे—शराफत अली, उसकी बीवी और बेगम शबाना। जब तक वह खाट से लगा रहा, बेगम छिप-छिपकर उससे मिलने आती रही।

इसके बाद एक रात अचानक ही आनंदीलाल गायब हो गया। तीन-चार महीने अज्ञातवास में रहकर वह बस्ती में लौटा, तब उसे ज्ञात हुआ—लगभग सभी घरों में उसका प्रवेश निषिद्ध था। हवेली के द्वार उसी रोज बंद हो गए थे, जिस दिन उसने नवाब का कहर भुगता था।

हुक्का-पानी बंद होना आनंदीलाल के लिए कोई नई बात नहीं थी, न ही इस तिरस्कार के कारण उसने अपने मन में द्वेषभाव को पनपने दिया था। वह भलीभाँति जानता था, गाँववाले बेचारे नादान हैं, नहीं जानते हैं कि वे क्या और क्यों कर रहे हैं।

कालकोठरी में जब आनंदीलाल एक वर्ष की सजा काट रहा था, इन्हीं मसलों के कारण उसका एकाकीपन उसके लिए आशीर्वाद सिद्ध हुआ। चंद पेचीदा सवालों के जवाब उसे वहीं मिले थे।

मसलन : सभी मनुष्य एक-दूसरे से वैसे ही जुड़े हुए हैं, जैसे कि जिस्म में पल-पल धड़कते अनगिनत कोष। हमारे ऋषि-मुनियों ने साढ़े तीन हाथ की इस काया को यों ही ब्रह्मांड नहीं कहा है।

आनंदीलाल जान गया था, समस्त संसार उसके भीतर समाया हुआ है और जो अपने ही शरीर का एक हिस्सा हो, वह उससे जुदा कैसे हो सकता है?

ये पेड़-पौधे, जीव-जंतु, कीट-पतंगे, नदी-नाले, पर्वत-अंबर सभी तो मनुष्य का विस्तार हैं, फिर भी चंद भटके हुए इनसान अपने को श्रेष्ठ घोषित कर गौरवान्वित होते हैं। काश, वे जानते कि उनकी हर साँस में हवा के वही करोड़ों अणु होते हैं, जो कल किसी दूसरे ने कहीं अपने उच्छ्वास द्वारा छोड़े थे।

मुसलमान की साँसों में हिंदू धड़क रहा है।

हिंदू की साँसों में मुसलमान धुनकारे ले रहा है।

गाँव गलानियाँ के अज्ञानियों ने यदि जीवन का यह राज जाना होता तो क्या वे उसे जलील करने की धृष्टता कर सकते थे?

जेलर बाबू जब भी उसकी कोठरी के पास से गुजरते, उन्हें हैरत होती। यह कैसा विचित्र कैदी है, जो न कभी किसी अभाव को लेकर शिकायत करता है, न ही उसकी कोई विशेष माँग है। ऐसे बंदी से दोस्ती बनानी चाहिए।''

एक रोज उन्होंने देखा तो आनंदीलाल उखड़ा सा अपनी कोठरी में घुटनों को दोनों हाथों से बाँधे हुए बैठा था। उनसे रहा न गया। ''नंबर दो सौ एक!'' कंठ में चाशनी घोलकर वह बोले, ''क्या सोच रहे हो?''

भीतर से कोई जवाब नहीं आया, न ही कोई हरकत हुई। उन्होंने सोचा, शायद समाधिस्थ होगा। उससे दोस्ती का हाथ बढ़ाने के लिए यह अवसर उचित नहीं।

वे पलटकर जाने ही वाले थे कि आनंदीलाल खड़ा होकर सलाखों तक चला आया। फिर तड़ककर बोला, ''क्या आप मेरा नाम नहीं जानते?''

वे समझ गए। आनंदीलाल अपने नंबर से पुकारा जाना पसंद नहीं करता था। तुरंत उन्होंने यकीन दिलाया कि भविष्य में वह उसे उसके नाम से संबोधित करेंगे, तब आनंदीलाल ने मुसकराहट बिखेरी, ''आप कुछ कहना चाहते थे?''

''दो महीनों से तुम हमारे मेहमान हो, मगर पहले कभी तुम्हें इतना गंभीर नहीं देखा था।'' जेलर बाबू कह रहे थे, ''यहाँ कोई तकलीफ तो नहीं?''

''आज रात मैंने एक सपना देखा।''

''इसमें परेशानी की क्या बात है?''

''सपने में मैंने एक राजहंस को मानसर के स्फटिक जल में तैरते हुए देखा।''

वे उलझ गए। यदि स्वप्न भयावह होता तो बात अलग थी, यह तो सुखकर था, हिमालय में स्थित पवित्र झील के राजहंस का था। यह भला किसी के स्यापे का सबब कैसे बन सकता है?

आनंदीलाल ने आगे कहा, ''मैं सोच रहा हूँ कि हकीकत में सपना कौन देख रहा था, मैं या राजहंस?''

वे चौंके, ''क्या मतलब?''

''मैंने सपने में राजहंस को देखा, अर्थात् राजहंस यथार्थ नहीं, सच्चाई नहीं, सही?''

''बिलकुल।''

''अब मान लें कि इस समय राजहंस सपना देख रहा हो कि मैं सलाखें पकड़कर आपसे संवाद कर रहा हूँ, तब यह दृश्य क्या हुआ? हकीकत या सपना?''

जेलर बाबू की बुद्धि का मलीदा बन गया। इस पहेली को लेकर वे कई दिनों तक चिंतन-मनन करते रहे। अंततः वे इस नतीजे पर पहुँचे कि आनंदीलाल कोई साधारण मनुष्य नहीं है।

उसी रोज उसकी कोठरी का ताला खुल गया। वह जेल में था, मगर उस पर कोई पाबंदी नहीं थी। पाषाण-पिंजरे में उसे मुक्ति मिली थी। वह हँस दिया।

एक महीना और बीता और जेलर बाबू का यकीन पुख्ता हो गया। आनंदीलाल ज्ञानी है, महात्मा है, सद्गुरु है। उसकी प्रखरता का लाभ अन्य कैदियों को भी मिलना चाहिए... ऐसी गूँज उनके अंतरमन में उठी और हफ्ते में एक बार उसकी धर्मसभा आयोजित करने का उन्होंने फैसला किया।

इसकी तैयारी में पूरे दस दिन लगे। जेल के बगीचे में तख्ता खड़ा कर मंडप सजाया गया। शुभ मुहूर्त के लिए वे कहीं से एक नेताजी को भी पकड़ लाए।

तीन सौ से अधिक कैदी आनंदीलाल का तमाशा देखने के लिए बेचैन बैठे थे। तख्ते पर बिछे गद्दों के बीच उजले आसन पर आनंदीलाल विराजमान था। आज के दिन के लिए उसका पहनावा भी बदला गया था। जेल की पोशाक के बदले उसे भगवा चोगा दिया गया था। उसका ठस्सा देखते ही बनता था।

गरमजोशी के साथ जेलर बाबू ने उसका संक्षेप में परिचय देकर नेताजी से माइक पर आने के लिए प्रार्थना की।

सुनहरे किनारेवाली उजली सफेद धोती और सोने के बटन लगे कुरते में खड़े होकर उन्होंने माइक को गले से पकड़ा, फिर अपना गला खँखारा और हो गए शुरू। विषय था जवाहरलाल नेहरू की महिमा और अगला चुनाव।

पूरे घंटे भर तक वे अपने दल की डफली बजाते रहे। अंत में आनंदीलाल के बारे में दो शब्द कहकर वे उसकी तरफ मुड़े तो झेंप गए। वह अपने आसन पर गुड़मुड़ी होकर सो गया था।

किसी तरह उसे झिंझोड़कर जगाया गया तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठा; मगर अपनी धर्मसभा में उसने केवल एक ही अमृत वचन कहा, ''चाहे धर्म हो या राजनीति, अब हमें ऐसे वक्ता की आवश्यकता है, जिसकी जबान नहीं, मौन बोलता हो।''

दो लंबी जमुहाइयाँ लेकर वह फिर से लेट गया। देखते-ही-देखते उसकी नाक भी बजने लगी। सारे कैदी हँसते-हँसते लोटने लगे; मगर नेताजी की भृकुटियाँ तन गईं। जेलर बाबू बगलें झाँकने लगे।

उन्हें क्या पता था कि उनके नेक इरादों का परिणाम जग-हँसाई होगा! इस समय उनका अपना ही क्रोध इस कदर उबाल खा रहा था कि उनका बस चलता तो वे मंच पर ही आनंदीलाल की खाल उधेड़कर उसमें भूसा भर देते।

यही उतार-चढ़ाव पीर-बावर्ची-भिश्ती आनंदीलाल का जीवन था। यही सत्कार-तिरस्कार उसकी नियति थी। यदि अब तक के उसके कारनामों का लेखा-जोखा लिया जाए तो कभी वह प्रसिद्धि के शिखर पर दिखाई देता है तो कभी गुमनामी के गड्ढे में पड़ा।

सन् 1947-48 में जब उसने पहले-पहल गाँव गलानियाँ में दर्शन दिए थे, अकस्मात् ही उसका रौब जम गया था। वह लगभग महात्मा बन गया था। यही नहीं, 'बरगदवाले बाबा' के रूप में पूजा भी जाने लगा था। तभी वह अपनी लंबी दाढ़ी मुँडवाकर कुली बना और शिखर से गिरकर सीधा तलहटी में आ पहुँचा।

सन् 1148 से 53 तक वह बैज लगाकर बस-अड्डे में लोगों के बोझ ढो रहा था, तब शांतिमठ के महंत ने उसे सरेआम सद्गुरु घोषित किया। सट्टा बाजार गरम हो गया। आनंदीलाल का भाव आसमान को छूने लगा। उसने शराब की बोतल में डुबकी लगा दी। वह खुद तो डूबा, साथ ही अपनी प्रतिष्ठा को भी ले डूबा।

सन् 1953-54 में वह एक साधारण ठेलेवाला था। नहाने के साबुन के साथ वह मन का मैल धोने की टिकिया बेचता था और जमाना उस पर हँसता था। (बाँस पर चढ़कर अपनी खिल्ली उड़वाना जैसे उसका शौक था।)

सन् 1954 से 60 तक वह डाकिया रहा। उसका आदर बढ़ने लगा, पलड़ा भारी होने लगा। भद्रता के दायरे में वह प्रविष्ट हुआ था और उसने अपनी वरदी के मानसिक बोझ से व्याकुल हो, डाकघर के अन्य कर्मचारियों में अपने

विचार फैलाकर असंतोष की लहर पैदा करनी चाही। फलस्वरूप...

सन् 1960 से 65 तक उसे रिक्शाचालक बनना पड़ा। जैसे उसका कोई अलग अस्तित्व ही न हो, ऐसे वह भीड़ का एक हिस्सा बन गया।

भारत-पाक युद्ध के बाद सन् 1965 में वह हाई स्कूल का मास्टर बना और सारी बस्ती ने उसे सिर-आँखों पर उठा लिया। गाँव का चौराहा ध्वज-पताकाओं से सजाया गया। अँगूठाछाप शिक्षक का साक्षात्कार लेने देशभर के चोटी के अखबारों के संवाददाताओं के साथ अपने वीडियो कैमरे लिये बी.बी.सी. वाले भी गाँव में उतर आए थे।

उस ऐतिहासिक पत्रकार परिषद् का एक अंश, जो नवाब सआदत जाँ और बेगम शबाना की मौजूदगी में आयोजित हुई थी—

पत्रकार : क्या यह सच है कि आपके पास कोई डिग्री नहीं?

आनंदी : उसके दरबार में करनी देखी जाती है, विद्या नहीं, डिग्री नहीं।

पत्रकार : तब हम मान लें कि आप अशिक्षित, अज्ञानी हैं?

आनंदी : अज्ञानी की सबसे बड़ी पहचान यह होती है कि वह ज्ञानी को अज्ञानी समझता है।

पत्रकार : ज्ञान की आपकी परिभाषा क्या है?

आनंदी : जो हमारी विवेकशक्ति में वृद्धि करे और धर्म-अधर्म के बीच अंतर करना सिखाए, वही ज्ञान का वास्तविक कार्य है, न कि क्लर्कों की तादाद बढ़ाना।

पत्रकार : यानी कि बच्चों को आप धर्म सिखाएँगे?

आनंदी : सब धर्म समय और स्थान के कैदी हैं, मगर आत्मा अजन्मा, अनादि है।

पत्रकार : क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आप आत्मा को परमात्मा से मिलानेवाले मध्यस्थ हैं?

आनंदी : मैं कानूने-इश्क का उपासक हूँ।

इस साक्षात्कार के बाद आनंदीलाल की प्रसिद्धि और महिमा का सिक्का फिर एक बार चल-निकला। फिर एक बार खुसुर-पुसुर शुरू हो गई, ''मास्टरजी का काँटा छम्मीजान बनारसवाली से भिड़ा है।'' मगर बिना सबूत के इस बार पाप नापित के लिए भी पर मारना संभव नहीं था।

अंततः एक रोज सबूत हाथ लग ही गया। आनंदीलाल को कोठे में घुसते हुए कम-से-कम पंद्रह लोगों ने अपनी आँखों से देखा था और उनमें से सात गवाह ऐसे थे, जो गीता और कुरान पर हाथ रखकर पंचों के सामने सौगंध लेने को मचल रहे थे।

आनंदीलाल मास्टर का बेड़ा पानी में बैठ गया। उसके ठीक छह महीनों तक गाँववालों की झिड़कियाँ झेलने और भुखमरी के दिन गुजारने के बाद आखिर सच उजागर हुआ।

डेरेदार छम्मीजान, जो अपनी मंडली के साथ दिल्ली-यू.पी. के लंबे दौरे पर गई थी, लौट आई। उसे आनंदीलाल मास्टर पर हुए शारीरिक और हो रहे मानसिक अत्याचारों का पता चला तो वह तिलमिला उठी। अपनी लंबी छरहरी कमर लहराती हुई वह सीधी चौक पहुँची और बीच बाजार में अपना लहँगा उठाकर गाँववालों पर चुन-चुनकर लानतें-मलामतें बरसाईं, एक-एक अगुवा को आड़े हाथ लिया।

तीस वर्ष की घाघ छम्मीजान के बयान पर एतबार किया जाए तो उस शाम मौसम देखते-ही-देखते बदला था। तेज हवाएँ चलने लगी थी, सूर्यास्त के बाद बारिश भी हुई थी। (इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता।)

चूँकि आनंदीलाल का अपना ठौर-ठिकाना नहीं था, पहर गए रात में वह पनाह लेने के लिए कोई सुरक्षित छत की तलाश में निकला। काफी भटकन के बाद उसने एक घर का किवाड़ खुला पाया। वह था छम्मीजान का कोठा।

भीतर अभी-अभी मुजरा समाप्त हुआ था।

जब लोग-बाग (जिनमें रामरखा तबलची जैसे साजिंदे भी थे) छाता खोले अपने-अपने घर लौटने के लिए रिक्शा और इक्के रोक रहे थे, आनंदीलाल दाखिल हुआ। छम्मीजान ने सोचा, पगड़ी बाँधे कोई रईस महाजन पधारा है। उसने तीन बार लखनवी अंदाज में आदाब कर आनंदीलाल को अंदर ले किवाड़ में चटखनी लगा दी—'ताजा बकरा है, हजार रुपयों तक ऐंठ लूँगी।'

वह रंगशाला की रोशनी में आई तभी उसे ज्ञात हुआ, उसके सामने भीगे वस्त्रों में ठिठुरता हुआ आनंदीलाल मास्टर खड़ा है। दम भर वह उसे देखती रही। आखिर पट्ठा लहँगे का करिश्मा देखने चला ही आया!

छम्मीजान को बरसात का वह दिन याद आया, जब वह सोलह साल की कच्ची कली थी। उसका गदराया जोबन साधु-संतों के लिए अपने चोले त्यागकर संसार में लौट आने का न्यौता था, उसका नशीला जिस्म मर्दों के लिए स्वप्नों का सामान था। उसकी नथ उतारने के लिए दस गाँवों के आका महीनों से होड़ लगाए हब्सेदम बैठे थे।

यही कारण था कि रूप और धन के मद में उसने अपने विवेक को आले पर चढ़ा दिया था। मर्दों की खिंचाई करने में उसे अनोखा सुख मिलता था, चाहे वह मर्द श्रीमंत हो या अकिंचन।

तब आनंदीलाल रिक्शा चालक था। पूरे सप्ताह से हो रही निरंतर वर्षा के कारण उसका धंधा ठप हो गया था। दो रोज से उसने कुछ खाया भी नहीं था। ऐसी भुखमरी की हालत में छाता लिये रामरखा तबलची आ पहुँचा, ''खाना खाओगे?''

उसने 'हाँ' भर दी।

''चलो मेरे साथ।''

रामरखा के पीछे-पीछे डग भरता हुआ वह कोठे पर आ पहुँचा। छमिया उसे एक नजर देख तबलची पर बरस पड़ी, ''ऐ हे...ऐसे हट्टे-कट्टे साँड़ को कोई जुमेरात की खैरात भी देता है?''

वह मौन रहा। छमिया के तेवर से वह वाकिफ था। बेचारे आनंदीलाल की पसलियाँ दिख रही थीं और चुलबुली छमिया कह रही थी कि...

''मेरा मुँह क्या ताक रहे हो?'' अब वह आनंदीलाल की तरफ मुड़ी, ''इस दर पर कुछ नहीं मिलने का, समझे!''

आनंदीलाल चुपचाप चला गया तो उसने रामरखा को उसके पीछे भेजा। थोड़ी देर बाद वह आनंदीलाल को लेकर लौटा तो छमिया फिर कड़की, ''जरा भी शर्म है? किसी ने झूठे कहा और मियाँ दुम हिलाते चले आए। जाओ, जाओ, कोई दूसरा घर ढूँढ़ो।''

जब रामरखा ने उसे दसवीं बार बुलाया और वह दसवीं बार भी आया, तब छमिया सोच में पड़ गई। आज से पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था, किसी मिस्कीन को उसने बार-बार हड़काारा हो और फिर भी वह मुसकराते हुए आकर उसकी ड्योढ़ी पर खड़ा रहा हो। ''है...इस फक्कड़ में कोई बात तो है।''

थाली परोसकर छमिया ने यही विषय छेड़ा, ''क्या दुत्कार, अपमान से तुम्हें तकलीफ नहीं होती? गुस्सा नहीं आता?''

उसने खाते-खाते ही 'ना' में सिर हिला दिया।

''वह कैसे?''

''मैं कुत्ते से गया-गुजरा नहीं हूँ।''

छमिया की नजरें उसके चेहरे पर स्थिर हो गई।

''किसी कुत्ते को तुम दस बार भगाओगी तो क्या वह ग्यारहवीं बार दुम हिलाते हुए तुम्हारे पास वापस नहीं

आएगा?''

तब छमिया की तरल बुद्धि में ढेले की छपाक सी कुछ महीन आवाज उठी थी, मगर सारगर्भित तथ्य उसकी समझ में नहीं आया था।

आनंदीलाल के मास्टर बनने के बाद फिर एक बार दोनों का सामना हुआ। छम्मीजान मुजरे के लिए किसी जमींदार की कार में पड़ोस के गाँव तालकटोरा जा रही थी और झील तक आते-आते धमाके के साथ टायर पंक्चर हो गया।

आनंदीलाल मास्टर, जो करीब में ही इमली के एक पेड़ तले समाधिस्थ बैठा था, उसने आँखें खोलीं। देखा तो गाड़ी का चालक टायर बदलने के लिए डिकी से जैक निकाल रहा था। छम्मीजान भी कार से बाहर आ अकारथ टहल रही थी।

वह एकटक देखता रहा। तीन वर्षों के अंतराल में छमिया की 'रस्मे-मिस्सी' बड़ी धूम से होने के बाद उसकी नथ उतर चुकी थी। वह छमिया से छम्मीजान और कली से गुलाब बन गई थी। नाक-नक्श कुछ और ही रसीले हो गए थे। केश का जूड़ा बनाकर उसने बीचोबीच सोने का एक नाजुक फूल सजाया था।

अब छम्मीजान की नजर उस पर ठहरी। पहले तो उसे कुतूहल हुआ, फिर चुहल करते हुए वह दूर से ही बोली, ''मास्टरजी, क्या कभी हुस्न नहीं देखा, जो इस डेरेदार पर डोरे डाल रहे हो?''

''जब तक रूप का प्रेम न हो, अरूप का प्रेम कैसे जाग सकता है?'' कहते हुए आनंदीलाल ने बालसुलभ निश्छलता से कहा, ''तुम्हें थोड़ी देर और देख सकता हूँ?''

''ऐ हे...'' लुत्फ लेते हुए वह निअराकर चहकी, ''क्या मुफ्त में ही बनारसवाली का जलवा देखोगे?''

आनंदीलाल सोच में पड़ गया। उसकी जेब में फूटी कौड़ी भी नहीं थी। मास्टर बनने के बाद से उसे जो तनख्वाह मिलती थी, वह एक चपरासी के हाथों सौंप देता था। एवज में उसे दो वक्त की रोटी और थोड़ी-बहुत अन्य सुविधाएँ मिल जाती थीं। चंद पलों बाद उसने बैठे-बैठे ही अपना छाता उठाकर सामने खड़ी छम्मीजान के चरणों में रखते हुए कहा, ''इसे रख लो। बिलकुल नया है। मेरे साथ अखबारों में इसकी तसवीर भी छपी थी।''

उत्तर में वह पलट गई, ''मियाँ...'' फिर उसे पीठ दिखाते हुए इठलाकर बोली, ''एक छाते में मेरी एक उँगली भी देखने को नहीं मिलती।''

आनंदीलाल ने कोट उतारा।

वह यों ही चालक को टायर बदलते हुए देख बोली, ''ब...स?''

आनंदीलाल सारे वस्त्र उतारकर अंडरवियर में दो-जानू बैठ गया, ''अब तो जी भर के दर्शन करने दो।''

छम्मीजान ने मुड़कर देखा और वह अपनी हँसी रोक न सकी। उस रोज हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ गए थे। आँखें छलछला आई थीं।

वही आनंदीलाल आज उसका मेहमान बना था। ''मास्टरजी...'' अंततः वह मुसकराकर बोली, ''कहीं रास्ता तो नहीं भूले न?''

''मैं गलत हो सकता हूँ, रास्ता बिलकुल सही है।''

''आपकी जेबें गरम हों तो मेरे लिए आप भी एकदम सही हैं।''

भाग्य से आज ही मिले वेतन के पाँच सौ रुपए उसके कोट की जेब में जैसे-के-तैसे पड़े थे। वे उसने छम्मीजान के आगे बढ़ाए। सारे-के-सारे नोट हथिया लेते हुए छम्मीजान ने अपना एक पैर अदा से नचाकर उसे घुँघुरुओं की मधुर आवाज सुनाई। ''वैसे तो एक रात का मेरा रेट हजार रुपए है, मगर आपसे आधे ही सही। आधी रात भी तो

गुजर चुकी है।'' कहते हुए आनंदीलाल की कमर में अपनी बाँह डालकर वह छम-छम करती हुई उसे शयनागार में ले आई। प्यार से उसे डोरियों से कसे हुए निवाड़ी पलंग के नरम-नरम गद्दे पर बैठाया और फानूस की लौ नीची कर वह मुँह फेर अपना शृंगार उतारने लगी। शुरुआत उसने जूड़े में लगे सोने के फूल से की।

फर्श पर सुथरी चाँदनी खिंची हुई थी। बड़े-बड़े सिंगारदान, पानदान, खासदान, उगालदान करीने से सजाए हुए थे। छत में छतगीरियाँ लगी हुई थीं। रोशनदान से आ रही भीगी हवा में परदे लहरा रहे थे।

ऐसे रोमांचक माहौल में अँगिया के बंद खोलते हुए उसे सहज ही विचार आया। क्या केवल रुपयों के लिए उसने आनंदीलाल का बेवक्त स्वागत किया था? यदि वैसी बात होती तो माँ के स्वर्गवास के बाद उसने अपनी नथ उतारनेवाले अधेड़ महाजन को दरवाजा नहीं दिखाया होता।

निर्वस्त्र होकर अपनी गरदन और वक्षस्थल पर पाउडर का छिड़काव करते हुए उसने पलटकर देखा तो आनंदीलाल मास्टर अपने लबादे के साथ ही घोड़े बेचकर सो गया था।

यह देख छम्मीजान को खुशी होनी चाहिए थी। आज के मुजरे में वह केदार राग पर ऐसी झूमकर नाची थी कि थककर उसका बदन चूर-चूर हो गया था। ऐसे में किसी ग्राहक का नकद देकर सो जाना खुशकिस्मती नहीं तो और क्या था!

उसे दु:ख भी नहीं हुआ। ऐसा क्यों? मन में अजीब सी हलचल क्यों होने लगी थी? एक तूफान बाहर चल रहा था, एक उसके भीतर उठा था।

थोड़े वर्ष पहले आनंदीलाल रिक्शावाले ने उसे कुत्ते का उदाहरण देकर क्या यही सूक्ष्म रहस्य समझाया था—मनुष्य तभी मानव कहलाता है, जब वह सुख-दु:ख, मान-अपमान, राग-द्वेष से ऊपर उठ जाए?

फानूस की मद्धिम रोशनी में वह अकेली ही हँस दी। ''अरे पगली, तू इस चक्कर में पड़ेगी तो खाएगी क्या? तेरे जीवन की नाव ही झूठ, फरेब, मक्कारी और जालसाजी की बुनियाद पर पड़ी है।''

अब उसे थोड़ी प्रसन्नता हुई, जैसे वह फिसलन पर खड़ी थी और फिर भी गिरी नहीं थी; मगर आनंदीलाल की ओर हुए उसके रुझान में कोई अंतर नहीं आया।

''पूरे पाँच सौ रुपए दिए हैं।'' मास्टरजी को रजाई ओढ़ाते हुए उसने फिर स्वत: कहा, ''भले ही बेचारा यहाँ दो-चार घंटे पड़ा रहता।''

सुबह दिन चढ़े वह जगी, तब तक आनंदीलाल मास्टर जा चुका था।

छम्मीजान को खुद शाम से पहले लंबे सफर पर निकलना था। अभी कई काम निपटाने थे। साजिंदों के नाज उठाने थे। स्पेशयल बस का इंतजाम देखना था।

वह अपने ही बोरिए-बिस्तरे बाँधने और संदूक भरने में व्यस्त हो गई। उसे क्या पता था कि उसके जाने के बाद गाँववाले आनंदीलाल मास्टर का जीना हराम कर देंगे। प्रश्न यह था कि छम्मीजान जैसी ढीठ रंडी का विश्वास कौन करता?

6

नवाब सआदत जाँ को यकीन हो गया। छम्मीजान के बेबाक वाक्प्रवाह में बहती सच्चाई की धारा को उन्होंने पहचान लिया था। जो कुछ छम्मीजान ने आनंदीलाल के विषय में बीच बाजार घोषित किया, वह किसी गैर के लिए कहा होता तो शायद वह भरोसा नहीं करते।

शराफत अली से बेमन शतरंज खेलते हुए वह सोच रहे थे—छम्मीजान जैसी घाघ वेश्या के लिए झूठ बोलने का कोई कारण भी तो नहीं था। आनंदीलाल कौन उसका सगा लगता था, जो वह उसकी वकालत करती!

उन्हें तहेदिल अफसोस हुआ। भीतर-ही-भीतर वह पश्चात्ताप की आग में जलने लगे। आखिर उनसे सहा न गया। शतरंज की बिसात उलटकर वह खड़े हो गए। आनंदीलाल से क्षमा माँगना अनिवार्य था।

असद महल से वह पैदल चल पड़े। शराफत अली उनके साथ-साथ चला। उन्हें यह भी होश नहीं था कि वह खुले पाँव थे। थोड़ी देर के लिए वह यह भी भूल चुके थे कि नवाबजादे अदना आदमी की तरह रास्ते पर नहीं निकलते।

घंटे भर बाद वे झील और चिनारबाग की धूल छानकर ठोकरें खाते हुए शांतिवन पहुँचे, तब आनंदीलाल एक चीतल के पाँव में चुभा हुआ काँटा खोज रहा था। नवाब तथा शराफत अली कुछ अंतर पर रुककर मौन दृष्टि से निहारते रहे।

आनंदीलाल ने काँटा निकालकर चीतल को छोड़ा, तभी वे दोनों आगे बढ़कर उसके सामने उपस्थित हुए। उसे औपचारिकता निभाने का अवसर नहीं देकर नवाब दोनों हाथ जोड़कर दीनहीन भाव से बोले, ''हमसे बड़ी भारी भूल हुई है भाई!''

'भाई' शब्द सुनकर शराफत अली को सहज ही अचरज हुआ, मगर आनंदीलाल का चेहरा भावशून्य रहा। उसने वर्षों पहले हुजूर को बड़भैया के रूप में स्वीकार कर उन्हें अपने दिल के आसन पर बिराजा था।

जैसे किसी कामिल सूफी के दर्शन को आए हों, नवाब ने उसके आगे सिर झुकाकर दो-जानू बैठते हुए आगे कहा, ''खुदा हमें कभी भी माफ नहीं करेगा। हम माफी के काबिल भी नहीं हैं, चाहो तो तुम क्षमा कर हम पर उपकार कर दो।''

वह रो पड़े। आनंदीलाल हँस दिया, फिर अपनी मधुर वाणी में उसने केवल इतना कहा, ''हुजूरेवाला की बाँसुरी फिर से सुर-ताल में बजने लगी है।''

नवाब ने गीला चेहरा उठाकर उसके चेहरे में देखा। वह अंतर्ध्यान हो गया। उसके भीतर आज फिर एक बार पारलौकिक राग-रागिनियाँ उठी थीं। अनहद नाद उठा था। शरीर के नौ द्वारों से उठकर वह अंतिम द्वार पर दस्तक दे रहा था। वहीं कहीं तो छलिए का बसेरा था।

आनंदीलाल के आज के हर्षोल्लास का कारण भी विचित्र था। उसे स्कूल मास्टर की नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा था। ''बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले''—गुनगुनाते हुए वह सीढ़ियाँ उतर गया था।

बूढ़ा शराफत अली ये सारे मंजर कैसे भूल सकता था? उसे लगा, सारी घटनाएँ अभी-अभी तो घटी हैं। तब उन पर गर्द की परतें क्यों जमी हैं?

गाजर का हलवा वह कब का खत्म कर चुका था, मगर अब भी उसकी मीठी उँगली, अँगूठा चूसते हुए बालक की तरह, उसके मुँह में थी।

पास बैठी बूढ़ी बेगम ने गौर से देखा, वह हाथ छह उँगलियोंवाला था। उस छठी उँगली ने उसकी कुतूहलवृत्ति की पुन:स्थापना की, ''क्या यह सौभाग्य की निशानी है या दुर्भाग्यकी?''

7

सुबह की भूली बूढ़ी बेगम घर लौटी, तब उसके पाँव हवेली के फाटक में प्रविष्ट होकर ठहर गए। खुले सहन में एक गहरे पीले रंग की मारुति गाड़ी खड़ी थी, जो दिन के अंतिम पहर के झुटपुटे में कुछ अधिक ही आकर्षक लगती थी। ''क्या अकीक दिल्ली से आया होगा?''

थोड़े और कदम बढ़ाकर वह सूखे फौवारेवाले चबूतरे के पास आई, तब उसकी नजर उदास बैठी एक गुड़िया सी बच्ची पर ठहरी। बच्ची की दोनों कुहनियाँ अपने घुटनों पर टिकी थीं, चेहरा हथेलियों में डूबा था। पास में सफेद कबूतर गुटरगूँ करते यों ही घूम-फिर रहे थे।

''अरे, रूही, तू...!'' उसको पहचान लेते हुए बूढ़ी बेगम ने छड़ी के साथ अपने दोनों हाथ बढ़ाए। बच्ची घबराकर चबूतरे के पीछे दौड़ गई। अब बूढ़ी बेगम ने देखा, खाट बिछाए सूट-बूट में बैठ पुस्तक पढ़ते अपने पापा की ओट में बच्ची दुबकी थी। ''आदाब अम्मीजान!'' वह पास आई तो अकीक ने खड़े होते हुए कहा।

''जीते रहो, बेटा।'' बच्ची को बिसरकर वह उसकी तरफ मुड़ी, ''न कोई तार, न कोई खत...''

''बस अचानक ही महीने भर के लिए अमरीका जाने का तय हुआ और...''

''बहू बेगम कहाँ है?'' बेटे को टोकते हुए उसने पूछ लिया।

''वह साथ नहीं आ सकी,'' बातें करते हुए दोनों सायबान की ओर आगे बढ़े, ''अभी काफी काम निपटाने हैं, कई तैयारियाँ करनी हैं।''

रूही बेमन पीछे-पीछे चली। उसका गुलकारीवाला छोटा फ्रॉक पुरानी हवेली के आगे भड़कीला लग रहा था, मगर वह खुद इस रूखे माहौल से ऊबी हुई थी।

''दो-चार रोज रुकोगे तो सही न?'' बेटे के साथ दीवानखाने में कदम रखते हुए बूढ़ी बेगम ने फिर पूछा।

''अब तो दो-चार घंटे भी रुकना मुमकिन नहीं।'' उसने बताया, ''आपके इंतजार में आधा दिन वैसे ही शहीद हो गया है।''

बाकी रहे थोड़े समय में अकीक अपनी माँ से कई सवाल करना चाहता था। मसलन, पहले कभी कब्रिस्तान में वह घंटे भर से अधिक नहीं रुकती थी, अब क्यों वहाँ सारा दिन गुजारती है? मसलन...

''क्या मैं पूछ सकता हूँ अम्मीजान...''

''रूही की फिक्र करने की तुम्हें जरूरत नहीं,'' दीवानखाने के बीच सजाए हुए सोफासेट के पास रुकते हुए बूढ़ी बेगम ने उसे फिर टोका, ''वह हमारे साथ रहेगी।''

उसी क्षण दोनों के पीछे से बगावत की आवाज उठी, ''हम यहाँ हरगिज नहीं रहेंगे।''

बूढ़ी बेगम ने पलटकर उसकी तरफ देखा, ''क्यों भला?''

''यहाँ टीवी है न वीडियो; और पापा कहते हैं कि पूरा महीना हमें इम्तिहान की तैयारी करनी है, ''वह बोली, ''जी बहलाने के लिए कुछ तो चाहिए।''

''तुमने कभी भौंपूवाला बाजा देखा है?'' कहते हुए बूढ़ी बेगम एक कोने में मरमर की तिपाई पर रखे हुए पुराने ग्रामोफोन की दिशा में आगे बढ़ने लगी कि बेटे के शब्द उसे सुनाई दिए—

''क्या मैं एक सवाल पूछने की गुस्ताखी कर सकता हूँ अम्मीजान?''

धीरे-धीरे मुड़कर उसने बेटे को देखा। 'बिलकुल अपने बाप जैसा लगता है।'' कुछ फर्क था तो वह केवल इतना कि बेटे का चेहरा साफ था। न उसने दाढ़ी रखने की जरूरत महसूस की थी, न अपने अब्बा हुजूर की तरह मूँछें रखने की।

यों तो मुगल शहंशाह अकबर ने अपनी दाढ़ी मुँडवाकर, दाढ़ी रखने के रिवाज को अमीर-उमराओं के हल्कों से लगभग समाप्त कर दिया था, मगर मर्द की मूँछें तो होनी ही चाहिए न? 'ये साफ चेहरे अपने होते हुए भी कैसे बेगाने लगते हैं!''

''क्या आपकी गुजर माहवार पाँच हजार रुपयों में नहीं होती कि...'' इतना कहकर अकीक रुक गया। उसे कुछ आगे कहने की आवश्यकता नहीं थी। समझदारों के लिए इशारा काफी होता है।

उत्तर में बूढ़ी बेगम ने खाने की मेज पर प्लेटें सजा रही चंदा को कनखियों से देखा, फिर बेटे से कहा, ''चंद घंटों में तुम्हें सारे गाँव की खबरें मिल गईं।''

''जब मैंने सुना कि आप दस-दस पैसों में थैलियाँ सिलने का काम लेती हैं, मारे शर्म के मेरा सिर झुक गया,'' कहते हुए वह करीब के एक सोफे पर बैठ गया, ''जरा तो सोचिए अम्मीजान, गाँववाले क्या सोचते होंगे? बेटा अपनी बूढ़ी माँ का दफीना भी...''

''बूढ़ा कौन है जी?'' बूढ़ी बेगम तड़पकर बोल उठी। फिर ग्रामोफोन की दिशा में जाने के बजाय उसके सामने आ तनकर खड़ी हो गई, ''हम तो बूढ़े नहीं हैं।''

ऐसे मुँहतोड़ जवाब की अकीक को आशा नहीं थी। इस पर तुर्रा यह कि बूढ़ी माँ ने यौवनकाल और वृद्धावस्था पर ऐसा चरखा चलाया कि वह हतप्रभ रह गया।

''हाँ...हमारी उमर जरूर बढ़ी है,'' अंत में बूढ़ी बेगम ने टुकड़ा जोड़ा, ''बाल भी पके हैं, पर हमारा दिल आज भी बचपन का है, समझे?''

संध्या कब की मटमैली हो चुकी थी। हवेली की रोशनियों के साथ आज दीपस्तंभ भी जल उठे। दीवानखाना जश्ने-चिरागाँ की तरह दपदप हो उठा। आज वर्षों बाद असद महल अँगड़ाई लेकर जगा था।

खाने की मेज पर से गरम पकवानों की महक उठ रही थी। भोजन ठंडा हो रहा था। रूही के साथ दोनों चंद कदम बढ़ाकर कुरसियों पर जम गए।

''मौजूद मियाँ से मिल आए, बेटा?'' बूढ़ी बेगम ने बिस्मिल्लाह करते हुए पूछा।

''यहाँ आने से पहले मैंने हरिहरन की दुकान पर गाड़ी रोकी थी।'' चपाती के साथ कोरमा लेते हुए वह बेटी की ओर मुड़ा, ''क्यों, रोकी थी न?''

रूही अब भी इस विचार से खिन्न थी कि मम्मी-पापा अमरीका में मौज मनाएँगे और वह इस उजाड़ गाँव में किताब-कापियों में सिर खपाते हुए घुट-घुटकर दम लेगी। मुँह बिचकाकर वह चुपचाप खाना खाती रही।

अकीक ने माँ को संबोधित कर आगे कहा, ''सोचा था, पहले उनके दर्शन करूँगा, उसके बाद ही इस दहलीज पर कदम रखूँगा। मगर रमता जोगी का कहाँ ठौर-ठिकाना? हरिहरन ने बताया कि वह पिछले महीने से ही गायब हैं।''

''उसके घर होकर उसकी बीवी से ही दुआ-सलाम कर आते।''

''हाँ...सो तो है।''

यह तकियाकलाम आनंदीलाल का था। बचपन से अकीक की जबान पर चढ़ गया था। तब वह इसका इस्तेमाल

बतौर मजाक के करता था। वयस्क होने पर उसे लगा, यह वाक्य सचमुच चमत्कारी है, क्योंकि इसके कई शेड हैं।

जो विषय उसने 'सो तो है' कहकर गोल करना चाहा, उसी का रूही ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए बखुशी प्रयोग किया, ''दादी माँ, लौटते समय हम अंकल के घर होकर ही दिल्ली जाएँगे।''

''तुमने अभी हमारा भौंपूवाला बाजा कहाँ सुना है, बेटी?'' आज अपने हाथों बनाए हुए गाजर के हलवे की प्लेट उसकी तरफ खिसकाते हुए वह खड़ी हो गई।

स्नानागार में कुल्ला कर वह तौलिए से हाथ-मुँह पोंछती हुई फिर ग्रामोफोन की दिशा में आगे बढ़ी। बीच राह में उसने तौलिया उछालकर ऐसे फेंका जैसे वह गेंद हो। भोजन समाप्त कर अभी-अभी सोफे पर बैठा अकीक एकटक देखता रहा। यह अंदाज, यह चाल, यह ठसक किसी वृद्धा की नहीं थी। बूढ़ी माँ को ग्रामोफोन का हत्था घुमाकर रेकार्ड रखते हुए निहार वह सोच रहा था।

अंतिम दस वर्षों में वह बीसियों बार गाँव आया होगा, मगर हर बार उसने अपनी माँ को परकटे परिंदे की भाँति विरक्त पाया था। क्या कुछ नहीं किया था उसने माँ का जी बहलाने के लिए? अपना लाखों रुपयों का कारोबार समेटकर वापस गाँव बसाने की उसने धमकी भी दी थी, मगर परिणाम वही आया, जो विधाता को मंजूर था।

तब क्या आनंदीलाल का कोई नुस्खा काम कर गया होगा? यह शायद संभव नहीं था। बूढ़ी बेगम को अंतर्मुखी होने से रोकने के लिए उसने कभी कोई प्रयास नहीं किया। अकीक ने उससे गुजारिश की, तब वह मुसकराकर बोला था, ''छोटे मियाँ जब सुख अनित्य है तो दु:ख कैसे नित्य हो सकता है? धीरज रखो, समय आने पर यह भी टल जाएगा।''

अकीक की विचार-शृंखला को रोकते हुए ग्रामोफोन से बेगम अख्तर की सुरीली आवाज उभरी : **अभी तो मैं जवान हूँ...**

घूमते हुए रेकार्ड को रूही विस्मय से देख रही थी। ग्रामोफोन का ऐसा नायाब मॉडल उसने सात वर्ष के अपने नन्हे जीवन में पहले कभी नहीं देखा था, पापा के शो-रूम में भी नहीं, जहाँ सदियों पुरानी चीजें बिकने को आती थीं।

हौले से उसका हाथ थाम बूढ़ी बेगम गोल-गोल घूमने लगी। प्रारंभ में वह कतराकर दादी के साथ घिसटती रही, मगर जैसे-जैसे गजल रंग जमाती गई, उसमें भी प्राण आते गए। दोनों को साथ-साथ नाचते देख अकीक के लिए यह कहना कठिन था कि कौन किससे अधिक ठुमके लगा रहा है, माँ या बेटी?

खाने की मेज साफ कर मालकिन को घूर-घूरकर देखते हुए चंदा वहाँ से गुजरी तो दोनों ने मिलकर उसे घेर लिया। ना-ना करती हुई चंदा भी आखिर नाच-गान में शरीक होगई।

अकीक ने देखा कि यहाँ से छिटक जाने का इससे बढ़िया अवसर दोबारा शायद ही मिले। दबे पाँव वह सोफे पर से खड़ा हुआ और तीनों को एक-दूसरे के हाथ थामे घूमते, नाचते, किलकारियाँ मारते छोड़ बाहर निकल गया।

8

रास्ता सुनसान था।

अकीक ने कार शुरू कर दौड़ाते हुए एक नजर पलटकर देखा। गाँव के माथे पर टीके की तरह सजी हवेली प्रकाश में जगमगा रही थी। आनंदीलाल का व्यक्तित्व भी तो पुरनूर था। उसका सादा रहन-सहन, उसकी दैवी-वाणी, वह भुलाए नहीं भूलनेवाला था।

बचपन के अपने 'अंकल' का विचार आते ही उसके भीतर वे सारी चिड़ियाँ पंख फड़फड़ाकर एक साथ चहचहाने लगीं, जो उसके जीवन को अर्थपूर्ण बनाने के लिए आनंदीलाल डाकिया अकसर हवेली पर ले आया करता था।

उसकी ड्योढ़ी पर माथा टेके बिना दिल्ली लौट जाना उचित नहीं था। अम्मीजान ने सही फरमाया था। औपचारिकता की खातिर ही सही, आनंदीलाल की घरवाली से दुआ-सलाम करना उसका कर्तव्य था।

हैडलाइट के प्रकाश में उसने गाड़ी झील की दिशा में मोड़ दी। गाँव गलानियाँ से दरकिनार आनंदीलाल का मकान वहीं था।

डामर की सड़क छोड़कर अँधेरे, ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर सँभलकर गाड़ी चलाते हुए अकीक के मस्तिष्क में एक प्रश्न उठा, क्या आनंदीलाल की बीवी को धर्मपत्नी का दरजा दिया जा सकता है?

उत्तर उतना सरल नहीं था।

आनंदीलाल एक वर्ष की सजा काट बस्ती में लौटा था। उसकी छवि पर फिर एक बार कालिमा छा गई थी। वह भिखमंगों की जमात में मंदिर के बाहर बैठता था। यहाँ उसे आसानी से दो-जून रोटी खाने को मिल जाती थी; मगर उसकी बेचैन आत्मा को कब करार था?

मंदिर में आते-जाते भक्तों में से चुन-चुनकर अपना निशाना बना वह लताड़ता। ''श्रीमान, ब्रह्मांड का कर्ता मनुष्य के गंदे हाथों और काले धन से बने हुए मंदिरों में नहीं रहता। उसने तो स्वयं अपने पवित्र हाथों से एक सुंदर शिवाला तुम्हारे भीतर बनाया है। वह ठाठ से वहीं विराजता है। यहाँ क्यों अपना समय फिजूल में जाया करते हो?''

भक्तों ने तंग आकर उसे वहाँ से खदेड़ा तो वह जाकर शाह पीर की दरगाह पर बैठने लगा। यहाँ भी उसके भीतर का कीड़ा बराबर कुलबुलाता रहा।

एक जईफ फकीर ने उसकी नादानी पर तरस खाकर उसे अनुभव की बात बताई; ''मियाँ मौजूद, जिस शाख पर बैठे हो, उसी को काट दोगे तो भूखों मरोगे। जरा सोचो तो, यहाँ से भी तुम धक्के मारकर निकाले गए तब कहाँ जाओगे?''

राजनीतिक माहौल वैसे ही मैला था। इंदिरा गांधी चुनाव हार चुकी थीं। मोरारजी देसाई जनता दल के बल पर भारत के प्रधानमंत्री बने थे और इस नई सरकार में अभी से दरारें नजर आने लगी थीं।

दिल्ली की उठा-पटक से आनंदीलाल को तनिक भी मतलब नहीं था, मगर बड़े मियाँ की नसीहत का सीधा संबंध पापी पेट से था। आनंदीलाल सोचने लगा, नवाब सआदत जाँ अब नहीं रहे, शराफत अली का रौब लगभग समाप्त हो चुका था। उसका कारोबार उसके दोनों बेटों ने हथिया लिया था। बदलते समय के साथ वे दावत की देगों में मिलावट करना भी सीख गए थे। इसी कारण बाप-बेटों में निरंतर तनाव बना रहता था। अब ले-देकर आनंदीलाल के हितैषियों में केवल एक छम्मीजान शेष थी। उसे ही चढ़ावा लेकर आती देख वह फुरती से खड़ा हो गया।

छम्मीजान के हाथ में नक्काशी की हुई चाँदी की एक थाली थी। उसमें फूलों के बजाय सौ-सौ के नोटों की चादर, मलमल के पारदर्शक रूमाल तले तह-दर-तह ढकी पड़ी थी। यह देख आनंदीलाल दानिश फकीर की सीख उसी पल भूल गया।

''अरी मूरख!'' छम्मीजान का रास्ता रोक उसने व्याकुल होकर कहा, ''जिसके पास रत्नों के भंडार भरे हों, उस पर इन कागज के टुकड़ों का चढ़ावा चढ़ाने से तेरा कुछ भला नहीं होने का। उसे तो कुछ ऐसी सौगात दे, जो उसके पास नहीं हो।''

आनंदीलाल के लिए उसके मन में आदर भाव था, मगर आनंदीलाल के सिर पर इस वक्त जो दीवानगी सवार

थी, उसे देख वह सिहर उठी। आखिर वह कहना क्या चाहता?

''यह तो बताओ मियाँ,'' संयत होते हुए उसने प्रश्न उछाला, ''तोहफा क्या हो सकता है, जो शेखे-हर-दो आलम के पास भी नहीं हो?''

''मुफलिसी।''

छम्मीजान उसी राग-वैराग्य के चक्कर में उलझ गई, जिससे वह बचना चाहती थी। संसार की जिन लज्जतों से उसे चिपकाव था, वे ही पलस्तर की तरह उखड़ती हुई दिखाई दीं। वह भौचक हो गई। एक हाथ पर टिकी चाँदी की थाली धरी-की-धरी रह गई। वह चंद पलों के लिए दरगाह के सहन में रुकी थी और उसके पाँव फर्श में गड़ गए।

''मुफलिसी कहाँ से लाऊँ?'' अंतत वह घबराकर बोली, ''मैं क्या करूँ?''

''यह तेरा रूप मिट्टी की ढेरी है। एक रोज उसे माटी में मिल जाना है,'' आनंदीलाल कह रहा था, ''मगर उसमें प्रकाशमान ज्योति सनातन है। उसे पहचान छमिया, अपने मन को जान।''

''कैसे जानूँ?''

''धर्म की राह पकड़।''

तुरंत छम्मीजान ने उसकी कलाई थाम ली। वह जितनी सयानी थी, उससे कई गुना चालाक सिद्ध हुई। मार्ग के बजाय मार्गदर्शक को ही अपने पल्लू में बाँध लेने का उसका निर्णय सचमुच प्रशंसनीय था।

गौरतलब यह भी है, यदि आनंदीलाल चाहता तो उस खूबसूरत बला को वहीं छोड़ भाग निकल सकता था। न केवल उसने अपनी कलाई नहीं छुड़ाई, बल्कि छम्मीजान ने उस नाकारा का हाथ थाम, उसमें जो आस्था प्रकट की थी, उसके लिए तहेदिल से उसका आभार भी माना।

उसी छम्मीजान ने अपने कोठे के साथ सारा साज-सामान बेचकर आनंदीलाल की सुविधा के लिए झील पर उसकी पसंद का एक घर बनवाया। वहीं दोनों साथ-साथ रहने भी लगे; मगर उन दोनों का रिश्ता वह नहीं था, जो गाँववाले सोचते थे।

छम्मीजान आनंदीलाल की पत्नी थी, न दाश्ता। बहन थी, न माँ। मित्र थी, न दासी। वह शिष्या बनकर आई थी और अपने गुरु के चरणों की धूलि बन बाकी जीवन बिताना चाहती थी।

त्रासदी यह थी कि उसके शब्दों पर आज भी किसी को यकीन नहीं था। जब आनंदीलाल स्वयं सरेआम घोषणा करता फिरे कि गुरु वह होता है, जो अनहद शब्द की कमाई करता हुआ खुद शब्दरूप हो जाए, वह किसी का गुरु-फुरु नहीं है, तब बस्तीवालों का भी क्या दोष? बिना शादी के कोई जोड़ा पापाचार करता हो, यह विचार वे भद्र लोग भला कैसे बरदाश्त कर सकते थे?

जैसे ही पाप नापित की अगुवानी में नया षड्यंत्र रचा जाने लगा, छम्मीजान को बू लग गई। वह काँप उठी।

आनंदीलाल ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, ''कल पंडित या काजी, दोनों में से किसी भी एक उल्लू के पट्ठे को पकड़ लाना, हम ब्याह कर लेंगे।''

छम्मीजान के दिल में शहनाइयाँ बज उठीं, आँखों में एक साथ कई इंद्रधनुष उतर आए। इस जन्म में किसी की अर्धांगिनी बनने की उसे उम्मीद नहीं थी।

यदि उसने कुलीन डेरेदार तवायफों के नीति-नियमों पर चल, किसी एक खूसट की सरपरस्ती स्वीकार कर ली होती, तब बात और थी, मगर केवल एक मर्द से आदमखोर को कब सुख मिला है?

एक पतुरिया ने उसे सलाह दी, ''शाह पीर की दरगाह पर इक्कीस जुमा जाकर 'अल-मोसव्वेरो' की माला जप,

वह तेरी मुराद जरूर पूरी करेंगे।'' हुआ यह कि इक्कीस के बजाय पहले ही जुमा के रोज उसने आनंदीलाल का हाथ थामा और खुद ही हैरान रह गई।

मुरलीवाले ने सच ही कहा था, जिसके पास रत्नों के भंडार भरे हों, उसे वही देना चाहिए, जो उसके पास नहीं हो। राहे-फना में सबकुछ लुटाकर अपनी मुफलिसी की चादर चढ़ाने का उसने केवल निश्चय ही किया था और उसके जीवन में पहला चमत्कार हुआ। आनंदीलाल ने अपना हाथ नहीं छुड़ाया।

विवाह की स्वीकृति छम्मीजान के जीवन में दूसरा चमत्कार था। वह संजीदगी से सोच रही थी, कहीं गाँववालों के दबाव में आकर आनंदीलाल ने यह फैसला तो नहीं लिया होगा?

वह नहीं चाहती थी कि उसके अपने कारण गुरुदेव की साधना में कोई खलल पहुँचे, सो कहा, ''अगर...आपकी मरजी नहीं हो तो...''

''मरजी!'' आनंदीलाल बोला, ''कैसी मरजी? ये सब तो काजी रिश्ते हैं। अग्नि के सात फेरे लेने से या काजी के आगे तीन बार 'कबूल है' कहने से कहीं मन का मेल हुआ है? और...जब दो इनसानों के दिल वैसे ही मिले हुए हों, उन्हें झूठे सबूत की क्या जरूरत?''

असली इल्लत अब आन खड़ी हुई। उसके धर्म के विषय में आज भी कुछ निश्चित नहीं था। हिंदू उसे आनंदीलाल के नाम से पहचानते थे और मुसलमान उसे मियाँ मौजूद कहकर पुकारते थे। अब उसका विवाह किस रीति-रिवाज के तहत हो?

भक्त कबीर की अंत्येष्टि के विवाद का स्मरण कराती यह तनातनी अभी गाँव में बनी हुई थी कि पुरोहित माखनलाल ने जरी के किनारवाली श्वेत धोती का पल्लू झाड़ अपनी उदारता का प्रमाण दिया, ''भले ही आनंदीलाल मसजिद में निकाह पढ़ ले। एक हिंदू के कम होने से हिंदुत्व खतरे में नहीं आता।'' क्या हिंदू क्या मुसलमान—सभी अचंभे में पड़ गए।

स्याह चोगेवाले जनाब रब्बानी 'मुल्ला' भी कच्ची गोलियों से नहीं खेले थे। उन्होंने तुरंत दुश्मन की चाल भाँप ली। यदि एक काफिर वेश्या से विवाह नहीं कर सकता, तब अल्लाह का नेक बंदा, मुसलमान कैसे कर सकता है?

मामला और पेचीदा हो गया।

दोनों तंबुओं के अगुवाओं के आनंदीलाल से हाथ धो डालने पर समस्या का कोई समाधान नहीं निकला और वास्तविकता को नकारा भी नहीं जा सकता था। तभी परम कृपालु परमात्मा ने अपनी दया और मेहर की गागर छलकाई और प्रधान बस-अड्डे पर उतरे यात्रियों में ईसाई धर्मगुरु, फादर परेरा दिखाई दिए।

मसला हल हो गया। फादर परेरा ने बेलौस आनंदीलाल और छम्मीजान का इन्सटंट ब्याह बस-अड्डे पर ही निपटाया और दो को ईसाई धर्म में शामिल कर 'गॉड इन हेवन' की गोद में उन्होंने अपना स्थान आरक्षित कर लिया।

आनंदीलाल 'मौजूद' और छम्मीजान बनारसवाली पंजीकृत मियाँ-बीवी थे और फिर भी नहीं थे। किसी भी संप्रदाय का ठप्पा लगने से वीतरागी बंसीवाले के जीवन में कोई परिवर्तन थोड़े ही आनेवाला था?

अलबत्ता, छम्मीजान उस मुहर के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकी। अंततः वह एक स्त्री ही थी।

9

दूर से ही गहरी पीली मारुति की हेडलाइट के तीव्र प्रकाश में आनंदीलाल का गारे चूने का घर चमक उठा। उसकी

छत पर बैठा तोतों का झुंड एक साथ पंख फड़फड़ाकर उड़ा। छम्मीजान दौड़कर खिड़की पर आई। उसकी आँखें चौंधिया गईं। पलकें झपकाते हुए वह कल्पना नहीं कर सकी कि रात के इस वक्त कौन अतिथि आया होगा?

घर के सामने आकर गाड़ी रुकी और अकीक बाहर निकला, तभी वह फानूस की रोशनी में उसे पहचान सकी। अकीक ने साड़ी के पल्लू में ढके उसके माथे पर सुहागिन का लेबल देखा, जो गर्व से ऐलान कर रहा था कि छम्मीजान अब बिकाऊ नहीं है।

''तसलीम, भाई साहब।'' हाथ में धरे फानूस को झुकाकर वह आदाब करते हुए मृदु स्वर में बोली, ''तशरीफ लाइए...'' और उसका पल्लू ढलक गया। एक देवी का पवित्र रूप अकीक के सामने आ गया। केश में गेंदे के ताजा फूल थे। उसके चेहरे के तेज को देख ऐसा लगता था, जैसे उसने अभी-अभी नारियल का तेल रगड़ जूड़ा बाँधा हो। पाँवों में हलदी लगी थी।

अकीक जानता था, आनंदीलाल घर पर तो क्या, गाँव में भी नहीं था। अत: उसका इरादा तुलसी के पौधे के गिर्द ही औपचारिकता निभाकर वापस लौट जाने का था।

अब उसे खयाल आया। आँगन में गोबर का छिड़काव शायद सवेरे किया गया होगा, मगर फर्श पर बनी रँगोली ताजा थी। शाम को घर-आँगन सजाने का यह कैसा रिवाज?

''सब खैरियत से तो है न?'' अपने भीतर की चिहुँक को अधिक महत्त्व न देते हुए उसने पूछा।

''आपकी दुआ है।''

''कोई परेशानी तो नहीं?''

''क्या आपने चौखट पार नहीं करने की कसम ली है?''

वह भौंचक्का रह गया। 'गुरु का थोड़ा मुलम्मा शिष्या पर भी चढ़ा है...' वरना छम्मीजान इतनी जल्दी उसके मन की थाह कैसे पा लेती?

आखिर उसने कहा, ''उनकी गैर-मौजूदगी में भीतर आना मुझे मुनासिब नहीं लगता।''

''और वह मौजूद हों, तब?''

वह फँस गया। यहाँ से दिल्ली का सफर कार द्वारा करीब-करीब आठ घंटे का था। सुबह से पहले किसी तरह घर पहुँचकर उसे दिन भर दौड़-धूप करनी थी। फिर आधी रात को सपत्नी हवाई अड्डे पहुँच अमरीका जाने के लिए विमान पकड़ना था।

यही झंझट क्या कम था कि गाँव गलानियाँ आते हुए मार्ग में उसने एक सनसनीखेज खबर सुनी थी—इराकी सैन्य ने अचानक धावा बोल कुवैत को हड़प लिया था। भारत और खाड़ी के मुल्कों के बीच का सारा कारोबार गड़बड़ानेवाला था। पेट्रोल के दाम आकाश छूनेवाले थे। इस समय दिल्ली में कैसी खलबली मची होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है।

तुरंत निर्णय लेते हुए उसने जूते बाहर उतारकर बैठक में कदम रखा। भीतर की सादगी और शीतलता उसे छू गई। बिना गचकारी के भी मकान इतने सुंदर बन सकते हैं, यह उसके लिए अचरज की बात थी। इस घर में वह पहली बार नहीं आया था, मगर जब भी वह आया, उसने तन-मन की शांति प्राप्त की थी।

साज-सज्जा के नाम पर यहाँ दीवार से दीवार तक केवल दरियाँ बिछी हुई थीं। खिड़की-तले तोशक-तकिए थे। इनके अतिरिक्त बैठक में कुछ दूसरा था, तो वह थी—अपना पोपला मुँह दिखाकर हँसते हुए एक शिशु की जानदार तसवीर, जो सामने की दीवार पर टँगी थी।

''कब लौटे वह?'' गावतकिए के सहारे गद्दे पर बैठते हुए अकीक ने आनंदीलाल के संदर्भ में पूछा।

''आपके आने से घंटा भर पहले।'' छम्मीजान ने बताया। थोड़ा अंतर रखकर वह अभी खड़ी ही थी, ''और दाढ़ी बनाकर डुबकी लगाने झील पर चले गए। अभी आते ही होंगे।''

आँगन की ताजा रँगोली और छम्मीजान के शृंगार का राज अब उसकी समझ में आया। उसने समय गुजारने के इरादे से यों ही पूछा, ''तुम्हें कोई एतराज नहीं होता?''

''कैसा एतराज?''

''शादी के बाद भी वह घर से जो गायब रहते हैं।''

वह मंद-मंद मुसकराई, ''यह उनका हक है, जीवन है, गंगा के पवित्र जल की तरह गुनगुनाते हुए बहता चला जा रहा है।'' कहते हुए उसने दो कदम पीछे हटकर शिशु की तसवीर के नीचे दीवार की टेक ली।

''नदी पर बाँध बाँधकर उसके प्रवाह को रोकना मुमकिन तो है,' कुछ सोचकर वह आगे बोली, ''मगर उसका नतीजा कभी भी अच्छा नहीं होता।''

''वह कैसे?''

''नदी अपने गीत भूलकर खामोश हो जाती है। मैं नहीं चाहती कि उनके स्वच्छंद जीवन में मैं बाधा बनूँ, उनके पाँवों में जंजीर डालूँ। मैंने पिंजरे के पंछी से नहीं, खुले आकाश की चिड़िया से ब्याह किया है।''

अकीक को फिर एहसास हुआ, उसके स्वर में चूड़ियों की खनक, चेहरे पर परम सुख की छाया थी। मानो केवल आनंदीलाल की सेवा करने से ही उसका जीवन सफल हो गया हो।

''क्या आप सोच सकते हैं, भाई साहब...'' थोड़े मौन क्षणों में टहलाव कर वह फिर बोली, ''महीने भर बाद आज लौटकर उन्होंने मुझसे क्या कहा होगा?''

आले में रखे हुए फानूस के प्रकाश में छाया सी खड़ी हुई छम्मीजान के चेहरे को अकीक एकटक देखता रहा। उसके यौवन, उसकी चंचलता में ठहराव आने के कारण उसका रूप भी निर्मल होकर निखर आया था।

अकीक को खामोश देख उसने ही बताया—

घर आकर आनंदीलाल एक भी शब्द बिना बोले उससे लिपट गया। फिर पागल राँझा की तरह उस पर चुंबनों की बौछार बरसा दी। छम्मीजान के ललाट से प्रारंभ कर बोसे लेते हुए वह पाँव तक उतर गया था।

जिस पति ने दस वर्षों के विवाहित जीवन में पहले कभी उसे छुआ तक नहीं हो, उसको जुनून में आकर अचानक प्यार लुटाते हुए देख छम्मीजान का सारा बदन झंकृत होउठा।

''छमिया...'' उसके पाँव की उँगलियों का अंतिम चुम्मा लेकर सजदे से उठते हुए आनंदीलाल ने मुसकराकर कहा, ''आज छलिया मेरी गिरफ्त में आ गया।''

वह नहीं समझी, ''कौन...?''

''अरे वही, जिसका चित्र बनाने के लिए मैं पहाड़ियों में भटक रहा था। उससे रूबरू हुआ तो उसने बताया...'' आनंदीलाल ने एक गहरी साँस लेकर अपनी मृदु वाणी में दमखम पैदा किया। फिर मानो परमात्मा की आवाज की नकल कर रहा हो, ऐसे बोला, ''मियाँ आनंदीलाल मौजूद, यदि तुमने अपनी छमिया की आँखों में एक बार भी झाँककर देखा होता तो तुम्हें घर की चहारदीवारी में ही हमारे दर्शन हो जाते।''

इस बार छम्मीजान को नजाकत से अपनी बाँहों में भरकर उसने रुँधे हुए स्वर में बताया, ''आज मेरी वर्षों की तपस्या पूर्ण हुई, मेरी आत्मा तृप्त हुई है। छमिया, अब मैं तुझे छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।''

तब छम्मीजान की आँखों से हर्षाश्रु की धाराएँ बह निकली थीं, उसके सारे पाप आँसुओं में धुल गए थे। मन नवजात शिशु सा निर्मल हो गया था।

महीने भर का मैल झील में उतारकर, कमर पर केवल अँगोछा बाँधे आनंदीलाल लौटा और अकीक को गद्दे पर बैठा देख वह भी उसके सामने बैठ गया।

आनंदीलाल का चेहरा करीब से देख एक अनबुझी पहेली ने उसे फिर एक बार सोचने पर विवश कर दिया। अम्मीजान साठ वर्ष की हुई थीं। आनंदीलाल उनसे पाँच वर्ष बड़ा था। फिर भी वृद्धावस्था उसे छू नहीं सकी थी।

अपने यौवनकाल में जब वह बूढ़ी बेगम को माँ कहकर संबोधित करता, बड़ा विचित्र लगता था। बाल अकीक सोचता, आयु में माँ छोटी और बेटा बड़ा, ऐसा भी कहीं होता है?

अब माँ जर्जर हो गई थी, मगर आनंदीलाल में अधिक फर्क नहीं आया था। उसकी आयु बढ़ी थी, सिर के बाल मुलायम हुए थे, पके नहीं थे। न ही उसका एक भी दाँत अपनी जगह से हिला था।

कम-से-कम चेहरे पर झुर्रियाँ तो दिखाई देतीं? कमर का बाँस तो झुकता? उमर के तकाजे यही तो होते हैं कि आँखों की बीनाई भी फीकी पड़ जाए। आनंदीलाल के नेत्रों की चमक भी यथावत् थी। अब बूढ़ी बेगम और आनंदीलाल सचमुच माँ-बेटे लगते थे।

''नन्हे मियाँ', सामने की दीवार की टेक लिये खड़ी पत्नी की ओर इशारा कर आनंदीलाल ने व्यंग्य में कहा, ''मैं यकीन के साथ कह सकता हूँ कि तुम्हारा स्वागत जलपान से नहीं हुआ होगा।''

छम्मीजान लजाकर अंत:पुर में जाने लगी तो अकीक ने उसे रोका, ''तकल्लुफ की जरूरत नहीं। हवेली पर डिनर लेकर मैं सीधा यहाँ आया हूँ और...''

बाकी जुमला पूरा करने के लिए वह आनंदीलाल की तरफ मुड़ा, ''आपकी बनाई हुई खुदा की तसवीर को देखकर फौरन बिदा भी लूँगा—कहाँ है वह कैनवस?''

''उसे तो मैं पहाड़ियों में फेंक आया।''

आनंदीलाल का उत्तर सुनकर उसे भरोसा नहीं हुआ। जो शख्स दिन-रात परमात्मा की खोज में भूखा-प्यासा, मारा-मारा भटकता रहा हो और एक रोज वह सचमुच उससे रू-ब-रू हो जाए, तब बिना शबीह बनाए कैसे लौट सकता है?

''मगर क्यों?''

''जब तक उसके दर्शन नहीं हुए थे,'' आनंदीलाल ने बताया, ''मेरे मन में उसके कई खाके थे। कभी श्रीराम का चेहरा सामने आता था तो कभी हजरत मुहम्मद का, कभी ईसामसीह की नूरानी सूरत दिखाई देती थी तो कभी गुरु नानकजी की। मैं उलझ गया था। यह तय नहीं कर पा रहा था कि छलिया का कौन सा रूप असली है।''

अकीक के साथ छम्मीजान भी एक ध्यान होकर सुन रही थी। वह निरंतर बोले जा रहा था, ''जब उसने दर्शन दिए तो सारे खाके अपने आप घुलकर एक अलौकिक ज्योति में तब्दील हो गए। मैं भी कहाँ मैं रहा था? अगर यों कहूँ कि द्रष्टा मैं था और दृश्य भी मैं, तो वह अधिक सही होगा। अब तुम ही बताओ नन्हे मियाँ, मैं क्या खाक उसका चित्र बनाता?''

स्वानुभव का किस्सा समाप्त करते हुए उसने बताया, ''होश सँभालने पर मैंने कैनवस को चीर-फाड़कर चित्रकारी के सारे सामान के साथ उसे वादी में दफन कर दिया।''

विस्मय से अकीक उसे देखता रहा।

''दादी!'' रात में सोते समय रूही ने कहा, ''पापा बड़े सयाने हैं। हमारे पास से ऐसे गायब हुए जैसे गधे के सिर से सींग।''

रात के ग्यारह बज चुके थे। बूढ़ी बेगम अपनी पोती को बतियाने के लिए अवसर देना नहीं चाहती थी और एक सयानी वह थी, जो हर बार नया विषय छेड़कर उसे उत्तर देने पर विवश करती थी।

करवट बदलकर उसने पीठ दिखा दी, तब रूही ने अपने दोनों हाथों का इस्तेमाल कर उसे जबरन अपनी तरफ घुमाया।

''दा...दी!''

वह खीजकर बोली, ''क्या है?''

''हमें नींद नहीं आती।''

''तब अपना बस्ता खोलकर पढ़ाई करो।'' आवेश में उसने कह तो दिया, मगर बच्ची की बात में अधिक नहीं तो थोड़ी सच्चाई जरूर थी। बूढ़ी बेगम सोच में पड़ गई। फिर कहा, ''नींद तो हमें भी नहीं आती। बताओ क्या करें?''

''बताऊँ?''

''बोलो, बोलो।''

''एक कहानी आप हमें सुनाइए। ''रूही ने अपने दिमाग को कसकर सुझाव दिया, ''हमें नींद आ जाएगी। फिर एक कहानी हम आपको सुनाएँगे। आपको भी नींद आ जाएगी।''

''वाह! खूब!!'' वह चहकी, ''मगर हाँ...पहले तुम सुनाओगी।''

''आप भी पापा से कुछ कम नहीं हैं, दादी,'' रूही ने टहोका देते हुए कहा, ''पहले हम कहानी सुनाएँ और आपकी नाक बजने लगी तब हमें कौन सुनाएगा?''

''परियाँ सुनाएँगी।'' लेटे-लेटे ही उसकी नाक से अपनी नाक मिलाकर रगड़ते हुए बूढ़ी बेगम बोली, ''चाँद-तारे सुनाएँगे, क्या सुनाएँगे?''

''लोरी।''

''चंदा है तू, मेरा सूरज है तू...'' वह शुरू हो गई, ''ओ मेरी आँखों का तारा है तू...'' गाते-गाते दोनों की आँखें कब लग गईं, इसका पता किसी को नहीं चला।

बूढ़ी बेगम प्रसन्न थी। पोती के आने से उसकी सबसे बड़ी समस्या हल हो गई थी। दो जुमेरातों के बीच बरसाती कीड़े से रेंगते छह दिन (और रातें भी) किसी तरह काटे नहीं कटते थे, वे अब हवा से बातें करते हुए उड़ने लगे।

उसे खुद ताज्जुब हुआ। अभी कल ही तो जुमेरात थी और आज फिर...कम्माल!

''अरी चंदा!'' खाने की मेज पर से नाश्ते का सामान इकट्ठा करती नौकरानी से उसने कहा, ''जरा कैलेंडर देखो तो, आज कौन सा दिन है?''

चंदा भड़क उठी। अब तक वह तीन बार उसे भी कैलेंडर दिखा चुकी थी, सो बमककर बोली, ''मेरे पास वक्त नहीं है।'' और एक ट्रे में जूठी प्यालियाँ तथा केतली उठाकर बावरचीखाने की ओर चल दी।

चाय-नाश्ता कब का खत्म हो चुका था, किंतु सवेरे-सवेरे कोई फातिहा पढ़ने कब्रिस्तान थोड़े ही जाता है! अभी तो सुबह के आठ भी नहीं हुए थे।

रूही खाने की मेज पर एक फोटो-अलबम बिछा उसके पन्ने उलट रही थी। बूढ़ी बेगम उसके पास बैठी थी। ''यह हैं तुम्हारे दादा मरहूम।'' एक तसवीर पर उँगली रखकर वह बोली।

रूही ने तपाक से कहा, ''हम बताएँ दादी, यह तसवीर कहाँ खींची गई होगी?''

''कहाँ?''

''फैंसी-ड्रेस कांपिटिशन में, ठीक?''

बूढ़ी बेगम हँस दी, ''पगली, निमाजामा और चौड़े पायजामे पर चौगोशिया टोपी पहनना, यह तो उनका लिबास था।'' अंत में गौरवान्वित होते हुए उसने एक टुकड़ा जोड़ा, ''नवाब साहब थे वह, दस गाँवों के।''

जी भरकर रो लेने के बाद भी जैसे पलकों में कहीं अटका हुआ अश्क का एकाध कतरा उभरकर बह जाता है, वैसे ही समय के साथ तेजी से मिटती हुई शौहर की यादों की अंतिम बूँद छलछला आई। थोड़े क्षणों के लिए वह अतीत में फिसल गई।

रियासतें कब की खत्म हो चुकी थीं। ऐयाश जीवन के कारण दिग्गज राजा-महाराजा, अमीर-उमरा महलों से उखड़कर रास्ते पर आ गए थे। नवाब सआदत जाँ की बात और थी। उन्हें न मुजरों का मोह था, न शराब का व्यसन। अगर कोई उनमें आदत थी तो वह शतरंज खेलने की। उन्हें कोई शौक था तो वह शेरो-सुखन का। बाकी समय जमींदारी और दीनी अध्ययन में गुजर जाता था।

स्वतंत्रता से पहले, जवानी के उन दिनों भी, जब नवाबजादों का किसी तवायफ से रिश्ता नहीं होना उनकी शानो-शौकत में कमी मानी जाती थी, वह नेकी की राह पर अड़े रहे थे। उनका कलेजा उनके जिस्म की तरह फौलाद का था।

किसी ने सोचा तक नहीं था कि ऐसे हृष्टपुष्ट इनसान के नख में भी कोई रोग हो सकता है और गाँव के हकीम ने ''खोदा छेद और निकाला हाथी।''

नवाब की गरदन पर उठ आई एक मामूली गाँठ का इलाज करते हुए उसने कैंसर की खोज की थी। इससे वह खुद तो हड़बड़ा गया, हवेली में भी सन्नाटा फैल गया।

तब अकीक दिल्ली में था। अपनी शादी के बाद उसने वहीं एक पंचतारा होटल में प्राचीन चित्रों तथा शिल्पों का शो-रूम खोला था। उजड़े नवाबों, राजा-महाराजाओं के वारिसों से उसे नक्काशी किए हुए चाँदी के सरौते, सोने के हुस्नदान, मरमर के प्याले, हीरे-मोती जड़े जेवरात, कुरान शरीफ की हस्तलिखित प्रतियाँ आदि कई अप्राप्य चीजें भी मिल जाती थीं।

जब उसे अब्बाहुजूर के रोग के विषय में सूचना मिली, वह तुरंत अपनी गाड़ी दौड़ाता हुआ गाँव गलानियाँ आ पहुँचा और उसी शाम नवाब को लेकर दिल्ली भी लौट आया। यहाँ उसने गाँव के नीमहकीम का शुबहा दूर करने के लिए बड़े-से-बड़े डॉक्टरों से जाँच करवाई।

नवाब के एक्स-रे तथा मल-मूत्र-रक्त की अन्य जाँच-रपट देखकर न केवल कैंसर का शक यकीन में बदल गया, बल्कि डॉक्टरों ने उनकी बाकी आयु पर भी चौकड़ी लगा दी। वह तीन महीनों से अधिक नहीं जीनेवाले थे।

बेगम शबाना पर वज्राघात हुआ। उमर के साठवें वर्ष में जो बदन सुंदरता, शिष्टता, गरिमा से कदम बढ़ाता हुआ प्रविष्ट हुआ था, वह मानो आँखें झपकते ही उजाड़ हो गया। लंबे केशों के कई तार श्वेत हो गए। असली बुढ़ापे की यह इब्तिदा थी।

एक हफ्ता दिल्ली में गुजारकर नवाब वापस गाँव लौट आए। उनकी इच्छा थी कि इस महारोग के रहस्य को गुप्त ही रखा जाए, क्योंकि अभी भी कैंसर के बाहरी लक्षण दिखाई नहीं दिए थे। सेहतमंदों की तरह वह बराबर घूम-फिर सकते थे।

ऐसे ही दो महीने मृत्यु की प्रतीक्षा में असद महल के दरो-दीवार को घूरते हुए शांति से गुजर गए; मगर तीसरा महीना फनिधर साँप बनकर फुफकार मारने लगा। गाँव में एक नया झमेला खड़ा हुआ था।

कनैयालाल नाई की कुँवारी बेटी बिजली, जिसने अपनी बाईस वर्ष की आयु में सिर्फ एक ही गलत काम किया था (गाँव के शोहदों से इश्क फरमाना), गर्भवती थी। मगर उस गर्भ के लिए जिम्मेदार कौन था, यह अटकल का विषय था। (वैसे चौपाल पर जितने दिमाग थे, उतने संस्करण भी थे।)

अंतत: बिजली से ही कोख के बच्चे के बाप का नाम पूछा गया। वह चुप्पी साध गई। काफी मनुहार के बाद जब नापित की पहलवान बीवी ने उसकी जमकर मरम्मत की, उसने आनंदीलाल की तरफ अँगुली उठा दी।

कनैयालाल अचंभित रह गया। रात में उसने शांति से बेटी के इकरार को तोल- मोलकर देखा, तब परत-दर-परत उसे सच्चाई दिखाई दी।

जो निठल्ला कुलियों और रिक्शा चालकों के गले में बाँह डालकर चरस-गाँजे के दम लगाता हो, शराब के नशे में धुत्त होकर बीच बाजार शोर-शराबा करता हो, छम्मीजान जैसी दबंग रंडी के कोठे पर रँगरलियाँ मनाता हो, वह उसकी अपनी भोली-भाली, निर्दोष बच्ची को फुसलाकर उसकी इज्जत भी लूट सकता है!

आनंदीलाल के खिलाफ उसने कचहरी में मुकदमा दायर कर दिया। पंखलगी यह खबर बस्ती से होती हुई हवेली की खिड़की पर आ बैठी। नवाब यह आघात झेल न सके। उन्होंने कल्पना में भी सोचा नहीं था कि ऐसा घिनौना आरोप भी कभी आनंदीलाल पर लग सकता है। वह शय्या से लग गए।

मुकदमे का मुद्दा था—बलात्कार, मगर उसे साबित करने के लिए यह सिद्ध करना अति आवश्यक था कि आनंदीलाल चरित्रहीन है।

कनैयालाल के वकील ने सबसे पहले यही किया। अपने गवाहों द्वारा उसने कुरेद-कुरेदकर आनंदीलाल के वे सारे कारनामे उगलवाए, ताकि न्यायाधीश के आगे प्रतिवादी की छवि शराबी, कबाबी, रंडीबाज के रूप में उभरकर आए।

फिर उसने आनंदीलाल को धर्मशत्रु, नास्तिक और पाखंडी महात्मा स्थापित करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया। काला चोगा और हरी पगड़ीवाले गवाह जनाब रब्बानी 'मुल्ला' से पूछा गया, ''क्या आनंदीलाल गाँव गलानियाँ के नेक मुसलमान बंदों के एक जत्थे को हज के लिए जाते हुए जबरन रोककर यह नहीं बोला था कि काबा शरीफ के पवित्र पत्थर को धकेलकर अरबी समुद्र में दफ्न कर दिया जाए?''

उन्होंने फौरन 'हाँ' कर दी; मगर यह नहीं बताया कि आनंदीलाल ने किस संदर्भ में कहा था। ''ताकि काबा को भूलकर मुसलमान बंदे परवरदिगार की तरफ तवज्जो दें और हर वर्ष हज में खर्च होते करोड़ों रुपयों का अपनी कौम की उन्नति के लिए इस्तेमाल करें।''

पंडित माखनलाल से पूछा गया, ''क्या रामनवमी के रोज मंदिर में घुस, भक्तों की भीड़ को संबोधित कर आनंदीलाल ने यह ऐलान नहीं किया था कि इस धरती पर के सारे मंदिरों पर बुलडोजर फिरा दिए जाएँ?''

यह भी अर्धसत्य था; मगर उन्होंने 'हाँ जी' की टुनटुनी बजा दी। आनंदीलाल ने आगे कहा था, ''परमात्मा ने अपना शानदार भवन हर एक भक्त के भीतर इसलिए बनाया है कि वह पहले से जान गया था, मनुष्यों के गंदे हाथों द्वारा निर्मित मंदिर कलियुग में संपन्नता के साधन बनकर चंद ठेकेदारों की निजी जायदाद बन जाएँगे।''

अपने बचाव के लिए आनंदीलाल ने कोई वकील नियुक्त नहीं किया था। न्यायाधीश ने स्वयं उसे गवाहों के बयानों का खंडन करने का मौका दिया, ''क्या आप अपनी सफाई में कुछ कहना चाहोगे?''

उसने उबासी लेते हुए पूछा, ''कैसी सफाई हुजूर?''

''वादी ने आप पर इल्जाम लगाया है कि उसकी कोख में जो बच्चा पल रहा है, उसके पिता आप हैं।''

आनंदीलाल ने मजमे में बैठे कनैयालाल नाई को देखा, उसकी बगल में आँखें झुकाए बैठी बिजली पर एक नजर

डाली और पुन: न्यायाधीश पर दृष्टि टिकाकर मुसकराते हुए कहा, ''हाँ...सो तो है।''

एक वर्ष की कड़ी सजा भुगतने के लिए वह पाषाण दीवारों के पीछे गायब हो गया। उसी रोज नवाब की रूह कब्ज हो गई। केवल चार दिन अधिक जीकर वह चल बसे। जो रिश्ता बरगद की छाँव में शुरू हुआ था, वह असद महल के साए में खत्म हो गया।

11

बेगम शबाना की बालसुलभ चंचलता, कुतूहल, शोखियों का स्थान उदासीनता ने ले लिया। वह अपने अभिशप्त एकाकीपन में खो गई। तन-मन को भेदती कसक-भरी पीड़ा और सदैव साथ निभाती स्मृतियों के अतिरिक्त जीवन में अब बचा ही क्या था? पोती के साथ अलबम की तसवीरें देखती हुई बूढ़ी बेगम की आँखों में मौत का वह दिन यथावत् बसा था। उसे आज भी याद था, नवाब के इंतकाल से एक रोज पहले उसने मलेकुल मौत को शयनागार में कदम रखते हुए लबेदम महसूस किया था।

सूर्यास्त हो चुका था। नवाब के सिरहाने बैठ वह तस्बीह के दाने घुमाती हुई मन-ही-मन रब को याद कर रही थी, अपने सुहाग की रक्षा के लिए प्रार्थना कर रही थी। तभी नवाब ने आँखें खोल इशारे से उसे पास आने को कहा। वह झुकी तो उसका चेहरा अपने हाथों में सूरजमुखी की भाँति लेते हुए नवाब डूबी आवाज में बोले, ''सुबू बेगम, अपने हाथों बनी शीरमाल हमें नहीं खिलाओगी?''

उस शाम बेगम शबाना ने अपना सारा प्यार गूँधकर ऐसी नरम रोटियाँ बनाई थीं कि उसका टुकड़ा मुँह में रखते ही बरफी की तरह पिघलने लगे।

नवाब ने शोरबे के साथ पहला कौर लिया और महीन स्वर में 'सुब्हानअल्लाह' कहते हुए उनकी आँखों में एक अनोखी चमक उठी। बेगम के लिए वह आखिरी चमक थी, नवाब के लिए वह आखिरी रिजक था। दो टुकड़े और तोड़ने के बाद मानो उन्होंने दम ही तोड़ दिया हो, ऐसे वह फिर आँखें मूँदकर अपने में खो गए।

बेगम जान गई। अनागत से सिहरकर वह अपने में सिमट गई। फिर अपनी बड़ी- बड़ी, डरी-डरी आँखों से दीवारों को देखा, छत को निहारा। कहाँ छिपा था, निगोड़ा मौत का फरिश्ता? उससे रिश्ता घनिष्ठ था, फिर भी सामने आने से क्यों कतरा रहा था?

''हम कोख में थे, तब तुमने हमारी अम्मीजान को दबोच लिया। हम दुलहन बने और चंद सालों में तुमने हमारे अब्बू को उठा लिया। जाने कितने हमारे अजीजों को तुमने माटी में दबाया है। क्या अब भी तुम्हारा जी नहीं भरा, जो हमारे सआदत को हमसे जुदा करने के लिए चले आए?''

अपने से ही उलझती हुई वह देर रात गए तक दुहाई देती रही, फिर उसे झपकी लग गई।

नवाब ने आँखें खोलीं। धीरे-धीरे शय्या से उतरकर उन्होंने दीवारों को घूरते हुए शयनागार का एक गश्त लगाया। अंत में वह अलमारी के पास आकर थोड़ा रुके, भीतर से एक कफन निकाला और उसे निहारते हुए फिर लेट गए।

सन् 1954 में डाकिया बनने से पहले आनंदीलाल ने बड़ी लगन से अपने हाथों बनाया हुआ यह कफन उन्हें सौंपा था। वर्षों बीत चुके थे इस बीच, किंतु वह कफन आज भी जैसा-का-तैसा चमकीला था। बेल-बूटों के साथ उसपर काढ़ी हुई तितलियाँ और कीट जीवंत लगते थे। जैसे अभी उड़कर शयनागार की छत पर जा बैठेंगे।

यह आनंदीलाल की कला का करिश्मा था, मगर वह खुद क्या था?

आज जब मौत हवेली के किवाड़ पर दस्तक दे रही थी, नवाब दुविधा के चौराहे पर खड़े थे। जब भी उन्होंने

आनंदीलाल के विषय में कोई फैसला लिया, उससे उलट ही सिद्ध हुआ था।

आनंदीलाल को सही मानकर वह पछताए थे, गलत जानकर पछताए थे। ऐसी ढुलमुल मनोस्थिति में अब क्या माना जाए? क्या आनंदीलाल किसी की बेटी पर बलात्कार कर सकता है?

सारी बस्ती उसपर थूक रही थी। कानून ने भी अपना फैसला सुना दिया था। फिर भी दिल क्यों कचोट रहा था? आखिर सच क्या था? झूठ क्या था?

आनंदीलाल का विश्वास था कि सच और झूठ, खुदा और शैतान, धूप और छाँव एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आप किसी एक को चुन नहीं सकते। स्वीकारना हो तो दोनों को स्वीकारो, पर समझदारी इसी में है कि दोनों को नकारा जाए, क्योंकि यह संसार माया है।

रात में सच दिखाई देनेवाला स्वप्न सुबह होने पर झूठा लगता है। कभी दिन का झूठ स्वप्न में तब्दील होकर फिर सच बन जाता है। कहाँ है यथार्थ? क्या है मिथ्या? क्या है भ्रम? क्या आनंदीलाल के स्वप्न में आनेवाला मानसर का राजहंस छलावा है या राजहंस के स्वप्न में दिखाई देनेवाला आनंदीलाल? अँधेरे आकाश में से बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई दी। बिजली कड़कने लगी। नवाब की बगल में सोई बेगम शबाना खिड़कियाँ बंद करने के लिए थोड़े मिनटों के लिए उठी, तब एक कोने में खड़ी आदमकद जर्मन घड़ी ने रात के ग्यारह के मधुर डंके बजाए।

बेगम ने वापस सोने से पहले देखा तो नवाब कफन को अपने सीने से लगाए हुए मौन लेटे थे। उनकी पलकें गिरी हुई थीं, मगर उनका दिमाग निरंतर चल रहा था।

अगर इस जहान नें सच, सच नहीं है, तब खुदा क्या है? इनसान क्या है? यह जीवन क्या है?

बिगड़े मौसम के कहर से अनभिज्ञ जैसे-जैसे वे सोचते जा रहे थे, अपने ही तर्कों के जंगल में उलझते जा रहे थे। घबराहट बढ़ रही थी। उनकी जीवनज्योति बुझने से पहले जैसे लोक-परलोक के सारे गूढ़ रहस्य जान लेना चाहती थी। काश कि इस समय आनंदीलाल यहाँ मौजूद होता!

हवाएँ बिफरी हुई प्रेतात्माओं की तरह चीखने-चिल्लाने लगीं। सन्नाटा गूँजने लगा। फिर एक बार बिजली कड़की। उसकी चमक में चंद पलों के लिए शयनागार जगमगा उठा। तभी उन्हें दैवी-वाणी सुनाई दी—''अलीफ लाम मीम।''

यह कुरान की वाणी थी, खुदा का कलाम था। वह जागकर उठ बैठे। झरोखे में बाँसुरी लिये खड़ा आनंदीलाल मुसकराकर कह रहा था, ''यकीनन मैं तुममें विराजमान हूँ।''

वह हैरत से उसे देखते हुए बिस्तर से उतरे, कफन को दुशाले की तरह कंधों पर डाला और उसके पास आकर पूछा, ''तुम यहाँ कैसे?''

''हुजूर से मैं जुदा ही कब था?''

''मगर...मगर तुम्हें तो जेल में होना चाहिए।''

''जो अजन्मा हो, उसे कौन कैद कर सकता है?''

नवाब एकटक उसके सामने देखते रहे। कंधों तक लंबे उसके बाल हवा में लहरा रहे थे, वस्त्र फहरा रहे थे।

''तुम...तुम यह कहना चाहते हो कि तुम पैदा ही नहीं हुए?''

''सही फरमाया सरकार ने।''

''तब हमारे सामने कौन खड़ा है?''

''एक जिस्म, जिसे जमाना आनंदीलाल 'मौजूद' के नाम से पहचानता है'', स्पष्टता करते हुए उसने आगे कहा, ''मगर न मैं जिस्म हूँ न आप। ये तो हमारी आत्मा के लिबास हैं। इन्हें पहनकर हम हवाखोरी के लिए गाँव

गलानियाँ पधारे हैं। एक रोज तो सभी को ये लबादे त्यागकर निज घर जाना है।''

नवाब की समझ में काफी कुछ आया, मगर अब भी उन्हें पूर्ण संतोष नहीं हुआ था। ''जब सारा संसार छलावा हो...'' मिनट-भर बाद विचारकर वे बोले, ''तब आत्मा सच कैसे हो सकती है?''

''क्योंकि संसार अनित्य है। आत्मा सनातन है। अनंत, प्रकाशमय, आनंदस्वरूप है।'' आनंदीलाल ने बताया, ''उसे आप ब्रह्मसत्य कहें, या चेतना, यही हुजूरेवाला हैं, यही मैं भी हूँ।''

बाहर और भीतर, दोनों तूफान शांत हो रहे थे। नवाब के मन में से धुंध छँट रही थी। मृत्यु की घबराहट कब की जा चुकी थी।

क्या जरूरत है इन अँगड़ाइयों की
तेरी दावत है सिर आँखों पे मौत।

अब वह स्पष्टता से सोच सकते थे, स्पष्टता से सबकुछ देख सकते थे। भोर हो रही थी। आकाश रंग बदल रहा था। बेगम सोई पड़ी थी। आनंदीलाल के साथ वह अभी भी झरोखे में खड़े थे। धीरे-धीरे वहीं झूले पर बैठ गए, मगर उनकी दृष्टि आकाश पर टिकी रही।

आनंदीलाल थोड़े डग भरकर बेगम के पास आया, उसके चरण छुए और लौटकर नवाब के पास आते हुए कहा, ''हुजूर से अलविदा कहने आया था। अब आज्ञा लूँगा। खुदा हाफिज...''

नई सुबह काले बादलों को फोड़कर निकल रही थी। नींद की चट्टान पर रात भर बैठे स्वप्न अपने पंख सँवारकर परियों के देश जाने लगे थे। गाँव गलानियाँ अँगड़ाई लेकर जग रहा था। बासंती बयार में हलकी-हलकी महक थी, सूर्य की कोमल किरणों में चाँदी की चमक। दृश्य अद्‌भुत था, अलौकिक था और साधारण भी। भेद केवल दृष्टि का था। नवाब के प्रज्ञाचक्षु उघड़ गए थे।

बेगम की नींद खुली तो सबसे पहले उसने अपना चेहरा तिरछा कर बगल में देखा। नवाब की जगह खाली थी। किसी अनजानी दहशत के कारण छाती में हौल सा पड़ा। वह तुरंत उठ बैठी।

नवाब अभी भी दुशाले की मानिंद कंधों पर कफन डाले झरोखे के झूले पर बैठे थे। बिलकुल वैसे ही जैसे बेगम ने अपने सपने में देखा था।

क्या उसने जो ख्वाब देखा था, वह सच था? क्या रात में सचमुच आनंदीलाल यहाँ आया था? क्या उसने बेगम के चरण भी छुए थे? यदि यह सच है तो...इससे आगे वह सोचना नहीं चाहती थी। अपने ख्वाब का अंत वह जानती थी।

लिहाफ फेंक वह झरोखे में दौड़ आई। नवाब के होंठ मधुर मुसकान बिखेर रहे थे, उनकी आँखें भी खुली थीं, अभी भी जैसे वह कुदरत के करिश्मे सी सुहानी सुबह को हैरत से देख रहे थे; किंतु उनका शरीर बेजान था। हमसफर जा चुका था। पीछे छूट गया था—ढका हुआ एक जिस्म, कशीदाकारी किया हुआ कफन और कागज का एक पुरजा, जिस पर मतले के साथ चंद शेरे मौत पर लिखे हुए थे।

12

स्वप्न क्या था?

सच्चाई क्या थी?

बूढ़ी बेगम के अंतरतम में भी ऐसी कई गुत्थियाँ दबी पड़ी थीं, जो कभी-कभी अंकुरित होकर डोलने लगती थीं।

मसलन जेल से अपने शिष्ट व्यवहार के कारण आनंदीलाल समय से चंद महीनों पहले रिहा हुआ था। उसके पश्चात् उसने छम्मीजान से शादी कर उसे धर्मपत्नी का दरजा किसलिए दिया?

वैसे गाँववाले चाहते थे कि आनंदीलाल सजा काटकर लौट आए, तब बिजली का व्याह उसी से कर दिया जाए। कनैयालाल बाट का रोड़ा बन गया। पिनकी, शराबी, बदतर आनंदीलाल को अपनी ताँबई पुत्री देने के बजाय वह अपनी औलाद को उस्तरे से हलाक कर देना बेहतर समझता था।

खटराग यह था कि कुल-कलंकिनी बिजली से विवाह कौन करेगा? सबके आश्चर्य के बीच, दो वर्ष पहले सहारनपुर से रोजगार की तलाश में गाँव गलानियाँ आए बिरजू नामक एक रिक्शा चालक ने आगे आकर बिजली का हाथ थाम लिया।

कनैयालाल के कंधों पर से हिमालय हट गया। एक झंझट समाप्त हुआ। उसका स्थान दूसरे सिरदर्द ने लिया। बिजली की कोख में पल रहे मासूम बच्चे का क्या किया जाए?

जिस रोज ईसाई पादरी फादर परेरा ने बस के अड्डे पर छम्मीजान बनारसवाली तथा आनंदीलाल 'मौजूद' को शादीशुदा घोषित किया, उसी शाम बिजली ने चाँद के नमूने से सुंदर एक बच्चे को जन्म दिया।

बिरजू उदारतापूर्वक उसे भी स्वीकारने को राजी था, मगर उसके लिए न कनैयालाल ने इजाजत दी, न बिरादरीवालों ने। अत: यह तय किया गया कि बच्चे को उसके बाप की देहरी पर पटक दिया जाए।

आनंदीलाल की 'इन्सटंट-मैरिज' के दूसरे दिन पाप नापित ने माँ की गोद से जैसे ही बच्चे को उठाया, बिजली के साथ बिरजू का भी कलेजा मुँह को आ गया। दोनों उमड़-घुमड़कर हाहाकार कर उठे।

''बापू...'' बिजली कलपते हुए बोली, ''कोई कसाई भी अपने घर ताजा जन्मे बच्चे को माँ से जुदा नहीं करता। रहम...रहम करो। मुझ पर न सही, इस नन्ही सी जान पर, वरना यह तड़प-तड़पकर मर जाएगा।''

कनैयालाल दया-धरम से कोसों परे था। उसने वही किया, जो अपने मन में ठानी थी। बच्चे को वह आनंदीलाल के माथे थोप आया।

नवजात शिशु को देख आनंदीलाल भावविभोर हो उठा। ''छमिया...'' गद्‌गद होकर अपनी घरवाली से वह बोला, ''उसकी कृपा अपरंपार है। मुझे उसने तुम जैसी कथक की माहिर तेजस्विनी नर्तकी दी, तो माखनचोर सा प्यारा-प्यारा यह कोमल बच्चा भी दिया।''

बच्चे का नाम उसने मेघा रखा।

गरज यह कि आनंदीलाल ने विवाह नहीं किया होता, तो बच्चे की परवरिश कौन करता? क्या यह घटना इंगित नहीं करती है कि आनंदीलाल शिवनेत्र रखता है? अपनी तीसरी आँख से देख उसने इसी कारण ब्याह रचाया था, ताकि वह बाल-हत्या के पाप से उबर जाए। या यों कहे कि यह सारा प्रपंच परमात्मा का है। उसमें दखलअंदाजी करनेवाला आनंदीलाल कौन होता है?

सच्चाई चाहे जो भी हो, बच्चे का असली बाप बिरजू और माँ बिजली अपने प्रेम की सौगात को दिन दुगुना, रात चौगुना बढ़ते देख मन मसोसकर रह जाते थे।

आखिर वे कैसे अपने दुलारे का अलगाव सहते? कब तक मेघा को भाँति-भाँति की चिड़ियों से और रंग-बिरंगे फूलों में खेलता हुआ देख दूर-दूर से ठंडी आहें भरते? बिजली को दूसरा बच्चा भी तो नहीं ठहर रहा था।

उसका ताँबई बदन झुलसकर धुआँसा होने लगा। बिरजू का दम घुटने लगा। जब तक दैत्यावतार नाई जिंदा था, उन दोनों में इतना साहस नहीं था कि वे अपने दिल के रिसते घाव दिखाकर उसे दुहाई दे सकें। अत: कनैयालाल की मृत्यु के लिए मंदिरों-दरगाहों में माथा रगड़ना अनिवार्य हो गया।

मेघा ठीक आठ साल का हुआ, तब एक पागल कुत्ते ने तरस खाकर उन दोनों की प्रार्थना सुनी और कब्र में एक पाँव लटकाए बैठे कनैयालाल के दूसरे पाँव को ऐसा काट खाया कि न हकीम लुकमान काम आया न धनवंतरि। पगलाकर वह पूरे एक पखवाड़े कुत्ते की तरह भौंकता रहा। फिर भौंकते-भौंकते ही उसने देह त्यागदी।

बिरजू और बिजली नारकीय यंत्रणा से मुक्त हो गए। बिरादरीवालों की परवाह नहीं थी। बापू के बारहवें के लड्डू खाकर शीघ्र ही वे दोनों आनंदीलाल के घर पहुँचे और सीधे ही उसके चरणों में जा गिरे। दोनों की आँखों के साथ चेहरे भी भीग गए। वे फूट-फूटकर रो रहे थे।

हैरत से आनंदीलाल कभी छम्मीजान की तरफ देखता था, कभी भीतर के कमरे से दौड़ आए मेघा को, तो कभी अपने पाँवों को अश्रुधारा से पावन कर रहे जोड़े को।

प्रायश्चित्त लगभग पूर्ण हो जाने पर बिजली ने अपने मरद के साथ उठते हुए दोनों हाथ जोड़कर आनंदीलाल से कहा, ''काका, आप साक्षात् भगवान् हैं। आप जानते थे कि बच्चा आपका नहीं, मेरे मरद का लहू है, फिर भी आपने अब तक एक शब्द भी नहीं कहा। कचहरी में आपका मजाक उड़ाया गया, आपको जलील किया गया, लेकिन आप मुसकराते रहे। अब मैं किस मुँह से कहूँ कि...''

उसकी सुई अटकी तो बिरजू शुरू हुआ, ''हम चाहते हैं कि हमारा बेटा हमारे साथ रहे, वह मुझे बापू और अपनी माँ को माँ कहकर पुकारे, हम उसे सीने से लगाकर दुलार दें।''

''हाँ...सो तो है।'' कहते हुए आनंदीलाल ने बालक को एक बोसा लेकर उसके माँ-बाप को सौंप दिया।

छम्मीजान का दिल धक्क से रह गया। भले ही वह मेघा की असली माँ नहीं थी, बच्चे को स्तनपान कराकर उसी ने बड़ा किया था, ज्वरग्रस्त होने पर रातों के जागरण उसी ने किए थे, मल-मूत्र उसी ने उठाए थे। उसे आँगन में किलकारियाँ मारकर तितलियों के पीछे दौड़ते हुए देख छम्मीजान उसे अपनी कोख का जना मानने की भूल कर बैठी थी। उसके लिए बच्चे के बिछुड़ने से बढ़कर संताप दूसरा क्या हो सकता है?

''पगली,'' पत्नी के चेहरे के उतार-चढ़ाव ध्यान से देखते हुए आनंदीलाल ने कहा, ''इस नश्वर संसार के रिश्तों को तू भी सच मान बैठी? भला यहाँ कौन किसका होता है? कम-से-कम मेघा को शांति से जाते हुए देख तूने इतनी सीख तो ली होती?''

वह फफक-फफककर रो पड़ी। दीवार पर सजी मेघा की तसवीर अपना पोपला मुँह दिखाकर हँस रही थी।

समय के गलियारों में से लुढ़कते हुए जाना क्या मुनासिब था? बूढ़ी बेगम अब दिन-ब-दिन अंतर्मुखी से बहिर्मुखी होती जा रही थी। यादों के सावन-भादों अब पीछे छूट गए थे। स्मृतियों से उसने कन्नी काट ली थी। बस, फोटो अलबम देखते हुए उसे यों ही कतरा-भर याद आ गई।

अलबम का पन्ना पलटकर रूही ने एक तसवीर दिखाते हुए पूछा, ''यह कौन है, दादी?''

''तुम्हारे पापा।''

उसे सचमुच अचरज हुआ। ''क्या कहती हैं आप! इनकी पैंट कहाँ है?''

''यह फोटो तब खींची गई थी, जब वह तुमसे भी दो साल छोटे थे...'' बूढ़ी बेगम ने उसे समझाते हुए कहा, ''और यह है तुम्हारी अम्मी। उनके साथ सेहरे में छिपे बैठे जनाब हैं...'

रूही ने बीच ही में कहा, ''शादी की तसवीर है न?''

''बिलकुल सही।''

''मगर इन दोनों के पीछे खड़े होकर बाँसुरी कौन बजा रहा है यह?''

''आनंदीलाल।''

''हिंदू?''
''लो, हम उन्हें अभी मुसलमान बनाए देते हैं।'' बूढ़ी बेगम हँसकर बोली, ''उनका दूसरा नाम है मियाँ मौजूद।''
''यह कैसे हो सकता है?''
''वैसे ही, जैसे खुदा को कोई ईश्वर कहता है तो कोई अल्लाह।''

अपने मम्मी-पापा के निकाह की एक और तसवीर को गौर से देखते हुए रूही को चुहल सूझी। तसवीर में काफी भीड़ थी। भरा-पूरा कुनबा उसमें दिखाई दे रहा था। ''इसमें तो मेरे अलावा सभी हैं।'' अफसोस जताने का ढोंग करते हुए उसने मासूमियत से पूछा, ''तब मैं कहाँ थी, दादी?''
''आसमान पर।''
''वहाँ से मुझे कौन ले आया?''
''हूरों की रानी तुम्हें अपनी गोद में उठाकर यहाँ छोड़ गई थी।''
''सब झूठ,'' वह बोली, ''सरासर झूठ। बच्चे तो माँ के पेट से पैदा होते हैं।''

बूढ़ी बेगम चारों खाने चित्त हो गई।

❑

बहता पानी : तीन

1

आदमकद जर्मन घड़ी ने सुबह के नौ के डंके बजाए। चंदा रूही को तैयार होने में मदद करने लगी। बूढ़ी बेगम आज कब की गले में मलमल का दुपट्टा डाले, ढीले कुरते और तंग पायजामे में थोड़ा-थोड़ा मुसकाती हुई बैठी थी। 'यह मरी चंदा मेरा गुलाबी दुपट्टा देख जरूर जल-भुनकर राख हो गई होगी।'

''दादी!'' रूही ने लहँगा-चोली में सजकर आते हुए पूछा, ''आप मुझे आज कहाँ ले चलेंगी?''

सिली हुई थैलियों की पोटली कंधे पर डाल उसने बताया, ''सबसे पहले हम बाजार चलेंगे।''

पंद्रह मिनटों बाद वे दोनों जुम्मन दरजी की दुकान पर खड़ी थीं। जुम्मन ने थैलियों की गिनती कर कलमदान के दराज में हाथ डालते हुए व्यंग्य किया, ''बेगम साहिबा, अगर थैलियाँ सिलने का कोई मुकाबिला होता तो पहला इनाम आप ही जीततीं। यह लो, दो सौ बीस थैलियों के बीस रुपए।''

रूही को कुछ शुबहा हुआ। तुरंत अपनी उँगलियों पर हिसाब जोड़ वह जुम्मन पर कड़की, ''और चाचा, बेईमानी का कोई कांपिटिशन होता तो पहला इनाम आप ही को मिलता।''

''एँ...!''

''दस थैलियों का एक रुपया,'' बच्ची ने बताया, ''इस हिसाब से दो सौ बीस थैलियों के बाईस रुपए होते हैं—निकालो दो रुपए और।''

बूढ़ी बेगम खिलखिलाकर हँस दी। जुम्मन दरजी ऐसा तिलमिलाया कि उसका जी चाहा, उन दोनों के गाल पर एक-एक चाँटा रसीद कर दे। मन-ही-मन कुढ़ते हुए उसने फिर दराज में हाथ डाला और दो रुपए का एक नोट निकाल बच्ची के हाथ में थमा दिया।

पोती का हाथ थाम आगे बढ़ती हुई बूढ़ी बेगम सीधी फूलवाले की दुकान के थले पर आ पहुँची। हरिहरन ने उसे फातिहा का सामान देते हुए कहा, ''आनंदीलाल वापस आ गए हैं।''

''आए होंगे जी, हमसे क्या मतलब?''

बूढ़ी बेगम का रूखा उत्तर सुनकर वह सचमुच दंग रह गया। अभी पिछले हफ्ते तक बूढ़ी बेगम आनंदीलाल से मिलने के लिए कुलबुला रही थी और अचानक उसे क्या हो गया?

वह सोच नहीं सका तो उसने फिर कहा, ''क्या आपको उनसे नहीं मिलना है?''

हवा में लहराते हुए अपने गुलाबी दुपट्टे को गले में एक ओर घुमाव देते हुए बूढ़ी बेगम ने उलटा ही उत्तर दिया, ''जो हमसे मिलना चाहे, हमारी ड्योढ़ी पर आ सकता है।''

अपनी पोती के साथ ठस्से से जा रही नवाब की बेवा को हरिहरन एकटक देखता रहा।

वे दोनों कब्रिस्तान में दाखिल हुई और बूढ़ी बेगम के आगे बढ़ते हुए कदम जाने-अनजाने थम गए। प्रवेशद्वार की फुलवारी में रखी हुई दोनों बेंच खाली थीं। मियाँ शराफत अली आज नहीं आए होंगे? कहीं बीमार तो नहीं हो गए?

चाँदी की कमानीवाली अपनी ऐनक के शीशों के पार देखती हुई उसकी आशंकित आँखें यहाँ-वहाँ भटककर एक

कब्र पर ठहर गईं। वह कब्र वृद्ध की बीवी की थी। आज वह सिर टेककर वहीं बैठा था।

बूढ़ी बेगम को उसके शोक में खलल पहुँचाना उचित नहीं लगा। वैसे गम में शामिल होने के लिए अभी पूरा दिन फैला पड़ा था।

''यह है तुम्हारे दादा हुजूर की कब्र।'' रूही के साथ पलाश के पेड़ तले आते हुए उसने कहा। यह ध्वनि कुछ अंतर पर बैठे वृद्ध ने भी सुनी। धीरे-धीरे उसका सिर उठा और धुँधली आँखें आवाज के स्रोत की दिशा टटोलने लगीं।

बूढ़ी बेगम ने नवाब की कब्र पर फूलों की चादर चढ़ा दी थी। ''तुम्हें फातिहा पढ़ना आता है, बेटी?'' धूपबत्तियाँ जलाते हुए उसने पोती से पूछा।

रूही ने कहा, ''आप सिखाएँगी तो हम सीख जाएँगे।''

''शाबाश!'' दुआ के लिए दोनों हाथ उठाते हुए वह बोली। बच्ची ने दादी को देख अदब से अपने हाथ उठाए।

''अब बोलो-बिस्मिल्लाह''

''बिस्मिल्लाह...''

''हिर रहमानिर रहीम।''

बूढ़ी बेगम थोड़ी ऊँची आवाज में बोल रही थी। बच्ची उतनी ही गंभीरता से उसकी नकल कर रही थी।

वृद्ध दोनों को गौर से देख रहा था कि उसे अपने बेटे याद आए, बहुएँ याद आईं, नाती-पोते भी याद हो आए। वह उन सबके साथ रहता था, फिर भी उनमें से कोई उसके साथ नहीं था।

बूढ़ी बेगम ने फातिहा खत्म करते हुए कहा, ''आमीन''। बच्ची ने वह आखिरी शब्द दोहराया और दादी की हरकतों पर उचटती सी नजर डालते हुए अपने दोनों हाथ मुँह पर फेरे।

''जीती रहो बेटी।''

जैसे ही वे दोनों फाटक की तरफ जाने के लिए मुड़ीं, वृद्ध को उन्होंने सामने खड़ा पाया।

''अब न वो वक्त रहा है, न वो दीन।'' वह जैसे अपने से कह रहा था, ''ये कैसी बदनसीबी है कि हमारी कब्र पर हमारे बच्चे फातिहा भी नहीं पढ़ सकते।''

बूढ़ी बेगम ने उसकी तुर्शी और तलखी को नजरअंदाज कर गमकते हुए पूछा, ''क्या जनाब आज अपनी बेगम की कब्र पर फातिहा पढ़ रहे थे?''

''फातिहा तो मरहूमों की रूह के सवाब के लिए पढ़ी जाती है। वह...वह तो जिंदा है।'' वृद्ध ने बताया, ''मैं जब यहाँ आया तो उसने मुझे पुकारकर कहा—क्यों मियाँ, अपनी छड़ी कहाँ छोड़ आए?''

''हम भी आपसे यही पूछनेवाले थे जी।'' कहते हुए रूही का एक हाथ थामकर वह आगे बढ़ी। वृद्ध ने उसका दूसरा हाथ थामा।

''दादी!'' वह चहकी, ''आज आप भी तो अपनी लकड़ी भूल आई हैं।''

''हम भूले नहीं।'' बूढ़ी बेगम ने तुरंत अपना विरोध दर्शाया, ''अब तुम जो हमारे साथ हो। सच बताना, तुम्हारी उँगली पकड़कर हम यहाँ तक आए या नहीं?''

''हाँ...यह बिलकुल सही है।''

बच्ची से नजरें समेटकर उसने वृद्ध की ओर देखा, ''मियाँ, अभी तक आपने यह नहीं बताया कि आप इस मंजिल तक कैसे पहुँचे?''

''अब कुछ भी गैर नहीं लगता।'' बेंच के पास आने पर वह हौले से बैठ गया, ''ये राहें तो बरसों से जानी-पहचानी हैं।''

''लेकिन हम आपको नहीं जानते,'' रूही ने बूढ़ी बेगम के साथ दोनों के बीच बैठते हुए इकरार किया।

उत्तर में वृद्ध ने उँगली से संकेत दिया, ''वह क्या है?''

''धूप''

''बस, यही हमारी पहचान है। अभी है, अभी गायब।''

''दादी!'' बूढ़ी बेगम के कान में वह फुसफुसाई, ''यह बुढ़ऊ पागल तो नहीं है?''

वृद्ध को भनक लग ही गई। ''तुम अपनी दादी अम्मा को बुढ़िया नहीं कहतीं।'' वह बोला, ''हमें क्यों बुढ़ऊ कहती हो?''

''क्योंकि आप सूरत से ही बुड्ढे लगते हैं।''

''मगर यह दिल तो जवान है।''

''तो क्या हुआ, हमारी दादी हमें मीठी-मीठी लोरियाँ सुनाती हैं। आप गा सकते हैं?'' वह सोच में पड़ गया।

''बेटी...'' बूढ़ी बेगम ने बच्ची को टीका, ''मर्द लोरियाँ नहीं गाते।''

''बिलकुल सच।'' वृद्ध सहसा बोला, ''हम मर्दे-मैदां हैं।''

बच्ची पीछे हटनेवाली नहीं थी। उसने बड़े मियाँ को चुनौती दी, ''हमारी दादी नाच भी सकती हैं।''

बूढ़ी बेगम लजा गई। वृद्ध ने मुसकराकर बच्ची से कहा, ''तुम कोई बढ़िया-सा गीत गाओ, हम भी भालू की तरह ठुमक-ठुमक नाचेंगे।''

''लो, अभी शुरू हो जाते हैं हम।'' कहते हुए रूही ने इब्तिदा की, ''चंदा है तू, मेरा सूरज है तू, ओ मेरी आँखों का तारा है तू।''

वृद्ध धीरे-धीरे खड़ा हुआ। अपने अंदाज से वह नाचने भी लगा। पल-भर बूढ़ी बेगम चकित होकर उसे देखती रही, फिर रूही को इशारा किया। गाते-गाते वह खड़ी हो गई।

उसे अपने साथ नाचती देख वृद्ध खिल उठा; किंतु बूढ़ी बेगम अभी भी तमाशबीन की तरह बेंच पर जहाँ-की-तहाँ जमी हुई थी। बच्ची ने नाचते-गाते उसे ही संबोधित कर गीत का मुखड़ा दोहराया—

दादी है तू मेरी अम्मा है तू
ओ मेरी आँखों का तारा है तू

अब उसे भी खड़ा होना पड़ा। उसका एक हाथ बच्ची के हाथ में था, दूसरा वृद्ध के। वास्तव में उन दोनों ने मिलकर बूढ़ी बेगम को लगभग घसीट लिया था। संकोच दूर हो जाने पर वह भी रंग में आ गई। गुलाबी दुपट्टा लहरा उठा।

तीनों एक-दूसरे के हाथ थामकर मस्ती में नाचते-गाते फुलवारी में गोल-गोल घूम रहे थे। कब्रिस्तान का माली पेड़-पौधों को पानी देते हुए विस्मय से थोड़े अंतर से देखता रहा।

हरियाली दूब के तिनके थिरक उठे। रंग-बिरंगे फूल हँसने लगे। नन्हे-नन्हे कोमल पौधे डोल रहे थे। घने पेड़ों में छिपी चिड़ियों की चहचहाट गूँज रही थी। ऊँचे दरख्तों के पत्तों से गुजरती हुई हवा में मधुर संगीत था।

बूढ़ी बेगम को लगा, जैसे एकाएकी संगीत रुक गया हो। चिड़ियों ने मौन धारण कर लिया। फूलों के होंठों से हँसी झर गई। पौधे अपना डोलन बिसारकर टकटकी बाँध देखने लगे। हवा गाते-गाते बिसूरने लगी थी।

जईफ शराफत अली को दिल का दौरा पड़ा था। हरियाली पर वह बोरे की तरह ढह गया। उसके सिकुड़ते हुए सीने के साथ चेहरे की झुर्रियों का जाल भी पल-पल रंग बदलने लगा। यदि समय पर कब्रिस्तान का माली दौड़ नहीं आया होता तो वृद्ध ने वहीं प्राण त्याग दिए होते।

2

मृत्यु जईफ शराफत अली को छूकर क्या गुजरी, उसने खाट पकड़ ली। अब कब्रिस्तान जाना तो दूर रहा, ड्योढ़ी के बाहर कदम रखना भी दुश्वार था। उसमें इतनी शक्ति ही कहाँ बची थी कि वह बिना सहारे के दो डग भर सके। उसका दुर्भाग्य यह था कि उसके दोनों बेटे अरगाना जानते थे। और बहुएँ, जो उसकी सूरत से नफरत करती थीं, अरियाने में माहिर थीं।

यही कारण था कि अपनी घरवाली के निधन के बाद वह अधिक समय कब्रिस्तान में गुजारना पसंद करता था। कम-से-कम वहाँ उसे अकेलापन डरावना नहीं लगता था। जजीरे को घेरे हुए समुद्र की तरह कभी मायूसी उसे घेर लेती, वह अपनी बीवी की कब्र पर आकर दो बातें कर लेता, उसके मन का बोझ हलका हो जाता।

बूढ़ी बेगम से आत्मीयता बढ़ने पर इस सिलसिले में बदलाव आया था। अपने सुख-दु:ख के किस्से अब वह उसी को सुनाने लगा था। तब भी उसे जुमेरात का इंतजार रहता था, आज भी उसे इंतजार था। चाहे सारा जमाना मुँह मोड़ ले, उसके इस आखिरी पड़ाव में बेगम साहिबा जरूर वादा निभाएँगी।

तभी चबूतरे की पल्ली तरफ से उठी तीखी आवाज ने उसे अपने स्वप्न से जगा दिया। बड़ी बहू किसी पर गरजकर बरस रही थी, ''हमारी सास ने दम तोड़ा, तब हमारे गम में शिरकत करना तो दरकिनार, दिखावे को चालीसवें पर भी नहीं फटकी। अब इस खँडहर पर यकायक प्यार कैसे उमड़ आया?''

कोई शालीन महिला दबे-दबे, मगर मधुर स्वर में उससे विनती कर रही थी, गिड़गिड़ा रही थी और एक वह थी, जो उसकी हर एक प्रार्थना पर तेजाब छिड़कती जा रही थी।

अंत में धड़ाम से किवाड़ बंद होने की आवाज सुनाई दी, तब तक वृद्ध की आँखें नम हो आई थीं। वह जान गया था कि दरवाजे पर अन्य महिला कौन थी।

''क्यों जी...'' बड़ी बहू ने आकर उसे बेदर्दी से एक करवट किया और झिलंगी खाट पर बिछी चादर देख जली-कटी सुनाने लगी, ''क्या अपने गू-मूत की नुमाइश कर बिरादरीवालों में हमारी हेठी करवाना चाहते हैं आप? अजी सुनते हो, करीमन के अब्बा...!''

जईफ शराफत अली को अब खयाल आया, लेटरिन जाने के लिए वह सुबह से बेटों को पुकारता रहा, मगर दोनों में से एक की भी नींद नहीं टूटी। जब बिस्तर में पाखाना हो गया तो बड़ी बहू उसी को लताड़ने लगी थी।

वह रो दिया।

कुदरत का यह कैसा खेल है! जिन लोगों को वह आँखों-देखा नहीं भाता था, उन्हीं का वह मुहताज हो गया था। दिन-ब-दिन उस पर मानसिक अत्याचार बढ़ते जा रहे थे, फिर भी वह जीना चाहता था। **कागा सब तन खाइयो** दोहे को चरितार्थ करना चाहता था।

किस्मत की यह भी बलिहारी थी : घरवाली के स्वर्गवास के पश्चात् वह मृत्यु को बुलावा देता था, तब रब ने उसे उम्रे-दराज बख्श दी। आज जब जीवन की लालसा जगी, रोजे-हश्र का सूर्योदय हो रहा था।

दो नयना मत खाइयो मोहे पिया मिलन की आस।

बूढ़ी बेगम की दुर्गति उतनी दयनीय न सही, कुछ कम भी नहीं थी। वृद्ध की बड़ी बहू से एक बार झिड़कियाँ खाकर उसे संतोष नहीं हुआ सो अपनी सारी गरिमा, अपनी ठसक, अपने लाज-लिहाज ताक पर चढ़ाकर वह लानतें-मलामतें सुनने को बार-बार चक्कर काटती रही। आखिर वह कब तक यह नारकीय यातना भुगतती!

उसकी आत्मा आतंकित हो उठी। फलस्वरूप जीवन-शैली में परिवर्तन आया। पहले वह सौ से अधिक थैलियाँ सिलती थी, अब वह अंक घटकर पचास के नीचे आ गया था।

अब वह पहले की भाँति चंदा से चुहल भी कहाँ करती थी? हँसना-बोलना जैसे उसने कभी जाना ही न हो, ऐसे अकसर वह हवेली के किसी अँधेरे कोने में उदासीन नजर आती। छत पर टिकी उसकी आँखों में देखने से ऐसा लगता, मानो वह खुदा से इल्तिजा कर रही हो कि वृद्ध से पहले वह उसे उठा ले।

जब भीतर के अँधेरे गहरा जाते, वह रूही की किलकारियों में पनाह खोजती। कभी वह उसके साथ तितलियाँ पकड़ने खुले सहन में चली आती तो कभी दोनों एक-एक माचिस उलटकर वापस तेजी से तीलियाँ सजाने का खेल खेलतीं।

यह नुस्खा बूढ़ी बेगम ने जईफ शराफत अली से सीखा था, मगर इसे प्रतिस्पर्धा का नया रूप देने का यश रूही को था। अब वह अपने हाथों भौंपूवाला ग्रामोफोन बजाना भी सीख गई थी।

कभी वह दादी की प्रिय गजल ''अभी तो मैं जवान हूँ'' लगाती, तब बूढ़ी बेगम के सीने पर आरी चल जाती; किंतु उसका चेहरा भावशून्य रहता। उसी अवस्था में बच्ची के साथ डोलने का अभिनय करते हुए वह अनजाने ही अपने सारे दु:खों से निजात पाकर चंद पलों के लिए सचमुच झूम उठती।

वृद्ध की गैरमौजूदगी में पोती उसके लिए मन बहलाने का एक खिलौना थी, बल्कि यों कहा जाए कि बड़े मियाँ की तरह वह भी बूढ़ी बेगम के जीवन का एक हिस्सा बन गई थी तो वह भी गलत नहीं होगा।

काश कि उसने आनंदीलाल से कुछ सीख ली होती!

एक रोज आदमखोर चीते की तलाश में अपनी दोनाली लिये नवाब शांतिवन में गए हुए थे। उनकी प्रतीक्षा में आँखें बिछाए झरोखे में बैठी बेगम शबाना से आनंदीलाल ने कहा था—

''प्यार जितना गहरा होता है, चोट उतनी ही करारी लगती है। यदि प्रेम ही बरसाना है तो हम उस छलिया पर क्यों न बरसाएँ, जो सदैव हमारे साथ होता है! हम उसे नजरअंदाज कर सकते हैं, वह हमें छोड़कर कभी कहीं नहीं जाता।''

जीवन की सफलता का यह राज बेगम शबाना ने उसी समय गाँठ बाँध लिया होता तो कम-से-कम वह दोबारा ऐसी भूल नहीं करती। इस बार उसने अपने मन के तट पर दो-दो घरौंदे बनाए थे, उनको मिट्टी के खिलौनों से सजाया था। एक छोटा, एक बड़ा था।

इन दोनों घरौंदों को समय की लहरें मिटाने के लिए बेताब थीं।

3

अमरीका की लंबी यात्रा से लौटे अकीक की गहरे पीले रंग की मारुति गाड़ी पहाड़ियों के घुमावदार रास्तों से होती हुई गाँव गलानियाँ के लिए मुड़ी, तब खेतों में लहलहाती फसल को वह साफ देख सकता था। आममंजरी की सोंधी सुगंध तन-मन को प्रफुल्लित करती थी। कोयल की निरंतर कूक ने बौराए इस मौसम में अपने प्राण घोल दिए थे।

गाड़ी चलाते हुए अकीक ने बगल में आँखें मूँदे बैठी अपनी कथाकार पत्नी की श्वेत साड़ी पर उचटती सी निगाह डालते हुए कहा, ''खुदा खैर करे, लैला, आज होली है।''

''तो क्या हुआ?''

''तुम देहात में पैदा हुई होतीं तो ऐसा नहीं कहतीं।''

अब उसने आँखें खोलीं। गाड़ी गाँव में प्रविष्ट हो रही थी। अकोल, आछी और टेसू के महकते हुए पेड़ राह में फूलों की बिछात लिये जैसे उन दोनों के स्वागत के लिए तैयार खड़े थे।

फाग गाते हुए हुरियारों की टोली घंटे-भर पहले चौराहे से गुजरी थी। खिड़कियों, झरोखों, छज्जों पर से डोलची और बालटियों से उन पर उँड़ेले गए रंगों के निशान रास्तों पर अब भी ताजा थे, सड़क रंगीन लगती थी।

हरिहरन फूलवाले ने अपनी दुकान के आगे रुकी हुई मारुति को दम भर देखा और गुलाल की थाली लिये वह दौड़ा चला आया। फिर कहा, ''आज आप बचकर नहीं जा सकते, हुजूर।''

उसकी रंगसनी हनुमान सी सूरत देख लैला के साथ उसकी श्वेत साड़ी भी सिमट गई।

''हमने कब कहा कि हम बचना चाहते हैं?'' बाहर न आकर अकीक गाड़ी के भीतर से ही बोला, ''मगर...क्या पूरा जिस्म रँगना जरूरी है?''

''सरकार यह न भूलें कि कभी आपको रंग के पीपे में डुबकी खिलाई जाती थी।''

''तब सरकार सूट-बूट में नहीं होते थे।'' उसने हँसकर कहा।

उदारता से परिस्थिति स्वीकार कर लेते हुए हरिहरन ने उसके ललाट पर केवल एक टीका लगाकर संतोष मान लिया।

अब अकीक ने स्वयं चुटकी-भर गुलाल ले पत्नी की माँग में भरते हुए फूलवाले से पूछा, ''मियाँ मौजूद गाँव में हैं या फिर कहीं भाग निकले?''

''अब पट्टा छुड़ाना उनके लिए संभव नहीं।''

''आखिर जनाब बीवी के वश में आ ही गए!'' व्यंग्य करते हुए अकीक फिर पत्नी की ओर मुड़ा, ''तुमने कुछ सुना, मैडम?''

वह बोली, ''मुझे यकीन नहीं आता।''

''भला क्यों?''

''मझधार में रहनेवाले साहिल पर घर नहीं बनाते।''

''वाह! खूब कही, ''पत्नी के अलंकृत वाक्य की दाद दिए बिना अकीक से नहीं रहा गया, ''मगर यह भी तो हो सकता है, सारी जिंदगी लहरों से टकरानेवाले को शायद किनारा मिल गया हो।''

अपने उत्तर की पुष्टि के लिए उसने हरिहरन पर एक सवालिया निगाह डाली। ''हुजूर!'' उसने बताया, ''गुस्ताखी माफ, मगर मामला बिलकुल उलटा है।''

मियाँ-बीवी दोनों चौंके।

उसने आगे कहा, ''अब गुरुदेव घर पर रहते हैं और उनकी श्रीमतीजी लापता हो जाती हैं।''

''क्या मतलब?'' लैला बोली।

''आनंदीलाल की संगति का रंग कभी तो उस पर चढ़ना था। इसी एक महीने में वह दो बार गायब हो गई। पहली बार हफ्ते-भर के लिए, दूसरी बार...'' कहते हुए उसने मन-ही-मन हिसाब जोड़ा, ''दस दिन पहले वह झोला लेकर सौदा-सुल्फ खरीदने बाजार में दिखाई दी थी। आनंदीलाल बताते हैं कि वह होली खेलने भी नहीं लौटी है।''

लैला ने विस्मय से पति की ओर देखा। बात सचमुच अनोखी थी। बनारस की छम्मीजान डेरेवाली, जो कभी अपने आसन से गिरी हुई तवायफ यानी कि छँटी हुई वेश्या थी, रईस बकरों की तलाश में उत्तर से मध्य प्रदेश तक अपना मायाजाल फैलाए हुए थी, आज परमात्मा की खोज में जाने कहाँ-कहाँ बीहड़ों में भटकती होगी!

इस विषय में हरिहरन से कुछ और प्रश्न करने के बजाय अकीक ने गाड़ी शुरू कर झील की दिशा में दौड़ा दी।

मार्ग में लैला ने उसे याद दिलाते हुए कहा, ''शाम से पहले रूही को लेकर हमें दिल्ली के लिए निकलना है, यह आपके जहन में होगा ही।''

''अभी दोपहर का एक भी नहीं बजा।''

''अभी हमने खाना भी नहीं खाया है।''

''वह हम मौजूद अंकल के घर पर ही निपटा लेंगे।'' अकीक गाड़ी चलाते हुए कह रहा था, ''अलबत्ता, इससे अम्मीजान थोड़ी नाराज होंगी, मगर उन्हें पटा लेने के टोटके भी तो तुम जानती हो।''

लैला को यह नागवार लगा। वह बोली, ''क्या मौजूद मिंया से मिलना इतना अहम है?''

उसने दो बार सिर हिलाकर 'हाँ' कहते हुए कारण भी स्पष्ट किया, ''दाई की गोद से माई की गोद में सभी आते हैं, मगर वहाँ से मौजूद अंकल की गोद में जाने का सौभाग्य सिर्फ दो बच्चों को मिला है। दूसरा और मुझसे ज्यादा खुशकिस्मत मेधा है।''

यह सच भी था। बिजली और बिरजू का पुत्र पूरे आठ वर्षों तक आनंदीलाल की निगरानी में पला था। बालक के जीवन-विकास के लिए प्रारंभ के यही वर्ष अति महत्त्वपूर्ण होते हैं। इन्हीं आठ वर्षों में उसके भविष्य की नींव तैयार होती है, जिसके आधार पर आगे चलकर वह अपने भविष्य का निर्माण भी करता है।

''मेघा की उमर करीब दस साल होगी और अभी से वह दीन-दुनिया के आरपार देखने लगा है।'' गाड़ी के टायरों को मैले पानी के चहबच्चों से बचाते हुए अकीक ने बताया।

''यह आपने कैसे जाना?''

उसने पिछले साल आँखों-देखा एक किस्सा सुनाया—वह पुश्तैनी जमीन के एक सौदे के सिलसिले में दो-तीन दिनों के लिए अकेला गाँव आया था। एक रोज आनंदीलाल के साथ चहलकदमी करते हुए वह प्रधान बस-अड्डे पर आ पहुँचा।

उसने देखा, केवल फटी चड्डी में खड़ा मेघा हाथ में फिरकी लिये भीड़ को एकटक निहार रहा था, मानो वह फिरकी से खेलते हुए समाधिस्थ हो गया हो।

आनंदीलाल ने पीछे से आकर उसे एकबारगी गोद में उठा लिया। वह सहज ही चौंका, फिर आश्वस्त होते हुए पूछा, ''बाबा, ये लोग सोए-सोए से क्यों दिखाई देते हैं?''

आनंदीलाल ने पलकें झपकाईं, ''कौन लोग?''

''ये सारा मजमा, सभी नींद में हैं। सामान उठाने के लिए कुली नींद में छीनाझपटी कर रहे हैं।'' मेघा बता रहा था, ''देखो, उस बस के यात्री नींद में उतर रहे हैं। वह बस चालक ऊँघते हुए बस चला रहा है। उधर ढाबे पर चाय-नाश्ता लेते हुए लोग बेहोशी में गपशप लड़ा रहे हैं। ये सभी क्यों सोए हुए हैं, बाबा?''

''इसलिए कि...'' आनंदीलाल ने उसके गाल पर एक चुम्मा लेते हुए कहा, ''तुम जाग रहे हो।''

''आप भी तो जाग रहे हैं।'' वह फिर बोला, ''क्या आपको यह माहौल किसी परीकथा की सोई हुई नगरी सा नहीं लगता, जिसे डायन के शाप ने सुला दिया हो?''

''हाँ...सो तो है।''

4

अकीक की गाड़ी आनंदीलाल के घर के आगे रुकी, तभी पति-पत्नी, दोनों को खयाल आया। छत पर बैठ

कुरियाल कर रहे यायावर सारस कैंचुली बदलते हुए साँप की तरह अपने पुराने पंख त्याग रहे थे। बहती हवा के साथ माहौल में तैरते पंख दिलकश लगते थे।

भरतपुर में शीतवास कर आए सारसों के लिए झील पर खड़ा आनंदीलाल का गारे-चूने का मकान विश्रामगृह के समान था। वे यहाँ एक रात गुजार नए परों के साथ हिमालय पार अपने देश लौट जानेवाले थे।

मकान का मुख्य प्रवेशद्वार खुला था और तुलसी के चबूतरे के परे के किवाड़ भी। अकीक ने अपनी पत्नी के साथ आँगन पार कर भीतर झाँका। चहारदीवारी की खामोशी में सारस का एक जोड़ा गले-से-गला रगड़कर केका कर रहा था। जैसे ही उनकी नजर अतिथियों पर पड़ी, वे लजाकर अंत:पुर में दौड़ गए।

अकीक को ताज्जुब हुआ। घर खुला है और अंदर कोई भी नहीं? क्या महात्मा गांधी के स्वप्न, रामराज का आगमन हो चुका है?

''अब?'' लैला ने अधीर होकर पूछा।

''हम ठीक दस मिनट इंतजार करेंगे।'' उसने जूते उतार दो कदम बढ़ाकर गद्दे पर बैठते हुए कहा, ''तब तक वह नहीं लौटे तो हमारी किस्मत।''

लैला उसके सामने गावतकिए के सहारे बैठी। फिर समय काटने के इरादे से पूछा, ''आपके मौजूद अंकल से उस फूलवाले का क्या रिश्ता है?''

''यह बात तुम्हें कैसे सूझी?''

''बात-बात में उसने एक बार गुरुदेव शब्द का इस्तेमाल किया था।''

अकीक ने बताया, ''वह उनका स्टूडैंट रह चुका है।''

''यानी कि अपनी जिंदगी में वह मास्टर भी बने हैं?''

''सही।''

''मगर यह कैसे मुमकिन है?'' लैला उलझते हुए बोली, ''आप ही ने बताया था कि वे पड़े-लिखे नहीं हैं। जब वे अनपढ़ हैं तो शिक्षक कैसे बन सकते हैं?''

''तुम्हारी बात गलत नहीं।'' कहते हुए अकीक थोड़ा मुसकराया, ''उनको मास्टर बनाने के प्रयोग में अब्बा हुजूर का बड़ा हाथ था। हाई स्कूल को उन्हें पाँच लाख रुपए चंदा देना पड़ा था, मगर यह भी हकीकत है कि मौजूद अंकल के ज्ञान के आगे बाकी सारे मास्टर फीके लगते थे।''

''यह तो और भी अजीब बात हुई! एक अनपढ़ शख्स डिग्रीधारी शिक्षकों से ज्यादा समझदार कैसे हो सकता है?''

''तुम एक बात भूल रही हो लैला, सुशिक्षित का अर्थ ज्ञानी नहीं होता।''

तब?

''जानकार होता है।'' अकीक ने अब विस्तार से बताया, ''शिक्षितों के पास सारी दुनिया की किताबी जानकारी हो सकती है। मसलन, प्रकाश की किरणें एक पल में कितने मीलों का सफर करती हैं या सिकंदर किस साल में भारत आया था; मगर अपने तजुरबों से हासिल उनके पास शायद ही कुछ होता है। मौजूद अंकल के पास स्वानुभव से प्राप्त ज्ञान का भंडार है। अगर उनके एक रात कोठे पर गुजारने से बवाल पैदा न होता तो शायद आज वे किसी यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर होते।''

अकीक की खींची हुई दस मिनट की समय रेखा कब की भंग हो चुकी थी, किंतु दोनों बातें करने में ऐसे लीन थे कि भोजनपान तक की उन्हें सुध नहीं रही।

लैला ने खुद गुफ्तगू का सिलसिला आगे बढ़ाया, ''आपने यह तो बताया ही नहीं कि वह मास्टर बनकर बच्चों को

पढ़ाते क्या थे?''

''प्रकृति विज्ञान।'' अकीक ने कहा, ''कुदरत से एक होकर उन्होंने नैसर्ग को हर रंग में देखा है। इसके अलावा मौजूद अंकल वह सबकुछ सिखलाते थे, जो पाठ्यक्रम में होना चाहिए मगर नहीं होता है।''

''मसलन?''

अकीक को आनंदीलाल द्वारा मंचित किया गया वह नाटक याद आया, जो रामलीला पर आधारित था, मगर जिसकी तह में जीवन का एक अनमोल संदेश भी छिपा था।

तब अकीक दिल्ली के कॉलेज का छात्र था, क्रिसमस की छुट्टियाँ मनाने गाँव आया था। आनंदीलाल मास्टर सिर पर पगड़ी बाँध उसे लिवाने हवेली पर आया। उसने सफाई से इनकार कर दिया।

गाँव में यदि शेक्सपियर के 'हैमलेट' का मंचन होनेवाला होता, तब भी वह छिटक जाता। कहाँ विदेशों से नाटक मंडलियाँ लेकर भारत की राजधानी में आनेवाले वे अंतरराष्ट्रीय कलाकारों की मँजी हुई अदाकारी और कहाँ ये देहाती बच्चों का तमाशा?

जब आनंदीलाल मास्टर ने आग्रह किया तो वह टाल नहीं सका। सोचा, बीसियों बार रामलीला देखी है, एक बार और सही।

गाँव के हाई स्कूल के रंगमंच पर छात्रों द्वारा खेले जा रहे नाटक को देख तरुण अकीक उबासियाँ लेने लगा। वही पर्णकुटीर और वनलता की सीनरी थी। वही आनंदमय राम थे। वही खुनसी रावण था। वही पौराणिक परिवेश। कुछ भी तो बदला नहीं था।

''बेटा!'' तभी पास बैठे आनंदीलाल मास्टर ने पूछा, ''तुम बता सकते हो कि उन कलाकारों में राम कौन बना है?''

''जाफर।'' उसने बिना मुड़े ही बताया, ''जुम्मन चाचा का बेटा।''

''और रावण?''

''हरि। शिवा माली का पुत्र।''

अकीक के लिए जितना नीरस नाटक था, उतने ही साधारण ये प्रश्न थे। उसे सहज विचार आया, कॉलेज के छात्र से कोई ऐसे बचकाना सवाल नहीं करता। क्या मास्टरजी उसे कोई गहरी बात बताना चाहते हैं?

वह आगे सोचे, इससे पहले पहला अंक समाप्त हुआ। आनंदीलाल मास्टर उसे लेकर नेपथ्य में आया। यहाँ उसने देखा, राम और रावण बने हुए दोनों बच्चे जाफर और हरि साथ बैठकर बतियाते हुए छाछ पी रहे थे।

यह सच है कि इससे पहले अकीक कई बार रामलीला देख चुका था, मगर वह कभी परदे के पीछे नहीं गया था, एक-दूसरे के अरि राम-रावण को उसने गले में बाँह डाले बजते हुए नहीं देखा था।

उसके मन में हो रही अजीब हलचल को उसके चेहरे पर प्रतिबिंबित होती देख आनंदीलाल मास्टर ने जान लिया, गरम लोहे को हथौड़े के केवल एक प्रहार की आवश्यकता है। ''बेटा!'' अकीक से वह बोला, ''क्या तुम्हें नहीं लगता कि खुदातआला ने हम सबको एक-एक पात्र अदा करने के लिए अलग-अलग भेस में इस धरती पर भेजा है?''

तरुण अकीक अब नादान बच्चा नहीं रहा था। अगले वर्ष वह आगे पढ़ाई के लिए इंग्लैंड जानेवाला था। उसने छाता लिये कोट-धोती में करीब खड़े मास्टरजी के चेहरे को गौर से देखा, ''अंकल, आप कहना क्या चाहते हैं?''

''किसी को डॉक्टर का भेस मिला है तो किसी को वकील का।'' आनंदीलाल मास्टर बता रहा था, ''किसी को चमार का रूप मिला है तो किसी को नाई का। किसी को भगवा चोला मिला है तो किसी को हरा।''

अकीक के मन-मस्तिष्क में लहरें उठने लगीं। वह एकध्यान होकर सुन रहा था।

''अगर हम अपने-अपने भेस को गंभीरता से न लेकर इन राम और रावण की मानिंद गले में बाँह डाल मुसकराना सीख लें तो यह जीवन कितना सुंदर बन जाय!'' कहते हुए आनंदीलाल मास्टर ने जोड़ा, ''आखिर तो हमें चोले बदलकर जीवन के मंच पर से बिदा लेना है।''

''लैला,'' अंततः अकीक ने बताया, ''अपने छात्रों को इसी तरह पढ़ाते थे वह। यही है सच्चा ज्ञान, यही है सच्ची पूँजी। जिसे यह दौलत हासिल हुई, समझ लो कि वह भवसागर पार उतर गया।''

आनंदीलाल की मधुर ध्वनि अभी फिजा में गूँजी ही थी कि दोनों के कान खड़े हो गए। वह फाग गाते हुए खेतों की दिशा से आ रहा था—

होली खेले रघुवीरा अवध में
होली खेले रघुवीरा...
केकरे हाथे कनक पिचकारी
केकरे हाथे अबीरा
अवध में होली खेले रघुवीरा...

तोशक-तकियों पर से उठकर मियाँ-बीवी दोनों बरामदे में आ गए। उन्होंने देखा तो आनंदीलाल गाते हुए झूम भी रहा था। दूसरे, उसके हुलिए ने फिर नयापन अपनाया था। स्कूल मास्टर का लबादा त्याग वह कुरता-पायजामा पहनने लगा था। आज उसका स्थान बंडी और धोती ने लिया था। सिर पर अँगोछा बँधा था, मगर उसके लंबे बेतरतीब केश कंधों को छूते हुए हवा में वैसे ही लहरा रहे थे।

आनंदीलाल के थोड़ा और करीब आने पर दिखाई दिया कि मार्ग में किसी ने उसके चेहरे पर गुलाल मला था। उसकी बंडी भी टेसुआँ हो गई थी।

आनंदीलाल की निगाह अब घर आए दोनों मेहमानों पर ठहरी। वह फाग गाना छोड़कर तेजी से कदम बढ़ाते हुए बरामदे में आ पहुँचा।

''अंकल!'' अकीक ने उसके नए लिबास को मद्देनजर रखते हुए पूछा, ''यह बदलाव फिर कैसे आया? क्या...आपके जीवन का कोई नया अध्याय तो शुरू नहीं हुआ?''

''यों ही समझ लो। छमिया को एक अठवाँसा खेत मिल गया तो वह उसने खरीदकर मुझे सौंप दिया। अब मैं किसान हूँ।''उसके कंधे पर एक गठरी थी। उसे नीचे रखते हुए वह आगे बोला, ''हमारे खेत की नई फसल की सरसों लाया हूँ। साथ होली की आग में भूने हुए मटर तथा जौ की बालियाँ भी हैं—खाओगे?''

अब तक भूख इतनी तेज हो गई थी कि मियाँ-बीवी, दोनों में से किसी ने भी तकल्लुफ नहीं किया। आनंदीलाल उन्हें एक तश्तरी में परोस, पानी के दो गिलास रखकर स्नान करने झील पर चला गया। जब वह धुली बंडी तथा उजली धोती में तैयार हो लौटा, वे दोनों अल्पाहार से फारिग हो चुके थे।

आनंदीलाल ने उनके सामने दरी पर बैठते हुए वार्त्तालाप की शुरुआत की, ''हाँ तो नन्हे मियाँ, कैसी रही आप दोनों की अमरीका की यात्रा?''

''जैसी हमेशा रही है।'' दो टूक उत्तर देकर अकीक ने मूल विषय छेड़ा, ''सुना है, हमारी आंटी पर भी आपका रंग चढ़ा है?''

''मेरा नहीं, इश्के-हकीकी का।''

''मगर वो घर छोड़कर अकेली जाती कहाँ हैं?''

''यह तो उसका रब ही जाने, मगर जब भी एकांतवास गुजारकर वह अपनी गारे-हीरा से लौटती है, उसका चेहरा अधिक ज्योतिर्मय लगता है।'' आनंदीलाल बता रहा था, ''इससे कल्पना की जा सकती है, पल-पल उसके अंदर अनहद नाद धुनकारें दे रहा है। यह लोक, यह मायके का मोह त्यागकर वह ससुराल जाने से पहले नेकी का तोशा तैयार करने में लगी है, पर है वह सचमुच बावली।''

लैला, जो खामोशी से दोनों पुरुषों की बातें सुन रही थी, अनायास ही बोली, ''क्या मतलब?''

अब आनंदीलाल ने उसकी ओर मुखातिब होकर कहा, ''उस पगली को मैंने बार-बार समझाया कि जिसकी खोज में वह बाहर भटक रही है, वह तो उसके भीतर विराजमान है। उसके पल्ले नहीं पड़ा सो नहीं पड़ा।''

''पड़ता भी कैसे?'' अकीक ने मुसकराते हुए आनंदीलाल की ही बात दोहराई, ''दूसरों से मिली जानकारी और अपने अनुभव से हासिल किए हुए ज्ञान में यही तो फर्क होता है।''

''हाँ...सो तो है।''कहते हुए वह भी मुसकरा दिया। फिर हौले से धमाका किया, ''यही सलाह उसे अपने गुरु ने भी दी है।''

अकीक और लैला ऐसे चौंके, मानो सामने की दीवार पर सजी मेघा की तसवीर में प्राण का संचार हुआ हो। छम्मीजान का कोई अन्य गुरु हो सकता है, यह उनके लिए कल्पनातीत था।

आनंदीलाल के लिए स्पष्टीकरण देना अनिवार्य हो गया। उसने बताया, ''वर्षों से पहाड़ियों की किसी कंदरा में पनाह लिये बैठा शांतिमठ का महंत अपनी तपस्या के बल पर लोक-परलोक के सूक्ष्म रहस्यों को जान, सिद्ध हो गया है।''

दोनों की हैरत जाती रही। आखिर महंत केवलानंद के मन में किसने चिनगारी रखी थी? किसने उसे अपनी गद्दी त्यागकर एकांतवास में जाने की प्रेरणा दी थी? वह आनंदीलाल 'सद्गुरू' ही तो था!

5

मानो सूर्य की किरणों से त्रस्त हो, ऐसे हदसकर बूढ़ी बेगम ने शयनागार के अँधेरों में पनाह ली थी। ''उजालों में दु:ख के अलावा और है ही क्या?'' यहाँ पूर्ण शांति थी, सुकून था; मगर यह भी उसके भाग्य में कहाँ लिखा था!

''दा...दी!'' उसकी तन्हाई में रूही का बिगुल बज उठा, ''पापा आ गए...पापा आ गए...''

बूढ़ी बेगम दहल गई, चेहरा और क्लांत हो गया। जाने कैसी हूक आँतों में उठने लगी थी। उसे लगा, न चाहने पर भी प्रकाश की किरणें अंतत: डरावना मुखौटा ओढ़े उसकी दहलीज पर आ पहुँची थीं।

किलकारियाँ और पदचाप तेजी से करीब आ रहे थे। उतनी ही गति से उसकी साँसें भी चलने लगी थीं। आज उसे इन साँसों का आवागमन भी अखर गया—निगोड़ी आती है, जाती है और लौटकर फिर आती है। अरे जरा भी गैरत होती तो जाकर वापस कभी न आती।

अकीक का हाथ थामे बच्ची उसे अपने साथ घसीटती हुई आकर अँधेरे शयनागार में खड़ी हो गई। वह जानती थी, बूढ़ी बेगम का प्रिय स्थान कहाँ था। ''देखो पापा,'' उसने संकेत देते हुए कहा, ''दादी वहाँ छिपी हैं।''

''कहाँ?''

चंदा ने खिड़कियों पर पड़े हुए परदे हटाने शुरू किए। अभी तो एक ही परदा छल्लों की किरकिरी आवाज के साथ खिसका था और आदमकद जर्मन घड़ी की ओट में बैठी बूढ़ी बेगम की आँखें चौंधिया गईं।

''यह क्या अम्मीजान?'' हलकान सा अकीक उसे देख रहा था और बोल भी रहा था, ''रूही ने जब बताया कि

आप अँधेरे तलाशती रहती हैं, मुझे यकीन ही नहीं आया था। आपके मिजाजशरीफ तो ठीक हैं न?''

उस नादान को क्या पता कि इस जर्जर दिल पर से कैसे-कैसे बवंडर गुजरे होंगे!

बूढ़ी बेगम दीवार का सहारा लेकर खड़ी हुई, तब उसकी नजर बहू पर ठहरी। अकीक और रूही के पीछे-पीछे आकर वह कुछ कदम पर ठहर गई थी।

''कब आए?'' प्रश्न करते हुए उसने फिर बेटे के सामने देखा।

''कल ही हम अमरीका से लौटे हैं।'' अकीक ने बताया, ''और चंद घंटे आराम कर हम सीधे यहाँ चले आए।''

चंदा कार में से एक फैंसी बैग ले आई। लैला ने उसके हाथ से लेते हुए कहा, ''देखिए माँजी, हम आपके लिए क्या लाए हैं?''

बैग में खिलौने से कैसेटप्लेयर का उतना ही आकर्षक एक डिब्बा था। वह खोलकर लैला ने कैसेटप्लेयर का एक बटन दबाया। सारंगी वादन की कर्णप्रिय ध्वनि सूनी हवेली में गूँज उठी, मगर सुर दर्दीले थे।

''अब आपको बेगम अख्तर की गजलें और ठुमरियाँ सुनने के लिए ग्रामोफोन का हैंडल नहीं घुमाना पड़ेगा।'' लैला ने आगे बताया, ''आपके मनपसंद गायकों के एक दर्जन कैसेट्स भी हमने दिल्ली से आते हुए खरीदे थे। वे भी इसी बैग में हैं।''

सास के चेहरे पर प्रसन्नता की एक हलकी सी लहर भी दिखाई नहीं देने पर उसे संदेह हुआ, ''क्या आपको खुशी नहीं हुई, माँजी?''

''यह तो बताइए...'' दादी कोई उत्तर खोजे, इससे पहले पोती अपनी माँ से बोली, ''आप हमारे लिए क्या-क्या अजूबे लाई हैं?''

जवाब मौन खड़े अकीक ने दिया, ''बड़ा सा एक टैडीबेर, तीन-तीन बार्बी डॉल, मिकी-माउस के वीडियो कैसेट्स और नए फैशन की पोशाकें।''

''सच!'' रूही का गोल चेहरा गुलाबजामुन बन गया, ''मैं रोजाना गुड़ियाओं से खेलूँगी और इतवार-इतवार सात नई ड्रेसें पहनूँगी। आज एक दो न पापा!''

''आज शनिवार है।'' चिकोटी काटते हुए उसने कड़वा सच भी बता दिया, ''चाहो तो घर पहुँचकर कल तुम दिन में दो बार ड्रेस बदलना।''

बूढ़ी बेगम सकते में आ गई, ''ले जाओगे इसे?''

''अम्मीजान,'' उसने अपनी विवशता दर्शाई, ''सोमवार से इसके इम्तिहान शुरू हो रहे हैं।''

''हम नहीं जाएँगे।'' कहते हुए बच्ची अपनी दादी से लिपट गई, ''हम यहीं रहेंगे।''

अकीक की आँखें चौड़ी हो गई। वह हैरत जताते हुए बोला, ''एक महीने के लिए हम दूर क्या हुए हमारी तो दुनिया ही बदल गई। जो जीना जानती थी, वह मुसकराना भूल गई और जो गाँव-खेड़ों से नफरत करती थी, वह राजधानी को भूल गई।''

बूढ़ी बेगम ने दीनहीन भाव से कहा, ''बेटा, हमारी गुड़िया रानी को यहीं रहने दो।''

''लेकिन...''

''यहाँ भी हाई स्कूल है। इसकी सारी पढ़ाई-लिखाई का जिम्मा हम लेते हैं।''

''अम्मीजान, यहाँ सरकारी स्कूल है, कॉन्वेंट स्कूल नहीं।''

''यह मत भूलो कि तुम यहीं से पढ़कर आगे बढ़े हो।''

''सही, मगर अब जमाना वह नहीं रहा।''

''तुम्हारी माँ तो वही है न?''

बहस का सिलसिला फिकराकशी में तब्दील हो जाए, इससे पहले लैला ने सास की भावनाओं को निगाहों से टटोला और तुरंत एक नतीजे पर भी पहुँची। ''माँजी,'' उसने कहा, ''आपके दु:ख-दर्द मैं समझ सकती हूँ। ये सूनी-सूनी दीवारें, यह अकेलापन बरदाश्त करना किसी मर्द के लिए भी हौलनाक है। क्यों न आप हमारे साथ दिल्ली चलतीं?''

''वहाँ इमारतों के जंगल में क्या रखा है हमारे लिए?'' कहते हुए बूढ़ी बेगम का स्वर भर्रा आया, ''यहाँ तो दीवारें बोलती हैं।''

''रूही बेटा!'' अकीक बच्ची की तरफ मुड़ा, ''हमारे पास ज्यादा वक्त नहीं है।''

''हमने कहा न...'' वह दादी की ओट में दुबक गई, ''हम नहीं आएँगे।''

''अच्छे बच्चे जिद नहीं करते।''

''नहीं,'' वह चिल्लाई, ''हमें दादी को छोड़कर कहीं नहीं जाना।''

अकीक ने लपककर उसकी कलाई थाम ली, ''छुट्टियों में हम सब यहाँ फिर से आएँगे।'' उसे घसीटकर ले जाते हुए वह फुसला रहा था, ''दादी के साथ पूरे दो महीने बिताएँगे।''

''बेटा!'' चिरौरी करती हुई बूढ़ी बेगम पीछे चली, ''तिनके का यह सहारा भी छिन गया तो हमारे लिए जीना दुश्वार हो जाएगा। थोड़ी-सी दया कर दो इस करमजली पर...''

रूही की चीखो-पुकार में उसकी मनौतियाँ किसी ने नहीं सुनीं। जैसे उसकी आवाज उभरने से पहले ही डूब गई थी; मगर मासूम बच्ची का दर्द हवादार बीस कमरोंवाली हवेली में रात-भर गूँजता रहा, दीवारों से टकराता रहा, फर्श को छूकर उछलता रहा, जैसे शयनागार में राह भूला कोई चमगादड़ घुस आया हो।

भ्रमित बूढ़ी बेगम ने उठकर एक खिड़की खोल दी। उसकी कल्पना का चमगादड़ पंख फड़फड़ाता हुआ बाहर निकल गया, मगर बाढ़ के पानी की तरह रोशनी का सैलाब अंदर धँस आया।

उसने तुरंत खिड़की बंद कर ली, परदे भी डाल दिए। किसी गुमनाम कैदी की तरह वह अपने भीतर और बाहर के अँधेरों में गर्क हो गई। अब न कोई उसे दिलासा देनेवाला था, न कोई उसका दु:ख बाँटनेवाला था।

बूढ़ी बेगम, जिसके रूप की चर्चा कभी चौराहे-चौपालों का नमकीन विषय था, जीते-जी प्रेत बन गई। हाथ में कंदील लिये रातों में वह दीवारों को छूती, ईंटों से बतियाती हुई हवेली के एक कमरे से दूसरे में जाती, दूसरे से तीसरे में होते हुए वह सारे कमरों में कुछ खोजती सी भटकती रहती थी।

कभी एकाध किवाड़ पर दस्तक देकर वह कहती—मियाँ अब तो दर्शन दो। जाने कितनी बार हम इस दर पर माथा रगड़कर मायूस लौटे हैं।

उत्तर की प्रतीक्षा में वह हब्सेदम खड़ी रहती। थक जाती, तब कंदील के साथ वहीं बैठ जाती। इसी उम्मीद से कि कभी तो किस्मत साथ देगी, कभी तो अरमानों के किवाड़ खुलेंगे। धीरे-धीरे उसे झपकी लग जाती। वह फर्श पर ही गुड़मुड़ी लेट जाती।

कभी अपनी वहशत में वह तहखाने में पहुँचती। यहाँ वर्षों से पड़े हुए असद महल के दफीने से एक-एक जेवर निकाल अपने जिस्म को सजाती। बिलकुल वैसे, जैसे तालकटोरा से सज-धजकर दुलहन बन आ उसने हवेली में पहला कदम रखा था।

वह जामाजेब बेगम शबाना थी, यह अवनत बूढ़ी बेगम। उसके जीवन के पिछले पहर में आए दोनों सहारे छिन गए थे। रूही अपने मम्मी-पापा के साथ दिल्ली चली गई थी। जईफ शराफत अली के किवाड़ पर उसके लिए ताले

लगे हुए थे।

रूही को गए हुए महीनों गुजर चुके थे, मौसम बदला था, मगर बूढ़ी बेगम की दिनचर्या में कोई फर्क नहीं आया। दैनंदिन के बुलावों पर शय्या से उठना और फिर लेट जाना। यदि सुबह से शाम तक करने के लिए कोई दूसरा काम बचा था, तो वह था भोजनपान।

अब तो उसने खाने की मेज से भी कन्नी काट ली थी। चंदा उसके कमरे में थाली परोस जाती, तब वह बेमन दो कौर लेती, वरना भूखी-प्यासी ही पड़ी रहती थी।

ऐसे ही एक रोज दोपहर की परोसी हुई थाली शाम में ज्यों-की-त्यों उठाकर अपनी नम आँखें पोंछती हुई चंदा शयनागार से चली तो जुम्मन दरजी आ पहुँचा। वह सूरत से ही तंग लगता था।

''तीन सौ थैलियों का कपड़ा दबाकर बैठी हैं आप।'' बूढ़ी बेगम को लेटी देख वह बरस पड़ा, ''जब काम नहीं होता तो मुझसे ले क्यों आई? क्या कहूँ मैं अपने आका से? आखिरकार मुझे भी तो किसी को जवाब देना पड़ता है।''

चंदा उसे हिकारत से देखती हुई दरवाजे के पास खड़ी थी। मर्यादा का परदा तोड़कर अंत:पुर में घुस आए जुम्मन दरजी का एक-एक शब्द चींटी बन उसके शरीर को काटने लगा।

''मियाँ...'' बूढ़ी बेगम ने धीरे-धीरे उठ बैठते हुए हतस्वर कहा, ''हमें क्या पता था कि एक रोज हम भी बुढ़ापे की जद में आ जाएँगे।''

पल भर जुम्मन दरजी उसे देखता रहा। उसकी नजरें बूढ़ी बेगम के गले में दमकती हुई मोतियों की लड़ी पर ठहरी थी।

चंदा ने भी यह देखी थी, मगर उसके लिए इसमें कोई अचरज की बात नहीं थी। तहखाने में अपने आपको सजाकर कभी-कभी मालकिन कोई जेवर वापस पिटारे में रखना भूल जाती, यह कमजोरी वह जान गई थी।

''अभी गहनों का चस्का नहीं गया और कहती है कि...'' मन-ही-मन बड़बड़ाते हुए चंद शब्द जुम्मन दरजी के होंठों पर आ गए। उसकी आवाज भी ऊँची हो गई, ''अगर थोड़ी सी भी हया बची होती तो काम खटाई में डालने के बजाय आप हमारा कपड़ा लौटा जातीं, समझीं?''

''**चिल्लाओ मत।**'' अब बूढ़ी बेगम अपनी जगह से कड़कती हुई सख्त आवाज में बोली, ''शर्मो-हया का चोला पहननेवाले क्या भूल गए कि यह असद महल की बेगम का जनानखाना है? किसकी इजाजत से अंदर घुस आए जी?''

चंदा के चेहरे पर मुसकराहट लहक उठी।

जुम्मन दरजी झेंप गया। उसने कल्पना में भी सोचा नहीं था कि जिसे वह खोखला बाँस समझ रहा था, वह नीम का तना होगा। उसे गुमसुम देख बूढ़ी बेगम थोड़ी शांत पड़ी। अंत में उसे दफा होने का इशारा करते हुए कहा, ''चाहो तो अपने हुए नुकसान के एवज में हमारा सिलाई का संचा लेते जाओ, मगर फिर कभी अपनी मनहूस सूरत लिये यहाँ कदम नहीं रखना।''

वह ऐसा घबराया हुआ था कि जैसे-तैसे अपनी थैलियों के कपड़े का गट्ठर बनाकर पल भर में नौ दो ग्यारह हो गया।

कमरे में फिर सन्नाटा उतर आया, प्रकाशित माहौल में धुंध। साँय-साँय करती हवा चलने लगी। यह मरगिल्ली चंदा जब भी आती है, चुपके से एकाध खिड़की खोल देती है।

खिड़की बंद करने के लिए वह शय्या पर से उठी कि बाहर के कोहरे को भेदती हुई बिजली कड़ाके के साथ

चमकी। उसी क्षण के शतांश में एक अनुपम विचार उसके मस्तिष्क में कौंधा। वह खिड़की बंद करना भी भूल गई।

तुरंत वह बाहर जाने के लिए तैयार होने लगी। नया उजला चूड़ीदार पहनकर उसने गले में वही दुपट्टा डाला, जिसका गुलाबी रंग जईफ शराफत अली की आँखों का नूर था।

ट्रे में शाम की चाय का सामान लेकर आ रही चंदा यकायक रुक गई। ''आज जुमेरात नहीं है।'' उसने पूर्ण गंभीरता से कहा, ''और हो भी तो मैं आपको जाने नहीं दूँगी।''

बूढ़ी बेगम ने मुड़कर उसकी तरफ देखने की परवाह भी नहीं की। वह अपनी ऐनक ढूँढ़ रही थी, तकिए के नीचे से मिल जाने पर उसन नाक पर बिठ्ाली।

चंदा का माथा ठनका। शायद अपने छोटे से जीवन में वह पहली बार आपे से बाहर हुई, ''मैं आपसे कह रही हूँ मालकिन, दीवारों से नहीं।''

बिना छड़ी लिए ही वह आगे बढ़ी। उसका रुआब देख घबराकर चंदा एक तरफ हो गई। उसे लगा, बुढ़िया के दिमाग का कोई पुरजा फिर गड़बड़ाया है, वरना गले में अनमोल मोतियों की लड़ी डालकर वह ऐसे तूफान में बाहर न निकलती।

चाय की ट्रे तिपाई पर रख वह झरोखे में आई। मालकिन को चबूतरा पार कर जाती देख उसका जी चाहा, वह दौड़कर बूढ़ी बेगम के पाँवों से लिपट जाए, उसे जबरन रोक ले। पर यह भी कहाँ संभव था?

मालकिन की सनक और तेवर से वह भलीभाँति परिचित थी। अभी घंटे भर पहले जुम्मन दरजी जैसे निगोड़े मर्द को भी उसने चंद मिनटों में भीगी बिल्ली बनाकर खदेड़ दिया था।

किसी की बकरियों के छप्पर को हवा में फड़फड़ाकर उड़ते हुए देख भहराकर चंदा वहीं झूले पर बैठ गई।

जैसे-जैसे बूढ़ी बेगम आगे बढ़ती गई, हवाएँ तेज होती गईं। उसे फिर अपनी नक्काशी की हुई छडी याद आई। रूही के आने पर उसने जाने कहाँ रख दी थी। आज साथ होती तो इस अंधड़ में रुई के फाहे की तरह उड़ जाने का भय भी नहीं होता।

वैसे आज उसे अधिक दूर नहीं जाना था, केवल जईफ शराफत अली की कोठी तक का अंतर तय करना था। फिर एक बार उसके किवाड़ पर दस्तक देनी थी। लानतों-मलामतों की बौछार शुरू होकर फौश गालियों की बारिश में तब्दील हो जाए, इससे पहले गले से मोतियों की माला निकाल अदब से इतनी प्रार्थना करनी थी, ''मेरा सारा खजाना खत्म न हो जाए, तब तक रोजाना मैं ऐसा ही बेशकीमती एक-एक तोहफा लाती रहूँगी।''

उसे उम्मीद थी, न वृद्ध की चिड़चिड़ी बहुएँ उसका प्रस्ताव ठुकरा सकेंगी, न ही उसके लालची बेटे। वे सब सच्चे मोतियों की सिर्फ यह एक माला देखकर ही चकाचौंध रह जाएँगे, उसके कदमों में लाल कालीन बिछा देंगे।

और तब?

वृद्ध के सिरहाने बैठ घंटों बतियाना है। कुछ उसकी विपदा सुननी है, कुछ अपनी सुनानी है। बर्फ के तीरों की तरह चलती हवा से टक्कर लेती हुई बूढ़ी बेगम अपनी उमंगों के सहारे चली जा रही थी।

हम उन्हें यह भी बताएँगे कि कैसी बेरहमी से हमारा अपना लाड़ला, हमारी नजरों के आगे से नन्ही सी जान को घसीटकर ले गया था... और मियाँ आपको शिकायत है कि सिर्फ आपके ही बेटे आपके वैरी हुए हैं!

यह सच भी था। आज तक अपनों की आलोचना सदैव वही करता रहा, तब बूढ़ी बेगम परवरदिगार का लाख-लाख शुक्र अदा कर अपने बेटे और बहू की तारीफ के पुल बाँधती रही।

चारों दिशाओं से चल रहे अंधड़ के धक्कों में बूढ़ी बेगम मँझधार में फँसी नाव की तरह झकोले खाने लगी। अब उसके पाँव भी ठीक से नहीं पड़ रहे थे। जैसे कोई पियक्कड़ नशे में झूमते हुए जा रहा हो, वह दो कदम आगे

बढ़ती थी, एक कदम पीछे हटती थी।

बीच में केवल एक मकान बचा था कि बूढ़ी बेगम को बिजली के खंभे का सहारा लेना पड़ा। चक्रवात में उड़ जाने से बचने के लिए खंभे से वह लिपट गई। पेड़ से झरे पत्ते उसके इर्द-गिर्द उलट-पुलट होते हुए टकरा रहे थे।

बूढ़ी बेगम ने बमुश्किल आँखें खोलकर वृद्ध की कोठी की ओर देखा और उसका साठ साल पुराना दिल चीत्कार कर उठा। वास्तव में कोहरे के कारण उसने कुछ भी साफ नहीं देखा था, मगर उसे जितना नजर आया, वही उसके जोड़-जोड़ को झकझोरने के लिए काफी था।

वृद्ध की कोठी के बाहर छोटी सी भीड़ इकट्ठा हुई थी। धुँधलाए हुए माहौल को रौशन करने के लिए दो मजदूर माथे पर पेट्रोमेक्स की एक-एक बत्ती लिये खड़े थे, फिर भी सबकुछ साया-दर-साया सा लग रहा था, कोठी के बाहर पड़ा जनाजा भी। कल रात में वृद्ध का निधन हो गया था।

बूढ़ी बेगम गश खाकर ढह जाए, इससे पहले आनंदीलाल वहाँ मौजूद था। क्या यह चमत्कार था? आनंदीलाल ने अपने शिवनेत्र द्वारा जान लिया था कि फलाँ दिन, फलाँ समय, फलाँ स्थान पर यदि वह नहीं पहुँचा तो उसकी देवी माँ दम तोड़ देगी?

बूढ़ी बेगम ने यही सच माना। वैसे आनंदीलाल आया था, वृद्ध के जनाजे को कंधा देने और किसी परछाईं को बिजली के खंभे के सहारे तूफान में टिकी देख यहाँ अकस्मात् चला आया था। मगर ऐन वक्त पर?

बूढ़ी बेगम उसे एकटक देख रही थी। तेजी से गुजरते हुए बादलों की तरह वे सारे दृश्य, जो आज तक पहेली बने हुए थे, उसकी पलकों के पीछे उठ रहे थे।

क्या वह भी अकस्मात् था, जब बेगम की प्रसूति की निश्चित तिथि के एक रोज पहले वह बाँसुरी बजाता हुआ हवेली के फौवारेवाले चबूतरे पर बैठा नजर आया था और उसी रोज बेगम को प्रसव हुआ था?

क्या वह भी इत्तफाक था कि बेगम के वालिद के इंतकाल की सूचना के आने के घंटा भर पहले उपस्थित होकर आनंदीलाल ने उसे मृत्यु की खबर को झेलने के लिए तैयार किया था? 'जन्नतनशीनों पर लोग आँसू क्यों बहाते हैं?'

स्मृति में ऐसी तो कई रेखांकित घटनाएँ आज भी ताजा थीं, मगर उन सबको मात देनेवाली हकीकत को वह कैसे नजरअंदाज कर सकती थी?

उस रात जब नवाब सआदत जाँ ने देहत्याग किया, आनंदीलाल बेगम के सपने में मौजूद था और शयनागार में भी। यही तो सुरमाए-सुलेमानी लगानेवाले फकीरों की पहचान होती है। वे एक ही समय दो स्थानों पर एक साथ दिखाई देते हैं।

वह बेगम के चरण छूने के लिए झुका कि उसने अपने पाँव हटा लिये। आनंदीलाल को ताज्जुब हुआ। कभी नहीं और आज उससे यह सौभाग्य क्यों छीना जा रहा था? क्या उससे कोई भूल हुई थी?

''नहीं, नहीं।'' सनसनाती हवा के झकोलों में बिजली के खंभे के सहारे स्थिर खड़े रहने का प्रयास करती हुई वह बोली, ''पीर-औलिया अपने मुरीदों के चरण नहीं छूते जी।''

''मगर मैं तो आपका बेटा हूँ।''

''आज हमें यकीन हो गया है, तुम मुरशिद भी हो।''

''आपने क्या मुझे आढ़ती-वाढ़ती समझा था?'' यकायक स्वर बदलते हुए आनंदीलाल के चेहरे पर शरारत भरी मुसकान लहलहा गई, ''मैं इस दौर का मसीहा हूँ, जिसका इंतजार इस गाँव के अंधों को आज भी है। खैर, आपने मुझे पहचान लिया, मेरे लिए यही गनीमत है।''

''तब हमें अपना एक मोजिजा नहीं दिखाओगे?''

''देवी माँ के लिए प्राण हाजिर हैं। कहिए इस अंधड़ को रोक दूँ या धरती की छाती को चीरकर आपके कदमों में एक झरना बहा दूँ?''

''ना, बेटा, ना। हम सिर्फ इतना चाहते हैं कि तुम हमारे हमदर्द मियाँ शराफत को फिर से जिंदा कर दो।'' आनंदीलाल से मिन्नत करते हुए उसकी आँखें डबडबा आईं, ''हम रोजाना तुम्हारे पाँव दूध से धोकर पिएँगे।''

''देवी माँ!'' उसने रेखांकित कर कहा, ''जिंदा उसे किया जाता है, जो मरा हो।''

वह चकरा गई। आखिर आनंदीलाल कहना क्या चाहता है?

उधर कोठी पर से जनाजा उठा। कलामे-शहादत पढ़ते हुए लोग पेट्रोमेक्स की रोशनी में कब्रिस्तान की दिशा में आगे बढ़े। उसी भीड़ की ओर संकेत देते हुए बूढ़ी बेगम ने हलकोरे लेती आवाज में पूछा, ''तब...तब वह जनाजा किसका जा रहा है?''

आनंदीलाल ने प्रतिप्रश्न किया, ''यह आपसे किसने कहा कि जनाजे में मियाँ शराफत अली है?''

इस बार वह सचमुच दंग रह गई। क्या कोठी में परिवार के किसी अन्य सदस्य की मृत्यु हुई होगी और उसने मान लिया कि वृद्ध का देहांत हो गया है? यह मुमकिन था। ''तब वह कहाँ है?''

''मेरे घर।''

''सच?''

''आप खुद चलकर उन्हें देख लें।''

वह तुरंत राजी हो गई।

हवाओं के जोर में थोड़ा फर्क जरूर दिखाई देता था, मगर अभी उसके पर नहीं कटे थे। आनंदीलाल ने थोड़ा आगे की ओर झुककर बूढ़ी बेगम को अपनी पीठ पर उठा लिया।

गाँव गलानियाँ का मौसम बालक की तरह चंचल था। अभी धूप तो अभी छाँव। अभी सुबह, अभी शाम। कभी दिन में रात, कभी रात में बरसात। परिवर्तन यहाँ का नियम था।

कोहरा छँटने लगा तो ढलते सूरज की किरणें आकाश में जामुनी रंगों से रँगोली बनाने लगीं। अंधड़ को पीछे छोड़ सुहावनी सिहरावन लिये आनंदीलाल बूढ़ी बेगम को अपनी पीठ पर लादे झील पर आया, तब मकान के भीतर से किसी शिशु के रोने की आवाज स्पष्ट उठ रही थी।

बूढ़ी बेगम सोच नहीं सकी कि आनंदीलाल के घर पालना बँधा होगा। क्या छम्मीजान इत्ते वर्षों के बाद अब माँ बनी थी? उसका अंदाजा बिलकुल सही था।

शराफत अली की अंतिम साँस छूटकर वापस नहीं लौटी, तब यहाँ बच्चे के रोने की आवाज गूँजी थी। फिर दाई ने बाहर आकर बखुशी आनंदीलाल को शुभ समाचार दिया था, ''बधाई हो...लड़का हुआ है!''

बूढ़ी बेगम आनंदीलाल की पीठ पर से उतरकर कभी रोते हुए बच्चे को देख रही थी तो कभी उसे गोद में लेकर हौले-हौले झुलाती हुई उसकी माँ को। नए जीव को निहार, जाने कैसी-कैसी भावनाएँ भीतर उठने लगीं। जी करता था, उसे उठाकर अपने सीने से लगा ले।

धीरे-धीरे बच्चे की आँख लगी, तब आनंदीलाल ने मौन तोड़ा, ''पहचाना इसे?''

बूढ़ी बेगम चौंकी, ''किसे?''

''आप भी कमाल करती हैं, देवी माँ!'' बच्चे के आगे घुटनों के बल बैठते हुए वह कह रहा था, ''इतनी जल्दी आप अपनों को भूल जाती होंगी, यह मुझे नहीं मालूम था।''

बूढ़ी बेगम अब भी हैरान थी, ''तुम छमिया की बात तो नहीं कर रहे हो जी?''

''मैं इस नन्हे-मुन्ने शराफत अली का जिक्र कर रहा हूँ।'' बच्चे को गुदड़ी के साथ उठाकर खड़े होते हुए उसने बूढ़ी बेगम को सौंपा। फिर बताया, ''अपने घर से निकलकर अन्नदाता सीधे हमारे यहाँ पधारे हैं।''

अपनी गोद में लिये हुए बच्चे को बूढ़ी बेगम ने गौर से देखा तो वह सोच में पड़ गई। मियाँ शराफत अली की तरह बच्चे के दाहिने हाथ में छह उँगलियाँ थीं।

❑

टूटी हुई और खोई हुई

लकड़ी के सहारे शबाना खाला कमरे के बाहर आई, तब बर्फ से ढके पूरब के सफेद पहाड़ अँधेरे में गायब हो चुके थे। बस स्टैंड के पास बैठे नेपाली कुलियों की आँखें कभी-कभी दूर तक जाती तारकोल की टेढ़ी-मेढ़ी सड़क के अँधेरे भेदने की कोशिश करतीं, लेकिन करीब के दरख्त, मकान की छतें और रास्तों पर छाई हुई बर्फ के सिवाय कुछ और देख पाना उनके लिए मुमकिन नहीं था। खामोश चेहरे लिये बीड़ी के सुट्टे खींचते वे अलमोड़ा से आनेवाली बस का इंतजार कर रहे थे।

धीरे-धीरे आगे बढ़ शबाना खाला पक्की सड़क पर आई और बस स्टैंड से दूर निकल गई।

इन रास्तों से उसका वर्षों का संबंध था। यहाँ के चप्पे-चप्पे पर पड़े कई छोटे-मोटे निशान सत्तर साल की उम्र में भी उसके हिए पर अंकित थे। यहाँ की कौन सी सड़क भुवाली और मुक्तेश्वर जाती है और किस सड़क से दुलहन बनकर वह कौसानी में दाखिल हुई थी, यह बतलाना उसके लिए उतना ही आसान था, जितना कि एक प्रेमी के लिए सिर्फ आँखों के इशारे से अपनी प्रियतमा को चाँद दिखाना।

बर्फ से ढके रास्ते पर जूती और लकड़ी के लंबे निशान छोड़ती, वह कच्चे रास्ते की ओर आगे बढ़ने लगी। उसे लगा कि हमेशा की तरह आज भी वह अपने कदम गिने, ताकि दो सौ कदम पूरे होने पर शौहर की कब्र के पास रुकने का होश रहे। किंतु सीने में होनेवाली धुकधुकी में कदम गिनना उसके लिए मुश्किल था। उसने दुआओं का सहारा लिया। एक-एक कदम वह आगे बढ़ने लगी। अँधेरी रात में अपनी आवाज ही उसे साथी लगी, साथी शराफत अली जैसी।

q

उसे वह दिन याद आया, जब वह शौहर की मौत के बाद पहली बार कब्रिस्तान में आई थी और उसके आँसुओं का बाँध टूट गया था। फिर घंटों तक चुपचाप धुली घास पर वह फीका चेहरा लिये बैठी रही थी। उसके दु:ख में शामिल होनेवाला उस समय कोई न था। सिर्फ बूढ़ा शराफत अली बीवी के वियोग में उदास हो थोड़ी दूर की एक कब्र के पास खामोश बैठा था। उसकी देह उम्र से आगे निकल चुकी थी। चेहरा झुर्रियों से भरा। चमड़ी पुराने कागज सी जीर्ण। जिस्म को जमाने के थपेड़ों ने झकझोर दिया था।

''खाला!'' शराफत अली ने सहानुभूति भरी निगाह डालते हुए कहा, ''इनसान दुनिया में दो राज नहीं जान पाया—एक जिंदगी, दूसरा मौत। ये दोनों राज खुदा की मुट्ठी में बंद हैं। वही जिंदगी देता है और वक्त आने पर उसे वापस लेने का हक भी उसी को है।''

शबाना खाला ने चेहरा उठाकर उसकी ओर देखा। देखी आँसुओं की दो बड़ी बूँदें। जन्नतनशीन बीवी का प्यार उसकी आखों में झलक रहा था। उसने चुपके से नम आखों पर उँगली फिराई और कुरान पाक की अनेक आयतें जबानी कह सुनाईं। जब शब्दों को अलग-अलग कर उसने अनुवाद किया, तभी शबाना खाला समझी थी कि शराफत अली इनसान की रूह की पवित्रता और कर्तव्यपालन के बारे में जिक्र कर रहा है।

उस रात शबाना सो न सकी। कमरे के बीच अँगीठी रख वह बदन को गरमाती बैठी रही। उसका दिल अजीब सी झुरझुरी अनुभव कर रहा था। लाल अंगारों की चमक उसकी आँखों में नाच रही थी। न जाने क्यों उसके भीतर हलचल मच गई। शराफत अली के शब्द बड़ी देर तक उसके कानों में गूँजते रहे।

सुबह होने पर बेटा चाय का प्याला ले आया। एकाएक चौंकते हुए शबाना ने आँखें उठाईं। गुजरे समय का उसे

इल्म हुआ और वह मुसकरा दी।

''अम्मी,'' बेटे ने उसकी आँखों में पैदा हुई चमक गौर से देखते हुए कहा—''क्या बात है? मैं तो सिर्फ चाय लाया हूँ।''

चाय का प्याला थाम नीचे रखते हुए उसने कहा, ''ममदू बेटा, मेरे लिए कुछ काम भी ले आ।''

क्षणभर तो उसकी समझ में कुछ न आया। परेशान नजरों से वह बूढ़ी माँ को देखता रहा।

''बेटा!'' उसने फिर कहा, ''एक सिलाई की मशीन ला दे मुझे। जुम्मन चाचा के यहाँ थैलियाँ सिलने का काफी काम आता है। मेरा वक्त भी आसानी से गुजर जाएगा और साथ ही थोड़ी आमदनी भी हो जाएगी।''

''क्या मेरी तनख्वाह के दो सौ रुपए कम पड़ते हैं, जो इस बुढ़ापे में...?''

''किसने कहा कि मैं बूढ़ी हूँ?'' ममदू के शब्द पूरे हों, इसके पहले शबाना खाला बोल उठी। उसका चेहरा रोबिला हो गया। जिस्म तन गया। फिर मुसकराते हुए उसने बात आगे बढ़ाई, ''आज भी काम करने की ताकत है मुझमें। मैं काम करूँगी। कोई भी काम...''

ममदू खामोशी से देखता रहा। शबाना अम्मी में आए हुए परिवर्तन का राज उसकी समझ से परे था।

दूसरे हफ्ते शबाना खाला के कमरे में सिलाई की मशीन लग गई—छोटी सी, सुंदर। चटाई बिछाकर वह तुरंत काम में जुट गई। उसके लंबे हाथ फुरती से पहिए फेरने लगे। उसकी उँगलियाँ ऊँची-नीची होती सुई से खेलने लगीं। मशीन से उठती खड़खड़ाहट की आवाज उसके कमरे के शांत वातावरण में गूँज उठी।

ममदू ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की, पर वह अपने इरादे पर अटल थी। ममदू जब भी उसकी उम्र की ओर इशारा कर कुछ कहने का साहस करता, वह भड़क उठती और फिर मुसकराकर एक ही जवाब देती, ''अभी मुझे बुढ़ापा नहीं आया, बेटा! देख, मेरे हाथ तो जवानों से भी ज्यादा फुरती से काम करते हैं।''

तड़के उठ वह काम पर बैठ जाती और सूरज ढलने से पहले तैयार थैलियों के कई बंडल बनाकर जुम्मन चाचा की दुकान पर पहुँच जाती।

''बहुत काम करती हो, खाला!'' चाचा थैलियाँ गिनते हुए मजाक में कहते। खाला हँसकर नई थैलियों का ऑर्डर लिखवाती और धीरे-धीरे शौहर की कब्र की ओर चल देती।

शराफत अली उसे रास्ते में ही मिलता। धीरे-धीरे बातें करते दोनों कब्रिस्तान में पहुँचते और अपने-अपने प्रियजनों की कब्र पर फातिहा पढ़ हरी घास पर बैठ जाते। शराफत अली जाकिट की जेब से रूमाल निकाल अंदर सँभालकर रखी गुड़धानी उसके सामने रखता।

शबाना खाला के चेहरे पर मुसकान की एक बारीक लकीर दौड़ जाती। रूमाल में से एक दाना उठाती और जीभ पर रख चूसने लगती।

''अच्छी लगी?'' वह धीरे से पूछता।

शबाना का सिर तीन-चार बार ऊपर-नीचे होकर 'हाँ' कहता। फिर वह एक दाना और उठाती और उसका जायका लेती हुई चोली में से पुड़िया निकाल, खोलकर घास पर रख देती।

''आप ये चखकर देखिए।''

शराफत अली कागज को हाथ में ले आँखों तक ऊँचा करता।

''गाजर का हलवा है?'' सूँघकर वह पूछता।

''आप कहते थे न कि आपकी बेगम जाड़े के मौसम में आपको गाजर का हलवा बनाकर खिलाती थी। आज मैं बना लाई हूँ।''

शराफत अली उँगली को चम्मच बनाकर और मुँह में रख धीरे-धीरे हलक से उतार जाता। शबाना खाला की आँखें उसके चेहरे पर ठहर जातीं। शराफत अली के ऊपर-नीचे होते हुए जबड़ों को देख वह बच्चे की तरह खिलखिला उठती।

q

बिजली का पहला खंभा आने पर वह रुकी। एक गहरी साँस ली। उसका झुका हुआ सिर अपने-आप ऊपर उठा और साँस छोड़ते हुए फिर झुक गया। बर्फ में घुसी हुई छड़ी को बाहर खींचकर छोटे-छोटे निशान छोड़ती वह फिर आगे बढ़ने लगी। जूतियों तले बर्फ को कुचलती वह कच्चे रास्ते पर आई और ढलान पर से उतर गई।

q

हर शुक्रवार का उसका यह नियम था। पंद्रह वर्षों से उसका यह कार्यक्रम बिला नागा चला आ रहा था। सिर्फ उन्हीं दिनों वह कमरे की चहारदीवारी के बीच बैठ शरीर सेंकती रहती, जब बरसात का पानी उसके परिचित रास्तों को छिपा देता या हिम-वर्षा से पेड़ों की डालियाँ झुक जातीं। इन मौसमों के खत्म होते ही वह शौहर की कब्र पर जाने के लिए निकल पड़ती।

शबाना खाला उस दिन को भी न भूल सकी थी, जब शराफत अली ने उसके हाथ में छड़ी न देख पूछा था, ''आज आप लकड़ी नहीं लाईं।''

''न जाने कहाँ रख दी है कि मिलती ही नहीं।'' कहते-कहते उसने प्रतिप्रश्न किया, ''आपकी छड़ी भी मैं नहीं देख रही। क्या वह भी खो गई?''

''टूट गई।'' शराफत अली ने चेहरे को गंभीर बनाए रखते हुए कहा, ''काफी पुरानी थी न।''

उसका जवाब सुनकर शबाना खाला चुपके से हँस दी और साथ शराफत अली का चेहरा भी दमक उठा था।

q

बिजली का दूसरा खंभा आते-आते उसने थोड़ी बेचैनी महसूस की, जो आज तक उसने कभी न जानी थी। एक हाथ से उसने लकड़ी पर जोर दिया और दूसरे हाथ से खंभा पकड़कर वह झुक गई। उसकी साँसों की गति दुगुनी हो गई। धूमिल आँखें मिचमिचाते हुए उसने कब्रिस्तान की ओर देखा। चेहरे पर सफेदी पुत गई। स्वस्थ होते ही उसने फिर छड़ी सँभाली। अब उसके लिए सिर्फ एक खंभा बचा था। इसके बाद कब्रिस्तान में दाखिल होना था।

उसके पैर आगे बढ़ने लगे। उसे लगा कि शौहर की कब्र आज उससे दूर चली गई है, मीलों दूर। यही फासला शराफत अली के साथ रहते आसानी से पार हो जाता था। लेकिन आज शबाना खाला का साथ देने के लिए वह जिंदा न था। अचानक इस जहान को छोड़कर चला गया था। किसी को बिना कुछ कहे-सुने एक टूटे तारे की तरह वह गायब हो गया था।

पगडंडी पूरी कर वह कब्रिस्तान में दाखिल हुई। आज उसकी आँखों के सामने दो कब्रें थीं—एक शौहर की, दूसरी लाल मिट्टी से उभरी शराफत अली की। दोनों कब्रें बर्फ तले छिपी थीं। खामोश निगाहों से वह उन्हें देखती रही। आज उसे सांत्वना देनेवाला कोई न था।

उसका बदन टूटने लगा। अंगों में पीड़ा उठी। दम भर के लिए उसे महसूस हुआ, मानो खून की धारा उसके मुँह और नाक से बहकर बर्फ की सफेदी पर फैल जाएगी। एकबारगी वह खड़ी हो गई। आँखों से छलकने की तैयारी कर रहे आँसुओं को दुपट्टे के छोर से पोंछती, वह घर की तरफ चल दी।

ममदू उसकी बाट जोहता कमरे में ही बैठा था। ''अम्मी!'' शबाना खाला को अंदर आते देख उसने धीरे से पूछा, ''जुम्मन चाचा आपसे मिले?''

कुछ भी जवाब दिए बिना वह अँगीठी के आगे बैठ गई। ममदू उसके पास आया और फिर कहा, ''तीन दिनों से काम जैसा का तैसा पड़ा है। जुम्मन चाचा कहते थे...''

शबाना खाला ने आँखें उठाए बिना ही कहा, ''बेटा! अब मुझसे काम नहीं होता। मैं बूढ़ी हो गई हूँ।''

❑

कब्र पर खिले दो फूल

बूढ़ी शबाना लकड़ी के सहारे कोठी से बाहर निकली, तब बर्फ से ढके पूरब के पहाड़ धुंध में गायब थे। बस के अड्डे के पास बैठे नेपाली कुलियों की आँखें दूर तक गई तारकोल की टेढ़ी-मेढ़ी सड़क की धुंध भेदने की कोशिश करतीं, लेकिन करीब के पेड़ों, मकानों के छज्जों और रास्ते पर जमी हुई बर्फ के सिवाय कुछ और देख पाना उनके लिए मुमकिन नहीं था। सर्द खामोशी में बीड़ी के कश लेते वे अलमोड़ा से आनेवाली बस का इंतजार कर रहे थे।

बुढ़िया को न बस में दिलचस्पी थी, न कुलियों से उसे कोई सरोकार था। न बरगद के पेड़ तले के मदरसे से उसे मतलब था, न ही चौराहे की भीड़ से। फिर भी उन सबको नजरअंदाज करना थोड़ा मुश्किल था, कम-से-कम फूलवाले की दुकान को।

चलते-चलते बुढ़िया पलभर के लिए वहाँ रुकी। उसे कुछ कहने की जरूरत न थी। फूलवाले ने एक पुड़िया के साथ सात धूपबत्तियाँ उसके हाथ में थमा दीं। वह फिर आगे बढ़ी।

इन रास्तों से उसका वर्षों पुराना रिश्ता था। यहाँ के हर मोड़ पर खड़े कई छोटे-बड़े निशान सत्तर साल की उम्र में भी उसके मन पर स्पष्ट अंकित थे। यहाँ की कौन सी सड़क भवाली और मुक्तेश्वर जाती है और किस मार्ग से वह दुलहन बनकर पहली बार इस गाँव में दाखिल हुई थी, यह बतलाना उसके लिए उतना ही आसान था, जितना कि प्रेमियों के लिए आँखों-आँखों में दिल की बातें समझाना होता है।

तब शबाना भी जवान थी। उसकी चाल में नजाकत थी। (चलते-चलते वह जूतियाँ नहीं घिसटती थी।) उसकी आँखों में नशा था, उसकी आवाज में जादू था। 'तालकटोरा' में कहा जाता था कि ताजियादारी तो कोई शबाना से सीखे, मर्सियाखानी तो कोई उससे सुने। जन्नतनशीं नवाब अमीरुद्दौला के बेटे सआदत जाँ ने वह सुनी और दिल दे बैठे।

बात यों हुई थी कि उन दिनों सआदत जाँ मोहर्रम मनाने के लिए पड़ोस के गाँव तालकटोरा की करबला के पूरब में अपना तंबू ताने हुए थे। रात के सन्नाटे में उन्होंने एक दर्द भरी आवाज सुनी। वह बाहर दौड़ आए तो उन्होंने क्या देखा?

चारों ओर चाँदनी बिखरी थी। पोशाक में लिपटी हुई कुछ औरतें ताजिया लिये दूर से आ रही थीं। सभी के बाल खुले थे। आगे चल रही एक औरत के हाथ में मशाल थी। उसकी रोशनी में एक ऊँची, सुडौल लड़की मीर अनीस की किताब से पढ़कर तरन्नुम में मर्सिया गा रही थी। बाकी औरतें बीच-बीच में उसका साथ दे रही थीं।

जब कारवाँ-ए-शहर मदीना लूटा हुआ।
पहुँचा करीब शाम के कैदी बना हुआ
नेजे पर सिर हुसैन का आके धरा हुआ
और पीछे-पीछे बीसियों का सिर खुला हुआ।

वह सन्नाटा, रात का वह वक्त, बिछी हुई चाँदनी, खुले सिर मातमय करती आ रही औरतें और करुणाभरी धुन...सआदत जाँ की जगह कोई और होता तो वह भी दिल दे बैठता। शबाना को पाना सिर्फ सआदत जाँ की ही किस्मत में लिखा था।

बर्फ से ढके रास्ते पर जूती और लकड़ी के निशान छोड़ती वह कच्चे रास्ते की ओर मुड़ गई। उसे लगा कि हमेशा की तरह आज भी वह अपने कदम गिने, ताकि तीन सौ ग्यारह की गिनती पूरी होने पर कब्रिस्तान में प्रविष्ट होने का

उसे खयाल रहे। यह जरूरी भी था, क्योंकि कभी-कभार अपनी सनक में वह कब्रिस्तान के आर-पार चली जाती थी। फिर लौटकर आना दुश्वार हो जाता था। मुश्किल यह थी कि बदले हुए मौसम के कारण बार-बार उसकी साँस फूल रही थी और ऐसी स्थिति में गिनती याद रखना आसान नहीं था।

उसने दुआओं का सहारा लिया। जूतियाँ घिसटती, एक-एक कदम उठाती वह कब्रिस्तान में दाखिल हुई और पैंतीस कदम पर स्थित पति की कब्र की दिशा में ऐनक के पीछे से कुछ मिनट देखती रही। इतना समय साँस पर काबू पाने के लिए जरूरी भी था।

जी चाहा कि प्रवेश-द्वार के अंदर, रास्ते के दोनों किनारे आमने-सामने रखी गई दो बेंचों में से एक पर वह बैठ जाए। (दूसरी पर एक बूढ़ा बैठा था।) पर उसमें एक खतरा था। यह मरी उम्र ही ऐसी होती है कि एक बार बैठने के बाद उठने को मन ही नहीं करता था। और अगर बैठना हो तो कब्र पर सिर झुकाए क्यों न बैठा जाए? वहाँ पति के करीब होने का सुख तो मिलता है।

बेंच का मोह छोड़कर वह फिर आगे बढ़ी और कुछ देर में पति की कब्र पर आ पहुँची। सबसे पहले उसने करीब के पेड़ से छड़ी टिकाई और साथ लाई पुड़िया खोलकर फूलों की चादर कब्र पर बिछा दी। अभी तो उसने धूपबत्तियाँ जलाई नहीं थीं और आँखें नम हो गईं। भरसक कोशिश करने के बावजूद वह टूट गई, जहाँ खड़ी थी, वहीं बैठ गई। धूपबत्तियाँ बिखर गईं। उसके दोनों हाथ कब्र पर फैल गए। मानो वह कब्र से नहीं, पति सआदत जाँ से लिपटकर रो रही थी। आज अगर शादी की सालगिरह का दिन न होता तो, शायद वह अपने जज्बात पर से काबू भी न खोती।

औरत की जिंदगी में एक यही तो दिन होता है, जिसकी यादों का कारवाँ उसके दिल के किसी अज्ञात कोने में डेरा डाले पड़ा होता है। बस, उसे तो एक बहाना चाहिए किस्सागोई के लिए। सआदत जाँ की ओर से जब कोई मश्शाता शादी का प्रस्ताव लेकर आई तो शबाना के घर में मानो यकायक ईद का चाँद निकल आया हो, ऐसे हड़बड़ी मच गई। शबाना के पिता मीर अली हसन भी कोई मामूली शख्सियत नहीं थे, लेकिन सामने से रिश्ता आना और वह भी एक देदीप्यमान, कुलीन, सुसंस्कृत नवाब का, अपने आप में अहमियत रखता था।

सबकुछ इतनी तेजी से हो गया कि शबाना खुद चौंधिया गई। मुँहदिखाई की रस्म में उसने पहली बार दुल्हे का चेहरा शीशे में देखा था और वह भी झलक भर। इस झलक को कल्पना में सँजोकर वह अपने दिल में अंकित करे, इससे पहले तो बारात आ पहुँची। डोली उठी, तब उसकी एक आँख रो रही थी और दूसरी हँस। कैसे-कैसे भाव उठे थे भीतर! न कभी जाने, न पहचाने थे।

''बेगम...'' वस्ल की रात सआदत जाँ ने घूँघट उठाकर कहा था, ''हम आपको शबाना के बजाय सुबू बेगम कहें तो आप बुरा तो नहीं मानेंगी?''

उसने 'ना' में सिर हिला दिया।

''जानती हैं, सुबू का मतलब क्या होता है?''

उसने 'हाँ' में सिर हिला दिया।

''हम कैसे मानें?''

बेगम शबाना को होंठ खोलने पड़े, ''सुबू माने सुराही शराब की—हम सुबू!''

''जाम भी आप, मय भी आप, मीना भी आप...'' कहते-कहते सआदत जाँ ने रोशनी गुल कर दी थी।

बुढ़िया के जीवन में आज न रोशनी थी, न रौनक। पति के देहांत के बाद कुछ बचा था तो वह थी—एक कब्र और थोड़े आँसू।

माथे पर किसी के प्यार भरे हाथ का स्पर्श होने पर उसने चेहरा उठाया। ''बेगम साहिबा!'' बूढ़ा शराफत अली कह रहा था, ''इनसान दुनिया में दो राज नहीं जान पाया : एक—जिंदगी, दूसरा—मौत। ये दोनों खुदा के करिश्मे हैं। वही जिंदगी देता है और वक्त आने पर उसे वापस लेने का हक भी उसी को है।''

बुढ़िया ने कुछ सुना ही नहीं। वह लकड़ी के सहारे सामने खड़े बूढ़े को एकटक देखती रही। उसका चेहरा झुर्रियों से भरा था। जिस्म उम्र से आगे निकल चुका था। चमड़ी सूखे, पूराने कागज सी जीर्ण लगती थी। कमर जमाने के थपेड़े खाकर थोड़ी झुक गई थी।

बुढ़िया सोच रही थी। जब वह यहाँ आई, तब शराफत अली प्रवेश की एक बेंच पर उदास बैठा था। इस वक्त सामने खड़ा था। कुछ कह रहा था। शायद दिलासा दे रहा था। बुढ़िया की आँखों से बहते आँसू अभी रुके न थे। अलबत्ता रुक-रुककर आते थे और चुपचाप बह जाते थे।

जब वह पति की मौत के बाद पहली बार यहाँ आई थी, सीना पीट-पीटकर रोई थी। उसके आँसुओं का बाँध टूट गया था। फिर घंटों तक वह चुपचाप हरी घास पर बैठी रही थी। तब उसका दु:ख बाँटनेवाला यहाँ कोई न था।

''रोने से मरनेवाले वापस तो नहीं आते!'' कहते हुए बूढ़ा उसके सामने बैठ गया। ''और वैसे भी आपके शौहर को जन्नतनशीं हुए एक अरसा बीत गया, क्यों मरहूम की रूह को तकलीफ पहुँचा रही हैं!''

अब बुढ़िया ने होंठ खोले, ''अपनों की याद में दो आँसू बहाना भी...''

''आपकी सेहत के लिए ठीक नहीं। देखिए, मेरी इन आँखों को देखिए। आपको एक बूँद भी नजर नहीं आएगी।''

''सच कहें तो हम भी रोना नहीं चाहते। मगर ये आँसू हैं, जो न रुकते हैं, न खत्म होते हैं...''

दुपट्टे से चेहरा पोंछकर उसने लकड़ी उठाई और उसी के सहारे धीरे-धीरे खड़ी हो गई। ''आपकी बेगम का इंतकाल इसी महीने हुआ है न?''

''बीस दिन पूरे हुए।'' बूढ़ा भी खड़ा हो गया था, ''यही वक्त था, जब जनाजा यहाँ लाया गया था।''

''और इतनी जल्दी आप उन्हें भूल भी गए?'' दोनों साथ-साथ प्रवेश-द्वार की ओर कदम बढ़ा रहे थे। ''काश कि हम भी मर्द होते!''

बात थोड़ी चुभनेवाली थी, पर बूढ़े ने बुरा नहीं माना, बल्कि उसने बातों का सिलसिला आगे बढ़ाया, ''आप अपने मरहूम की कब्र पर हफ्ते में एक बार आती हैं, सच?''

''यह हमारा उनसे वादा था, जब तक जिएँगे, जुमेरात-जुमेरात फूलों की चादर चढ़ाने बराबर आते रहेंगे।''

''मैं यहाँ रोजाना आता हूँ।'' प्रवेश-द्वार की बेंच तक आकर बूढ़ा रुक गया। फिर हाथ टेककर बैठते हुए उसने आगे कहा, ''ऐसा लगता है, जैसे मैं अपने सहन में खाट बिछाकर बैठा होऊँ और बेगम अभी-अभी गाजर का हलवा बनाकर दरी पर लेटी हों। जो...जो मेरी हर साँस में धड़कती हो, उसके लिए मैं कैसे आँसू बहाऊँ?''

बुढ़िया उसके करीब बैठते हुए बोली, ''क्या आपको अकेलापन जरा भी महसूस नहीं होता?''

''जब मैं उसे आवाज देता हूँ और कही से कोई जवाब नहीं आता, तब जरूर महसूस होता है।''

''तब आप क्या करते हैं?''

''किसी काम में मसरूफ हो जाता हूँ। कोई काम न हो तो मैं पैदा करना भी जानता हूँ। मसलन...'' कहते हुए उसने जेब से माचिस की डिबिया निकालकर दोनों के बीच, बेंच पर उलट दी। ''मसलन एक-एक तीली उठाकर फिर डिबिया में सजाने का काम।''

बुढ़िया हैरत से देखती रही। बेंच पर बिखरी पड़ी तीलियों को, बूढ़े की उँगलियों को, जो एक-एक तीली को उठाकर सलीके से डिबिया में रख रही थीं।

''मेरी मदद नहीं करेंगी आप?''

जुमला कानों में पड़ते ही बुढ़िया अपने खयालों से सहसा जाग उठी, फिर थोड़ा सा मुसकराई और बूढ़े के साथ वह भी व्यस्त हो गई।

उस दिन रात देर तक वह सो न सकी। अपने कमरे के बीच अँगीठी पर शरीर को तापती बैठी रही। उसका दिल परदार हो गया था। ऐसा हलका कि जैसे किसी उड़ती चिड़िया का एक पंख टूटकर हवा के साथ बहता चला जा रहा हो।

उसकी नींद भी वैसी ही मुलायम थी। उसकी पलकें गिरी थीं, पर वह सो रही थी या सिर्फ लेटी थी, यह कहना मुश्किल था, क्योंकि उसके होंठ मुसकरा रहे थे। उसने आँखे खोलीं तब नीम-अँधेरा था और सामने खड़ी चंदा तीखी आवाज में कुछ कह रही थी, ''आपने मुझे बुलाया, मालकिन?''

वैसे यह सवाल उसने दुबारा किया था। बूढ़ी शबाना अभी भी उसे हैरत से देख रही थी, जैसे अपनी नौकरानी को उसने पहले कभी देखा ही न हो।

''तुम...अब तक जाग रही हो!'' आखिर उसने पूछा। जवाब में चंदा खिड़की तक गई और बड़े-बड़े परदे किरकिरी आवाज के साथ हटा दिए। सूरज की किरणों का सैलाब भीतर धँस आया। बुढ़िया सीने पर से कंबल खिसकाकर बैठ गई।

''अब बताइए...'' चंदा ने फिर सामने आते हुए कहा, ''क्या काम है?''

बुढ़िया ने सिर खुजलाया। कुछ न सूझा तो यों ही पूछ लिया, ''माचिस होगी?''

''माचिस का आप क्या करेंगी?''

''हाँ, तुम ठीक ही कहती हो।'' कहते-कहते वह मुसकरा दी। उस मुसकराहट में बिखरी हुई कुछ तीलियाँ थीं, ''ऐसा करो चंदा, यहाँ से अँगीठी ले जाओ और हमारे लिए एक प्याली चाय ले आओ।''

केतली में चाय की पतीली उड़ेलते हुए चंदा को लगा, आखिर उसकी अच्छी-खासी, सुलझी हुई मालकिन भी सठियाने लगी है। पर उसे क्या पता कि यह तो सिर्फ शुरुआत थी।

एक ट्रे में चाय की केतली और प्याली रख वह बुढ़िया के कमरे में लौटी तो चौखट में ही उसके पाँव ठिठक गए। बुढ़िया एक स्टूल पर चढ़ी थी और बरसाती में रखे पुराने सामान के बीच फँसी हुई सिलाई की मशीन को खींच निकालने के लिए जैसे कुश्ती लड़ रही थी। मशीन भी मानो पिछले जन्म की सौतन हो, ऐसे टस से मस नहीं हो रही थी।

चंदा जहाँ खड़ी थी, वहीं उसने चाय की ट्रे रखी और बुढ़िया के पास दौड़ आई। अब न वह स्टूल पर चढ़कर बुढ़िया की मदद कर सकती थी, न ही बुढ़िया का हाथ खींचकर उसे जबरन नीचे उतारने की उसकी औकात थी।

''मुझ पर न सही...'' झुँझलाकर वह बोली, ''कम-से-कम अपनी उमर पर तो तरस खाइए!''

''तुम जरा इस ओर आ जाओ!'' बुढ़िया ने उसकी सलाह अनसुनी कर उसे स्टूल और बरसाती के बीच खड़े रहने को कहा तो वह और झल्लाई, ''आज आपको हो क्या गया है? कहीं टाँग-वाँग टूट गई तो इस बुढ़ापे में...''

''बुढ़ापा!'' सिलाई की मशीन का पिंड छोड़ बुढ़िया ने सिर झुकाया और चंदा की खबर ली, ''कौन है बूढ़ा यहाँ? तुम? तुमने तो अभी-अभी सोलहवाँ सावन देखा है।''

चंदा सोच न पाई कि उसे डाँटा जा रहा है या उससे मजाक किया जा रहा है।

''कमबख्त, यह निगोड़ा संचा भी ऐसे फँसा है कि...'' कहते हुए एकाएक बुढ़िया सिलाई की मशीन की ओर मुड़ी और स्टूल डगमगा गया। अगर चंदा सही समय, सही जगह मौजूद न होती तो बुढ़िया के सौ साल उसी क्षण पूरे हो

गए होते।

बुढ़िया को इसकी परवाह कहाँ थी। वह फिर स्टूल पर चढ़ने गई। लेकिन इसके पहले चंदा ने स्टूल को अपनी ओर खिसका लिया। फिर खुद ही ने ऊपर चढ़कर सिलाई की मशीन नीचे उतारी।

हाथ की यह छोटी सी मशीन अगर अपने डिब्बे में बंद होती तो हर्ज न था। लेकिन यह तो खुली थी और न जाने कितने सालों से कबाड़ में पड़ी थी। इसे साफ करने में चंदा के दो-तीन घंटे शहीद होनेवाले थे।

रसोईघर से वह झाड़न ले आए, तब तक तो बुढ़िया ने अपने एक पुराने दुपट्टे से सफाई का काम शुरू कर दिया था। जैसे कोई दाई शिशु को मालिश कर रही हो, वैसे बड़ी नजाकत से वह मशीन की घिस-घिसकर सफाई कर रही थी। चंदा को यह नागवार लगा।

''घर के सारे काम आपने खुद करने का फैसला लिया हो तो यहाँ मेरी क्या जरूरत है?'' वह गुर्राई, ''दे दो छुट्टी!''

''छुट्टी...'' पुरजों में तेल डालते हुए बुढ़िया मन-ही-मन मुसकराई, ''हम तो तुम्हें इस कोठी की मालकिन बनाने की सोच रहे हैं।''

चंदा की आँखें थोड़ी फैलीं तो बुढ़िया ने कहा, ''हमने तुम्हारी जगह ली। तुम हमारी ले लो।''

चंदा को लगा बुढ़िया के दिमाग के पुरजों में भी तेल डालने की जरूरत है। हो-न-हो उसका एकाध पुरजा जरूर खिसक गया है, वरना यह बुढ़िया इतनी रसीली कभी न थी—आखिरी दो सालों से तो नहीं ही।

चंदा को भी इस कोठी में आए दो साल हुए थे। तब से आज तक बुढ़िया कभी हँसी हो या मुसकराकर मजाक किया हो, ऐसा उसे याद न था। उसने तो जब भी बुढ़िया की ओर देखा था, एक संजीदा चेहरा सामने आया था। लेकिन अब बात और थी।

जुम्मन चाचा को एहसास हुआ, बात अनोखी भी थी। ''बेगम साहिबा, आप!'' बुढ़िया को अपनी दुकान के सामने खड़ी देख उसने ताज्जुब जताया, ''कहीं रास्ता तो नहीं भूल गईं?''

''इत्ता सा गाँव है।'' बुढ़िया की नजरें दुकान में काम कर रहे दरजी तथा उनकी बड़ी-बड़ी मशीनों पर घूम रही थीं, ''इसमें छोटी सी एक सड़क है। इस सड़क पर सत्तर साल में हम राह नहीं भूले तो अब क्या भूलेंगे।''

''सत्तर साल में आपने भूले से भी कभी हमारी दुकान में कदम नहीं रखा।'' बुढ़िया को ओटले की दो सीढ़ियाँ चढ़कर अंदर आते देख जुम्मन ने कहा, ''कहिए, चाय लेंगी या दूध?''

''हम तो काम लेने आए हैं।''

''क्या! क्या कहा?''

अब तक बुढ़िया उसके सामने चटाई पर बैठ गई थी। दोनों के बीच एक कलमदान था, जिस पर हिसाब-किताब की एक लाल पोथी खुली पड़ी थी!

''हमें ऑर्डर का काम चाहिए, चाचा!'' बुढ़िया ने इत्मीनान से कहा।

जुम्मन हँस दिया, ''खिंचाई कर रही हैं आप!''

''हम भला आपसे क्यों मजाक करें?''

''आपका बेटा दिल्ली में है। करोड़पति है। हर माह कम-से-कम दो-पाँच हजार रुपए तो भेजता ही होगा।''

''मियाँ, जो मिठास मेहनत की रोटी में होती है, वह बेटे की कमाई में कहाँ?''

जुम्मन की आँखें अभी भी बूढ़ी शबाना का चेहरा टटोल रही थीं, ''ये एहसास आपको अचानक कैसे हुआ?'' उसने फिर पूछा।

''अब आप हमें काम देते हैं या हम किसी और दुकान पर जाएँ?''
''आपके पास सिलाई का संचा होगा?''
''कल ही साफ करके तेल डाला है।''
''अरे मुश्ताक!'' झाड़ू से कपड़े की कतरनें इकट्ठी करते नौकर से उसने कहा, ''थैलियों के पचास टुकड़े बाँध दे।'' और बुढ़िया की ओर मुड़ा, ''एक थैली सीने के हम दस पैसे देते हैं।''
''हमें मंजूर है।'' कहते हुए बुढ़िया की आँखों में एक हलकी सी चमक उभरकर चेहरे पर फैल गई।

बुढ़िया की दिनचर्या अब बदल गई। पहले वह तड़के उठती थी, फजर की नमाज पढ़ती थी और चाय पीकर सो जाती थी। फिर ग्यारह और बारह के बीच जागकर रसोईघर में एक चक्कर लगाती थी, चंदा को कुछ हिदायतें देती थी, तब तक जोहर और अस्र की नमाज का वक्त हो जाता था। वह नमाज पढ़, खाना खाकर फिर सो जाती थी तो शाम में उसकी आँखें खुलती थीं।

उसका यह समय सहन में बैठकर आसमान को निहारने का था। वह देर तक घूरती रहती। परिंदों के झुंड को एक दिशा से दूसरी दिशा में जाते हुए देखती रहती, सोचती रहती—ये पंछी कहाँ जाते होंगे? जन्नत कहाँ होगी? उसके मियाँ कहाँ होंगे? कौसर के किनारे हूरों के बीच बैठे होंगे? ऐसे हसीन माहौल में उन्हें हमारी याद आती होगी?

इन सवालों के जवाब मिलें, इससे पहले सूरज ढल जाता। वह भी मगरिब इशा की आखिरी सात रकात नमाज पढ़, खाना खाकर सो जाती।

आज पहली बार बुढ़िया अपनी सवेरे की नमाज चूक गई। उसने घंटा भर बाद, कजा नमाज अदा कर दिल को दिलासा दिया—खुदा तो गफुरूर रहीम है, परम कृपालु है, माफ कर देगा और सिलाई का संचा लेकर दरी पर बैठ गई। तुरंत वह काम में भी जुट गई। उसके नाजुक हाथ फुरती से पहिया घुमाने लगे...उसकी उँगलियाँ नाचती हुई सुई के इर्द-गिर्द खेलने लगीं। मशीन से उठती हुई खड़खड़ाहट कोठी की खामोशी में गूँज उठी।

चौखट पर बैठ गेंहूँ साफ करती चंदा बीच-बीच में कनखियों से बुढ़िया की ओर देख लेती थी। उसकी नजरों में कुछ प्रश्न थे तो कुछ तल्खी भी थी। अब तो सिलाई की मशीन की आवाज भी उसे खलने लगी। पर वह लाचार थी। जब भी उसने बुढ़िया की उम्र की ओर इशारा कर कुछ कहने का साहस किया था, बुढ़िया भड़क उठी थी। लेकिन जवाब हँसकर ही दिया था, ''अभी हमें बुढ़ापा नहीं आया, बेटी। देखो, हमारे हाथों में तो बिजलियाँ भरी हैं।''
''मालकिन!'' चंदा ने आज नया रुख लिया, ''आपके बेटे को पता चलेगा कि आप दस-दस पैसों में थैलियाँ सिलती हैं तो वे नाराज नहीं होंगे?''

बुढ़िया ने उसकी ओर बिना देखे ही 'ना' में सिर हिला दिया।
''क्यों?''
''हम पैसों के लिए थोड़े ही काम करते हैं।''
''तब?''
''तीलियों के बदले करते हैं।'' पहिए को रोक उसने चंदा की ओर देखा, ''या तो माचिस उलटो या फिर संचा चलाओ। हमें यही काम सही लगा।'' आखिरी जुमला कहते-कहते बुढ़िया ने फिर मशीन शुरू की और थैलियाँ सिलने में व्यस्त हो गई। चंदा के हाथ में गेंहूँ की थाली धरी-की-धरी रह गई। वह एकटक बुढ़िया के चेहरे को देखते हुए सोच रही थी कि बुढ़िया के जवाब में पहेली थी या पागलपन?

हकीकत में बूढ़ी शबाना थोड़ी शरारती भी हो गई थी। कभी-कभी चंदा को जानबूझकर उलझाने में उसे अनोखा

लुत्फ आता था। खासकर जुमेरात के दिन जब वह तैयार होकर आदमकद आईने के सामने खड़ी होती, चंदा के दीदे बाहर निकल आते।

आज जुमेरात का दिन था। आज पति की कब्र पर फूलों की चादर चढ़ाने और फातिहा पढ़ने का दिन था। बुढ़िया हाथ में छड़ी लिये जूतियाँ घिसटते हुए सीधी सड़क पर सीधी जा रही थी।

बस के अड्डे पर इस वक्त काफी भीड़ थी। अल्मोड़ा से अभी-अभी आई बस के यात्री बाहर निकल रहे थे और कुली बस पर चढ़कर सामान उतारने के लिए आपाधापी कर रहे थे।

बच्चे की इंद्रधनुषी नजरों से सबकुछ देखती हुई बुढ़िया बरगद के पेड़ तले के मदरसे से गुजरी। ''दो दूनी चार।'' जईफ मुल्ला हाथ में बेंत लिये बच्चों के गिर्द घूमते हुए चिल्ला रहा था। बच्चे उससे भी ऊँची आवाज में दुहरा रहे थे, **''दो दूनी चार।''**

बुढ़िया को अपना बेटा याद आ गया। वह भी तो इसी मदरसे में पढ़कर आगे बढ़ा था। बढ़ते-बढ़ते पट्ठा इतना आगे बढ़ गया कि दिल्ली में जा बसा। पर बुढ़िया को इसका अफसोस नहीं था। बेटा आज भी उसे उतना ही चाहता था, जितना कि एक नेक बेटा अपनी माँ को चाहता है। इसकी वजह थी...परवरिश, प्यार, कोई कमी नहीं छोड़ी थी मियाँ-बीवी ने।

छठी की रस्म के वक्त बेगम शबाना को नहलाने के लिए जब गरम-गरम पानी लाया गया तो वह ठिठक गई। पर यह परंपरा थी। प्रसव के बाद पहले स्नान का पानी गुनगुना नहीं, खौलता हुआ होना चाहिए। घर की बुढ़ियाओं ने बताया कि माँ की सेहत के लिए यह जरूरी भी था। अगर माँ कमजोर, रोगी रहने लगेगी तो बच्चे की देखभाल कौन करेगा? इस आखिरी तर्क ने शबाना को विवश कर दिया।

बच्चे की खातिर न जाने कितनी बार उसे अपने उसूलों से समझौते करने पड़े थे। बेटा एक साल का हुआ तो 'रस्से मुसलमानी' आ खड़ी हुई। आले-इब्राहीम की यह जरूरी रस्म है। इसी रस्म यानी 'सुन्नत' के बाद लड़का मुसलमान कहलाता है।

इस बार सआदत जाँ भड़क उठे। उनका एतराज सुन्नत से नहीं, उससे जुड़े हुए जुलूस से था। क्या जख्म भर जाने के बाद बच्चे को घोड़े पर बिठाकर बैंडबाजों के साथ सारे गाँव में घुमाना जरूरी है? यह दिखावा और फिजूलखर्ची किसलिए? पर नए खून का तर्क कौन सुनता है?

और—

जब मुन्ना चार वर्ष, चार महीने और चार दिन का हुआ तो 'बिस्मिल्लाह' का अवसर आया। इस मौके पर मियाँ-बीवी दोनों एक साथ अड़ गए थे। वे चाहते थे कि अपने लाड़ले की पढ़ाई का शुभ-मुहूर्त किसी अदबी शख्स द्वारा हो। लेकिन घर के बड़े-बूढ़े बरगद के पेड़ तले के, इसी मदरसे के, इसी मुल्ला को पकड़ लाए। इतना ही नहीं, मुन्ने को एक साल मदरसे में तालीम भी लेनी पड़ी, जबकि वे बड़े-से-बड़े विद्वानों को घर बुलाकर मुन्ने को श्रेष्ठ शिक्षा देने की क्षमता रखते थे।

अलबत्ता साल पूरा होने पर उन्होंने वही किया। वैसे क्या कुछ नहीं किया था, उसे आदमी से इनसान बनाने के लिए? आज वह माँ के पाँव धोकर पिए तो वह कोई नई बात नहीं होगी।

''चार दूनी आठ!'' चिल्लाते हुए मुल्ला सामने आया तो बुढ़िया ने मुसकराकर उसे आदाब किया और आगे बढ़ गई। अब की वह सीधी फूलवाले की दुकान पर पहुँची और रुक गई।

''सुना है...'' फूलवाले ने उसके हाथ में पुड़िया थमाते हुए कहा, ''आप जुम्मन चाचा से थैलियाँ सिलने का काम लेती हैं!''

''बिलकुल सही सुना है तुमने।'' बुढ़िया ने बेहिचक बताया। फिर कहा, ''कहीं शादी-ब्याह हो और ढेर सारे गजरे तैयार करने का ऑर्डर आए तो तुम हमें याद कर सकते हो। हम तुम्हारा हाथ भी बँटाएँगे।''

बुढ़िया कब्रिस्तान में दाखिल हुई, तब अपने में खोया हुआ बूढ़ा शराफत अली अकेला बेंच पर बैठा था। अकेले-अकेले प्रलाप रहा था, मानो उसकी जन्नतनशीं बीवी जिंदा हो और उसके सामने खड़ी हो।

''बार-बार तुमसे कहा, हजार बार कहा, कहा था या नहीं? पर तुम्हारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। आखिर मैं क्या करूँ? कहाँ-कहाँ ढूँढूँ? अब तो मेरी बिनाई भी मेरा साथ छोड़ रही है।'' बड़बड़ाते हुए उसकी आवाज थोड़ी ऊँची हुई। ''कुछ सुनाई दिया?''

बुढ़िया ने सिर्फ आखिरी जुमला स्पष्ट सुना था। वह दो कदम बढ़ाकर उसके सामने आ गई। ''आपने हमसे कुछ कहा?''

''क्या तुम इतना भी नहीं जानतीं कि सोते वक्त अपनी ऐनक ठीक जगह रखनी चाहिए?''

''हम बिलकुल जानते हैं।'' नाक पर उतर आई कमानी को ऊपर चढ़ाते हुए उसने तपाक से जवाब दिया।

''तब दालान में क्यों छोड़ आई थीं? बोलो! जवाब दो! अब यह मत कहना कि बड़े मियाँ को सताने में तुम्हें मजा आता है!'' कहते हुए वह मंद-मंद हँसा और आगे कहा, ''बेगम, वैसे तुम सताती हो तो अच्छा भी लगता है। कसम परवरदिगार की, तुम हो तो यह जहाँ है। जब तुम न होगी तो खुदा जाने हम कहाँ होंगे? अब मुसकरा भी दो!''

बुढ़िया मुसकराई। पर यह मुसकराहट वह नहीं थी। वह खड़ा हुआ। चेहरा भी वह नहीं था। वह समझ गया। अपने जज्बातों के साथ वह खुद बह गया था।

''आज जुमेरात है, है न?''

बुढ़िया के हाथ से फूलों की पुड़िया लेते हुए उसने कहा।

''हम इसी रोज अपना वादा निभाने आते हैं।''

''मुझे आप पर नाज है।''

''कैसे?''

छड़ी के सहारे दोनों साथ-साथ कब्रों की दिशा में आगे बढ़ रहे थे।

''लोगबाग तो जिंदगी में भी वादा वफा नहीं करते।'' बूढ़े ने बताया, ''और एक आप हैं कि...''

''वह देखिए!'' छड़ी से इशारा करते हुए बुढ़िया बीच में बोल उठी।

''क्या है?''

''हमारे मरहूम की कब्र पर खिले दो फूल।''

बुढ़िया के पति की कब्र के पास दोनों खड़े थे। बूढ़ा अपने माथे पर एक हाथ रखकर अभी भी फूलों को ढूँढ़ रहा था कि बुढ़िया ने अपनी ऐनक उतार उसकी नाक पर लगा दी।

''रंग गुलाबी है।'' गौर से देखकर बूढ़ा बोला, ''बारहमासों हैं। हर मौसम में ये फूल खिलते हैं, पर कब्र पर तब खिलते हैं, जब मरहूम ने अपनी जिंदगी में किसी का दिल न दुखाया हो।''

''किसी दूसरे का न सही,'' बुढ़िया ने उसके हाथ से पुड़िया वापस लेते हुए कहा, ''कम-से-कम हमारा तो दुखाया है।''

''वह कैसे?''

''जिंदगी भर साथ निभाने की कसम खाई थी उन्होंने और हमें अकेली छोड़कर चले गए।

''क्या आप सचमुच अकेली हैं?''

फूलों की चादर बिछाकर बुढ़िया ने उसकी ओर देखा और देखती ही रह गई। चाँदी के तारवाले उसके अपने चश्मे में बूढ़े का पुराना चेहरा नया लग रहा था।

कुछ देर बाद दोनों बेंच पर बैठे थे। प्रवेश में आमने-सामने रखे दो बेंचों के आसपास फुलवारी थी। रंगबिरंगे फूल उसमें डोल रहे थे। सुबह की कोमल धूप में तितलियाँ पर तोल रही थीं। कभी पीले फूलों पर बैठती थीं तो कभी नीले। यह कब्रिस्तान पहले तो कभी इतना सुहाना नहीं लगा था, बूढ़ा यह सोच रहा था कि उसे खयाल आया, बुढ़िया की ऐनक उसने अभी नहीं उतारी थी।

''आज आप रोई नहीं!'' अपने हाथों से बूढ़े ने उसे ऐनक पहनाते हुए कहा।

''आपने जो टोका था।''

''किसी को टोकने की आदत नहीं है मुझमें, अलबत्ता गुजारिश जरूर की होगी।''

''और हमने मान भी ली।''

''अगर मैं एक और गुजारिश करूँ तो?''

''फरमाइए।''

बूढ़े ने अपने लंबे कोट की जेब से एक चुरमुरा कागज निकालकर हौले से खोला। ''इसमें गुड़धानी हैं। खाने में जरा भी तकलीफ नहीं होगी। चखकर देखिए।''

बुढ़िया ने एक दाना उठाया।

''मुँह में रखते ही दाना पिघल जाता है, है न?''

बुढ़िया ने 'हाँ' में सिर हिलाते हुए कहा, ''आप भी तो खाइए!''

''हलवाई की दुकान से दो पुड़िया बँधवा लाया था। एक खा चुका हूँ।'' उसने रेखांकित करते हुए कहा, ''यह सिर्फ आपके लिए है...चलें?''

''जल्दी है?''

''घर में दो बेटे हैं, पर मेरा इंतजार करनेवाला कोई नहीं।''

अब बुढ़िया ने अपने कुरते में से एक रूमाल निकाला और हथेली पर खोलकर उसके आगे हाथ बढ़ाया।

''क्या है''

''चखकर आप ही बताएँ।''

रूमाल में दोना था। दोने में हलवा था। बूढ़े ने एक उँगली डालकर मुँह में रखी और चंद पलों के लिए चूसता रहा। फिर एकाएक बोल उठा, ''ये...यह तो गाजर का हलवा है!''

''हमने अपने हाथों बनाया है।'' बुढ़िया ने गर्व से कहा, ''उम्मीद करते हैं, जैसा लजीज हलवा आपकी बेगम बनाती थीं, वैसा ही होगा!''

उसके हाथ से पूरा दोना उठा लेते हुए बूढ़े ने तारीफ में सिर्फ एक ही शब्द कहा, ''माशाअल्लाह...'' और यह एक शब्द प्रशंसा के पुल पर भारी था।

यही तो वह शब्द था, जिसे पति के मुँह से सुनने के लिए बेगम शबाना हफ्ते में कम-से-कम एक बार कोई ऐसी स्वादिष्ट और अनोखी डिश बनाती थी कि दुश्मन के होंठों से भी लार के साथ 'वाह' टपक पड़े।

गुलजार पुलाव, नूर पुलाव, कोको पुलाव, मोती पुलाव और चमेली पुलाव-लखनऊ के प्रसिद्ध सात पुलावों में से ये पाँच बनाना शबाना के बाएँ हाथ का खेल था। लेकिन उसके हाथों बनी 'शीरमाल' खाकर सआदत जाँ

सुब्हानअल्लाह के साथ अलहम्दोलिल्लाह जैसे प्रशंसा के दो-चार शब्द और जोड़ देते थे। हकीकत में यह रोटी, पराँठे, तंदूरी, रूमाली, बाकिरखानी और गुजराती फुलकों की तुलना में अधिक लजीज, महकीली और देखने में खूबसूरत भी होती थी।

सुबह की भूली बुढ़िया शाम में लौटी तो उसके पाँव कोठी से कुछ अंतर पर ठहर गए। प्रवेश-द्वार के सामने एक लाल मारुति खड़ी थी। झुटपुटे में कुछ अधिक ही सुंदर लग रही थी। क्या यह गाड़ी उसके बेटे अकीक की हो सकती है?

वह कुछ कदम बढ़ाकर प्रवेश-द्वार तक आई तो उसकी नजर फव्वारे वाले चबूतरे पर उदास सी बैठी एक बच्ची पर पड़ी। बच्ची की दोनों कुहनियाँ घुटनों पर टिकी थीं और चेहरा दोनों हथेलियों में डूबा था।

''अरे रूही...'' उसको पहचान लेते हुए बुढ़िया ने अपने हाथ बढ़ाए तो बच्ची दौड़कर पीछे चली गई। बुढ़िया वहाँ पहुँचे, तब तक बच्ची बरामदे में खाट बिछाए बैठे अपने पापा की ओट में दुबक गई थी।

''आदाब अम्मी!''

रूही को भूलकर बुढ़िया उसकी ओर मुड़ी, ''न कोई तार, न कोई खबर...''

''बस, अचानक ही महीने के लिए अमेरिका जाने का तय हुआ और...''

''बहू कहाँ है?'' बुढ़िया ने उसे टोकते हुए पूछा।

''वह साथ नहीं आ सकी।'' बातें करते हुए दोनों अंदर की ओर चले, ''अभी काफी काम निबटाने हैं, कई तैयारियाँ करनी हैं।''

रूही बेमन पीछे-पीछे चली।

''दो-चार दिन रुकोगे तो सही न?''

''अब तो दो-चार घंटे रुकना भी मुमकिन नहीं। आपके इंतजार में आधा दिन वैसे ही शहीद हो चुका है।''

इन चंद मिनटों में अकीक माँ से काफी कुछ प्रश्न पूछना चाहता था। मसलन, पहले तो कभी कब्रिस्तान में वह घंटे भर से ज्यादा नहीं रुकती थी, अब क्यों पूरा दिन बिताती हैं? मसलन...

''क्या मैं पूछ सकता हूँ...''

''रूही की फिक्र करने की जरूरत नहीं।'' बैठकखाने में कदम रखते हुए बुढ़िया ने फिर उसे टोका, ''वह हमारे साथ रहेगी।''

तुरंत दोनों के पीछे से आवाज उठी, ''मुझे यहाँ नहीं रहना।''

''क्यों? क्यों?'' बुढ़िया ने पलटकर उसकी ओर देखा।

''यहाँ न टीवी है, न वीडियो।''

''तो क्या हुआ? यहाँ भोंपूवाला बाजा तो है।'' कहते हुए वह साइडबोर्ड पर सजाकर रखे हुए पुराने ग्रामोफोन की ओर आगे बढ़ने गई कि बेटे के शब्द उसे सुनाई दिए।

''क्या मैं एक सवाल पूछने की गुस्ताखी कर सकता हूँ, अम्मी?''

धीर-धीरे चेहरा घुमाकर उसने बेटे के सामने देखा।

''क्या आपकी गुजर पाँच हजार रुपयों में नहीं होती?''

''ओह!'' खाने की मेज पर प्लेटें सजा रही चंदा को कनखियों से देखते हुए बुढ़िया ने कहा, ''चंद घंटों में तुम्हें सारे गाँव की खबरें मिल गईं।''

''जब मैंने सुना कि आप दस-दस पैसों में थैलियाँ सिलने का काम लेती हैं तो शर्म से मेरा सिर झुक गया।'' कहते

हुए वह करीब के सोफा पर बैठ गया। ''जरा सोचिए! गाँववाले क्या कहते होंगे? बेटा अपनी बूढ़ी माँ को भी...''

''बूढ़ा कौन है?'' बुढ़िया तड़पकर बोल उठी, ''हम तो बूढ़े नहीं हैं।''

ऐसे मुँहतोड़ जवाब की अकीक ने उम्मीद नहीं की थी। तिस पर बुढ़िया ने यौवन और वृद्धावस्था पर एक भाषण ही झाड़ डाला। फिर भोंपूवाले ग्रामोफोन पर एक रेकॉर्ड लगाकर हैंडल घुमाते हुए कहा, ''हाँ, हमारी उम्र जरूर बढ़ी है, बाल भी पके हैं, पर हमारा दिल आज भी बचपन का है, समझे?''

अकीक एकटक माँ की ओर देख रहा था और ग्रामोफोन से बेगम अख्तर की आवाज उभरी...'**अभी तो मैं जवान हूँ, अभी तो मैं जवान हूँ।**' रूही हैरत से ग्रामोफोन को देख रही थी। ऐसा नायाब मॉडल उसने आज से पहले कभी नहीं देखा था। तभी बुढ़िया ने उसका हाथ थामा और उसके साथ गोल-गोल घूमने लगी। शुरू में तो रूही कतराकर बुढ़िया के साथ घिसटती रही, पर जैसे-जैसे गजल रंग पकड़ती गई, उसमें भी जान आती गई। दादी और पोती को साथ-साथ नाचते देख अकीक और चंदा के लिए यह कहना मुश्किल था कि कौन किससे ज्यादा उछल रहा है!

गजल खत्म हो, इससे पहले दोनों ने मिलकर चंदा को घेर लिया। ना-ना कहती चंदा भी आखिर शामिल हो गई।

अकीक ने देखा कि यहाँ से खिसक जाने का ऐसा बढ़िया मौका दुबारा मिलना मुश्किल है। हौले से वह सोफा पर से खड़ा हुआ और तीनों को एक-दूसरे के हाथ थामकर गोल-गोल घूमते छोड़ दबे पाँव बाहर निकल गया।

''दादी!'' रात में सोते वक्त रूही ने कहा, ''पापा बड़े सयाने हैं। यहाँ से ऐसे गायब हुए जैसे गधे के सिर से सींग!''

रात के दस बज चुके थे। बुढ़िया बहस कर बच्ची को प्रोत्साहन देना नहीं चाहती थी और बच्ची थी, जो हर बार एक नया विषय छेड़कर उसे उत्तर देने पर विवश करती थी। अब की बुढ़िया ने करवट बदलकर पीठ दिखा दी तो रूही ने अपने दोनों हाथों का इस्तेमाल कर उसे जबरन अपनी ओर घुमाया।

''दा-दी!''

''क्या है?'' उसने खीझकर कहा।

''नींद नहीं आती।''

बात तो सच थी। बुढ़िया सोच में पड़ गई। फिर कहा, ''नींद तो हमें भी नहीं आती। बताओ, अब क्या करें?''

''बताऊँ?''

''बोलो, बोलो!''

''एक कहानी आप मुझे सुनाइए।'' रूही ने दिमाग कसकर सुझाव दिया, ''मुझे नींद आ जाएगी। फिर एक कहानी आपको मैं सुनाऊँगी। आपको भी नींद आ जाएगी।''

''वाह, खूब!'' बुढ़िया बज उठी, ''लेकिन पहले कहानी तुम सुनाओगी?''

''आप भी पापा से कुछ कम नहीं, दादी।'' रूही ने सयानी बहू की तरह कहा। ''पहले मैं कहानी सुनाऊँ और आपको नींद आ जाए, तब मुझे कौन सुनाएगा?''

''परियाँ सुनाएँगी,'' लेटे-लेटे ही उसकी नाक पर अपनी नाक रगड़ते हुए बुढ़िया बोली, ''चाँद-तारे सुनाएँगे।'' रूही बोली, ''क्या सुनाएँगे?''

''लोरी।''

''चंदा है तू, मेरा सूरज है तू...'' बुढ़िया शुरू हो गई, ''ओ मेरी आँखों का तारा है तू...''

गाते-गाते दोनों की आँखें कब लग गईं, इसका पता किसी को न चला।

बुढ़िया खुश थी। पोती के आने से उसकी सबसे बड़ी समस्या हल हो गई थी। दो जुमेरातों के बीच अजदहा से

रेंगते हुए छह दिन किसी तरह काटे नहीं कटते थे, वे अब हवा से बातें करते हुए उड़ने लगे। उसे खुद ताज्जुब हुआ। अभी कल ही तो जुमेरात का दिन था और आज फिर जुमेरात है।

''अरी चंदा!'' खाने की मेज पर से नाश्ते का सामान इकट्ठा करती नौकरानी से उसने कहा, ''जरा फिर एक बार कैलेंडर में देखो तो, आज कौन सा दिन है।''

चंदा भड़क उठी। अब तक वह चार बार देख चुकी थी। झल्लाकर बोली, ''मेरे पास वक्त नहीं है।'' और एक ट्रे में जूठी प्यालियाँ तथा केतली उठाकर रसोईघर की ओर चल दी।

नाश्ता कब का खत्म हो चुका था। लेकिन इतना जल्दी कोई कब्रिस्तान में फातिहा पढ़ने थोड़े ही जाता है! अभी तो सबेरे के आठ भी नहीं बजे थे। रूही खाने की मेज पर ही एक फोटो अलबम रखकर उसके पन्ने पलट रही थी। बुढ़िया उसकी बगल में बैठी थी। ''ये हैं तुम्हारे दादा मरहूम।'' एक तसवीर पर उँगली रखकर वह बोली।

रूही ने तपाक से कहा, ''मैं बताऊँ, ये तसवीर कहाँ खींची गई होगी?''

''कहाँ?''

''फैंसी ड्रेस कॉम्पिटीशन में।''

बुढ़िया हँस दी। ''पगली! तुर्की टोपी, काली शेरवानी, चौड़ा पाजामा...ये तो उनका पुश्तैनी लिबास था।'' फिर गर्व से आगे कहा, ''नवाब साहब थे वह दस गाँव के।''

सच। नवाबी कब की खत्म हो चुकी थी। अय्याशी के कारण अच्छे-अच्छे और बड़े-बड़े नवाब महलों से उखड़कर रास्ते पर आ गए थे। सआदत जाँ की बात और थी। उन्हें न मुजरों का आकर्षण था, न शराब का व्यसन। उन दिनों भी जबकि अमीर-उमराओं का किसी तवायफ से रिश्ता नहीं होना उनकी शान में कमी मानी जाती थी, सआदत जाँ अपने सिद्धांत से चलित नहीं हुए थे।

हाँ, अगर उन्हें कोई शौक था तो वह खान-पान का था। मौत से पहले यही तो उनकी आखिरी ख्वाहिश थी...अपनी बेगम के हाथों बनी शीरमाली खाने की। उस दिन शबाना ने अपना सारा प्यार गूँधकर ऐसी नरम शीरमाली बनाई थी कि उसका टुकड़ा मुँह में रखते ही पिघल जाए।

पहला टुकड़ा मुँह में रखा और सआदत जाँ की आँखों में अनोखी चमक उभरी। वह आखिरी चमक थी। वह आखिरी रोटी थी। दो टुकड़े और तोड़ने के बाद उन्होंने दम ही तोड़ दिया था।

''ये कौन हैं, दादी?'' पन्ना पलटकर रूही ने एक बच्चे की तसवीर दिखाते हुए पूछा।

''तुम्हारे पापा।''

रूही को सचमुच ताज्जुब हुआ, ''क्या कहती हैं आप! इनकी पैंट कहाँ है?''

''ये तसवीर तब खींची गई थी, जब वह तुमसे भी दो साल छोटे थे...'' बुढ़िया ने उसे समझाते हुए कहा, ''और ये हैं तुम्हारी अम्मी, उसके साथ सेहरे में छिपे खड़े जनाब हैं तुम्हारे पापा। शादी की तसवीर है यह।''

उस तसवीर को गौर से देखने पर उसे एहसास हुआ, तसवीर में काफी भीड़ थी। मम्मी-पापा के इर्द-गिर्द भरा-पूरा परिवार था। ''इसमें तो मेरे अलावा सभी हैं।'' दु:खी होने का ढोंग करते हुए वह बोली, ''दादी, तब मैं कहाँ थी?''

''आसमान पे।''

''फिर वहाँ से मुझे कौन ले आया?''

''सफेद परों वाला एक बगुला।''

''सब झूठ!'' शरारत भरी मुसकराहट से दादी की ओर देखते हुए उसने बताया, ''बच्चे तो माँ के पेट से जन्म लेते हैं, हाँ...''

हैरान बुढ़िया उसके सामने देखती रही। तभी लोलकवाली जर्मन घड़ी ने नौ बजाए। चंदा, रूही को तैयार करने लगी। बुढ़िया तो सवेरे से ही तैयार बैठी थी।

''दादी, आप मुझे आज कहाँ ले जाएँगी?''

पंद्रह मिनट बाद दोनों जुम्मन चाचा की दुकान पर खड़े थे। जुम्मन ने थैलियों की गिनती कर कलमदान के दराज में हाथ डालते हुए व्यंग्य में कहा, ''बेगम साहिबा, अगर थैलियाँ सिलने का भी कोई मुकाबला होता तो इनाम आप ही जीततीं। ये लो दो सौ बीस थैलियों के बीस रुपए।''

रूही ने फौरन अपनी उँगलियों पर हिसाब जोड़ा और बोल उठी, ''और बेईमानी का कोई मुकाबला होता तो वह इनाम आप ही को मिलता, चाचा।''

जुम्मन चौंका।

''दस थैलियों का एक रुपया।'' रूही ने आगे कहा, ''इस हिसाब से दो सौ बीस थैलियों के बाईस रुपए होते हैं—निकालो दो रुपए और!''

जुम्मन ऐसा तिलमिलाया कि उसका जी चाहा, बच्ची के गाल पर एक चाँटा रसीद कर दे! मन-ही-मन कुढ़ते हुए उसने फिर दराज में हाथ डाला और दो रुपए का सिक्का निकालकर रूही के हाथ में थमाया। उन दो रुपयों से दादा की कब्र पर चढ़ाने के लिए उसने चार ताजा गुलाब खरीदे।

जब वे कब्रिस्तान में दाखिल हुए तो बुढ़िया के आगे बढ़ते हुए कदम अचानक रुक गए। प्रवेश में फुलवारी के बीच लगे दोनों बेंच खाली थीं। मियाँ शराफतअली आज नहीं आए होंगे? कहीं बीमार तो नहीं हो गए होंगे?

ऐनक के शीशों के पार देखती हुई उसकी आशंकित आँखें दूर-दूर भटककर एक कब्र पर ठहर गईं। वह कब्र शराफतअली की पत्नी की थी। आज बूढ़ा सिर झुकाए वहीं बैठा था। बुढ़िया ने उसके गम में खलल पहुँचाना उचित न समझा।

और गम में शामिल होने के लिए अभी बुढ़िया के पास काफी समय था।

''ये हैं तुम्हारे मरहूम दादा हुजूर की कब्र।'' रूही के साथ अपने पति की कब्र पर आते हुए उसने कहा।

यह आवाज कुछ फासले पर बैठे बूढ़े ने भी सुनी। धीरे-धीरे उसका सिर उठा और उसकी धुँधली आँखें आवाज की दिशा टटोलने लगीं।

बुढ़िया ने कब्र पर फूलों की चद्दर बिछा दी थी। ''तुम्हें फातेहा पढ़ना आता है?'' अगरबत्ती जलाते हुए उसने पोती से पूछा।

रूही ने कब्र के चारों कोनों पर एक-एक गुलाब सलीके से रखते हुए कहा, ''आप सिखाएँगी तो मैं सीख जाऊँगी।

बूढ़े ने यह भी सुना और उसे अपने पढ़े-लिखे बेटे याद आए, बहुएँ याद आई, दो पोते याद आए। वह उन सबके साथ रहता था और फिर भी कोई उसके साथ नहीं था। यह तो सिर्फ एक बदकिस्मती हुई।

बुढ़िया ने फातेहा खत्म करते हुए कहा, ''आमीन।'' रूही ने वह आखिरी शब्द भी दुहराया और बुढ़िया की हरकतों की नकल करते हुए अपने दोनों हाथ मुँह पर फेरे। ''शाबाश!'' बुढ़िया प्रसन्न होकर बोली।

''अब न तो वह दौर रहा है, न वह ईमान।''

जैसे ही वे दोनों प्रवेश की ओर जाने के लिए मुड़े तो बूढ़ा उनके रास्ते में खड़ा था। कुछ कह रहा था, ''यह कैसी बदनसीबी है कि हमारी कब्र पर हमारे बच्चे फातेहा भी नहीं पढ़ पाएँगे।''

बुढ़िया ने उसकी तल्खी को नजरअंदाज करते हुए पूछा, ''क्या आज आप भी अपनी बेगम की कब्र पर फातेहा

पढ़ रहे थे?''

''फातेहा तो जन्नतनशीनों की कब्र पर पढ़ा जाता है। वो...वो तो जिंदा है।'' बूढ़ा बता रहा था, ''मैं जब यहाँ आया तो उसने फौरन मुझे आवाज दी। पूछा—क्यों मियाँ, आज अपनी छड़ी कहाँ छोड़ आए?''

''हम भी आपसे यही पूछनेवाले थे।'' कहते हुए रूही का एक हाथ थामकर वह आगे बढ़ी। बूढ़े ने उसका दूसरा हाथ थामा।

''दादी!'' रूही चहकी, ''आज आप भी तो अपनी छड़ी भूल आई हैं!''

''हम भूले नहीं, ''बुढ़िया ने तुरंत सफाई दी, ''अब तुम जो हमारे साथ हो, तुम्हारी उँगली थामे हम यहाँ तक आए या नहीं?''

''यह तो सच है।''

अब बुढ़िया बूढ़े की ओर मुड़ी, ''मियाँ, अभी तक आपने ये नहीं बताया कि आप इस मंजिल तक पहुँचे कैसे?''

''अब कुछ भी पराया नहीं लगता।'' बेंच के करीब आने पर बूढ़ा बैठ गया, ''ये रास्ते तो बरसों से जाने-पहचाने हैं।''

''लेकिन मैं आपको नहीं जानती।'' रूही ने दोनों के बीच बैठते हुए कहा। जवाब में बूढ़े ने उँगली से इशारा किया, ''वह क्या है?''

''धूप।''

''बस, यही मेरी पहचान है। अभी है, अभी गायब।''

''दादी!'' रूही ने बुढ़िया के कान में कहा, ''यह बुढ़ऊ क्या कहता है?''

फिर भी बूढ़े को भनक लग गई।'' तुम अपनी दादी को तो बुढ़िया नहीं कहतीं।'' वह बोला, ''मुझे बुढ़ऊ क्यों कहती हो?''

''क्योंकि आप सूरत से ही बुड्ढे लगते हैं।''

''फिर भी...यह दिल तो जवान है।''

''तो क्या हुआ! हमारी दादी तो हमें मीठी-मीठी लोरियाँ सुनाती हैं। आप गा सकते हैं?''

बूढ़ा सोच में पड़ गया तो बुढ़िया ने उसकी सहायता की, ''बेटी, मर्द लोरियाँ नहीं गाते।''

''बिलकुल सच।'' बूढ़ा बोल उठा, ''हम असली मर्द हैं।''

रूही पीछे हटनेवाली नहीं थी।''हमारी दादी नाच भी सकती हैं। आप नाच सकते हैं?''

''क्यों नहीं! पर एक शर्त है, तुम्हें कोई बढ़िया गीत गाना होगा।''

वह खुश हो गई।''लो, अभी शुरू हो जाती हूँ।'' कहते हुए वह सचमुच शुरू हो गई, ''चंदा है तू, मेरा सूरज है तू, ओ मेरी आँखों का तारा है तू...''

बूढ़ा धीरे-धीरे खड़ा हुआ और अपने अंदाज से नाचने लगा। पलभर तो बुढ़िया उसे हैरत से देखती रही। फिर रूही को इशारा किया। गाते-गाते वह भी खड़ी हो गई। उसे अपने साथ नाचती देख बूढ़ा और खिल उठा। पर बुढ़िया अभी तमाशबीन की तरह बेंच पर जहाँ-की-तहाँ बैठी थी।

रूही ने नाचते-गाते उसे संबोधित कर गीत आगे बढ़ाया, ''दादी है तू, मेरा चंदा है तू, ओ मेरी आँखों का तारा है तू...''

अब बुढ़िया को खड़ा होना पड़ा। उसका एक हाथ रूही के हाथ में था तो दूसरा बूढ़े के। हकीकत में दोनों ने मिलकर उसको लगभग घसीट लिया था। संकोच दूर होने पर बुढ़िया भी रँग में आ गई। तीनों एक-दूसरे के हाथ

थामकर नाचते-गाते गोल-गोल घूम रहे थे।

हरी-हरी घास के तिनके लहरा रहे थे। दो बेंचों के पीछे से सिर उठाते हुए रंगबिरंगे फूल मुसकरा रहे थे। फुलवाड़ी के पौधे मस्ती में डोल रहे थे। शाखों में छिपी चिड़ियाएँ चहचहा रही थीं। पेड़ के पत्तों से गुजरती हवा में संगीत था।

बुढ़िया को लगा, जैसे अचानक संगीत रुक गया हो। चिड़ियाएँ खामोश हो गई थीं। पौधे शांत पड़ गए थे। फूलों के मुख पर से मुसकराहट झर गई थी। दूब तड़फड़ा उठी थी।

बूढ़े को दिल का दौरा पड़ा था। करीब में ही एक ताजा कब्र पर पानी का छिड़काव करता कब्रिस्तान का माली दौड़ा नहीं आया होता तो बूढ़े की बाकी उम्र यहीं तमाम हो जाती।

मृत्यु बूढ़े को छूकर क्या गुजरी, बूढ़े ने खाट पकड़ ली। कब्रिस्तान जाना तो दूर रहा, उसे घर से बाहर निकलने की भी इजाजत न थी। और इजाजत होती भी तो वह दहलीज के बाहर कदम नहीं रख पाता। अब उसमें इतनी शक्ति कहाँ बची थी कि वह बिना किसी सहारे के दो कदम भी चल सके। उसका दुर्भाग्य यह था कि उसके दोनों बेटे अब उसके नहीं रहे थे। एक बहू थी, जो उसकी सूरत से नफरत करती थी।

इसी कारण पत्नी के देहांत के बाद वह सारा दिन कब्रिस्तान में गुजारना अधिक पसंद करता था। कम-से-कम वहाँ उसे अकेलापन नहीं सताता था। कभी गलती से मायूसी के बादल घिर आते तो वह अपनी पत्नी की कब्र पर आकर दो बातें कर लेता। उसका जी बहल जाता।

बुढ़िया से मुलाकात होने के बाद इस सिलसिले में काफी फर्क आया था। अपने सुख-दुःख की बातें अब वह बुढ़िया से करता था। तब भी उसे जुमेरात का इंतजार रहता था। आज भी उसे जुमेरात का इंतजार था। इस दिन बुढ़िया कब्रिस्तान जाने से पहले यहाँ रुकती थी। घंटा भर उसके साथ बिताती थी और जूतियाँ घिसटती अकेली कब्रिस्तान की ओर चल देती थी।

बूढ़े की विडंबना यह थी कि जब वह मौत के लिए तरसता था, तब खुदा ने उसे उम्रेदराज दी, अब वह जिंदगी चाहता था और मौत उसकी खिड़की पर आकर बैठ गई थी।

बूढ़े के खाट से लगने के बाद बुढ़िया के जीवन में भी परिवर्तन आया था। पहले वह रोजाना सौ से ज्यादा थैलियाँ सिलती थी। अब वह अंक घटकर पचास के नीचे आ गया था। अब वह पहले की तरह हँसती-बोलती भी कहाँ थी? अकसर वह किसी कोने में चुपचाप बैठी नजर आती थी। छत पर टिकी उसकी आँखों में देखने से ऐसा लगता था, मानो वह दुआ माँग रही हो कि बूढ़े से पहले खुदा उसे उठा ले।

जब भीतर के अँधेरे घने हो जाते, वह रूही की किलकारियों में पनाह ढूँढ़ती। कभी वह उसके साथ तितलियाँ पकड़ने बगीचे में चली आती तो कभी उसके किसी निर्दोष खेल में ही शामिल हो जाती। बूढ़े की गैर-मौजूदगी में रूही उसके लिए दिल बहलाने का एक खिलौना थी। बल्कि यों कहा जाए कि बूढ़े की तरह रूही भी उसके जीवन का एक हिस्सा बन गई थी तो गलत नहीं होगा।

अँधेरे कोने में वह अकेली बैठी सोच रही थी कि उसके कानों में रूही की आवाज टकराई—''दादी, पापा आ गए...पापा आ गए!'' और उसका पुराना दिल दो धड़कनें चुक गया। एक अजीब सी कुलबुलाहट उसने आँतों में महसूस की।

थोड़ी देर में तो रूही अकीक का हाथ थामे उसे खींचती हुई आकर सामने खड़ी भी हो गई। ''देखो पापा!'' उसने बुढ़िया की ओर इशारा करते हुए कहा, ''दादी यहाँ छिपी हैं।''

''यह क्या, अम्मी!'' अकीक हैरत से उसे देख रहा था और बोल भी रहा था, ''रूही ने जब कहा कि आजकल

आप अँधेरे तलाशती रहती हैं तो मुझे यकीन ही नहीं हुआ। आपकी तबीयत तो ठीक है न?''

बुढ़िया कोने की दोनों दीवारों का सहारा लेकर खड़ी हुई, तब उसकी नजर बहू पर ठहरी। वह अकीक के पीछे-पीछे आकर कुछ अंतर पर रुक गई थी। ''कब आए?'' प्रश्न करते हुए उसने फिर बेटे को देखा।

''दो दिन पहले ही अमेरिका से लौटे हैं।'' अकीक ने खिड़की के परदे हटाते हुए बताया, ''एक दिन आराम कर हम सीधे यहाँ चले आए।''

चंदा कार में से एक फैंसी थैली ले आई तो अकीक की पत्नी लयला ने कहा, ''देखिए, माँजी! हम आपके लिए क्या लाए हैं!''

बुढ़िया के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर भी नजर नहीं आने पर लयला को संदेह हुआ। ''क्या आपको खुशी नहीं हुई?''

''यह तो बताइए...'' बुढ़िया कुछ उत्तर दे, इससे पहले रूही ने पूछा, ''आप लोग मेरे लिए क्या-क्या अजूबे लाए हैं।''

जवाब अकीक ने दिया, ''एक बड़ा सा टैडी बेर, बार्बी गुड़िया, कार्टून फिल्मों के वीडियो कैसेट, फैंटम का पुतला और नए-नए ड्रेस।''

''सच!'' कहते हुए रूही का चेहरा रसगुल्ला बन गया, ''मैं रोजाना गुड़िया से खेलूँगी और नई-नई ड्रेसेज पहनूँगी।''

''जरूर।'' लयला बोली, ''लेकिन अभी कोई भी पोशाक पहन लो।''

''घंटे भर में हमें यहाँ से निकलना होगा।'' अकीक ने वजह बताई। बुढ़िया चौंकी, ''ले जाओगे इसे?''

''छुट्टियाँ खत्म हो गईं। कल से इसका स्कूल भी खुल रहा है।''

''मैं नहीं जाऊँगी।'' कहते हुए रूही दादी से लिपट गई, ''मैं यहीं रहूँगी।''

अकीक को ताज्जुब हुआ। ''कमाल है!'' वह बोला, ''एक महीने के लिए हम दूर क्या हुए, हमारी तो दुनिया ही बदल गई! जो जीना जानती थी, वह मुसकराना भूल गई और...जो गाँव से नफरत करती थी, वह शहर को भूल गई!''

अब बुढ़िया को कहना पड़ा, ''बेटा, इसे यहीं रहने दो।''

''लेकिन...''

''यहाँ भी एक स्कूल है। इसकी सारी पढ़ाई-लिखाई का जिम्मा मैं लेती हूँ।''

''कहाँ गाँव की पढ़ाई और कहाँ शहर की!'' अकीक बोला, ''अम्मी कोई मुकाबला ही नहीं।''

''यह मत भूलो कि तुम यहीं से पढ़कर आगे बढ़े हो।''

''सही, मगर अब जमाना वह नहीं रहा।''

बहस आगे बढ़े, इससे पहले लयला ने बुढ़िया के भीतर झाँका, ''माँजी, आपका दु:ख मैं समझती हूँ। ये सूनी-सूनी दीवारें, यह अकेलापन बरदाश्त करना किसी के लिए भी मुश्किल है। क्यों न आप हमारे साथ चलतीं?''

''वहाँ मोटरगाड़ियों और इमारतों की भीड़ में क्या है हमारे लिए?'' बुढ़िया की आवाज खो गई, ''यहाँ तो कदम-कदम पर यादें बिखरी पड़ी हैं।''

''रूही!'' अकीक बच्ची की ओर मुड़ा, ''हमारे पास ज्यादा वक्त नहीं है।''

''मैंने कहा न,'' वह दादी के पीछे दुबक गई, ''मैं नहीं आऊँगी।''

''अच्छे बच्चे जिद नहीं करते।''

''नहीं... मुझे दादी के पास रहना है।''

अकीक ने झपटकर उसकी कलाई थाम ली। ''अगली छुट्टियों में दोबारा यहाँ आएँगे।'' उसे घसीटकर ले जाते हुए वह कह रहा था, ''दादी के साथ पूरा महीना बिताएँगे।''

''बेटा!'' गिड़गिड़ाती बुढ़िया कुछ कदम पीछे चली, ''तिनके का सहारा भी छिन गया तो हमारे लिए साँस लेना दुश्वार हो जाएगा। दया करो इस करमजली पर...''

रूही की चीखो-पुकार में बुढ़िया की मिन्नतें किसी ने नहीं सुनीं, जैसे उसकी आवाज उभरने से पहले ही डूब गई थी। पर रूही की आवाज बीस कमरों वाली इस कोठी में रातभर गूँजती रही, दीवारों से टकराती रही, फर्श पर से उछलती रही। जैसे कमरे में चमगादड़ घुस आया हो!

बुढ़िया ने उठकर खिड़की खोल दी, यह सोचकर कि चमगादड़ पंख फड़फड़ाता हुआ बाहर निकल जाएगा। किस्मत ने यहाँ भी साथ नहीं दिया। साँय-साँय करती हवा अंदर धँस आई, पर चीखों की गूँज बरकरार रही।

खिड़की के परदे लहराने लगे। पलंग की चद्दर बलखाने लगी। कुरता फड़फड़ाने लगा। बाल बिखरने लगे। आज का दिन माकूल न था, फिर भी बुढ़िया बाहर जाने के लिए तैयार हो गई। ट्रे में चाय की केतली लेकर आ रही चंदा एकाएक रुक गई।

''आज जुमेरात नहीं है।'' उसने चौखट पर से कहा।

बुढ़िया ने कोई जवाब नहीं दिया। वह ऐनक ढूँढ़ रही थी और तकिए के नीचे से मिल जाने पर उसने नाक पर बिठा ली।

''आप नाश्ता तो करेंगी न?''

वह दरवाजे की दिशा में आगे बढ़ी। यही उसका मौन उत्तर था। चंदा उसके रास्ते से हट गई। उसे लगा बुढ़िया के दिमाग का कोई पुरजा फिर गड़बड़ाया है, वरना ऐसे तूफानी मौसम में वह बिना वजह बाहर थोड़े ही जाती?

चंदा का जी चाहा कि वह उसे रोके, यह उसके लिए मुमकिन न था। मालकिन की सनक और तेवरों से वह भलीभाँति परिचित थी। आखिर तो वह मरहूम नवाब सआदत जाँ की बेगम थी।

जैसे-जैसे बुढ़िया आगे बढ़ती गई, हवाएँ तेज होती गईं। उसे अपनी लकड़ी याद आई। कुछ दिन पहले जाने कहाँ रख दी थी। आज साथ होती तो इन हवाओं में रुई के फाहे की तरह उड़ जाने का डर तो न होता।

उसे आज ज्यादा दूर नहीं जाना था। बूढ़े शराफतअली की याद बेतहाशा आई थी, उसी के घर जाना था। उसी से अपनी विपदा सुनानी थी। कैसा घोर अन्याय उसके साथ हुआ था। कैसी निर्दयता से उसका अपना बेटा और बहू उसकी नजरों के सामने नन्हीं सी जान को घसीटकर ले गए थे। और मियाँ, आप शिकायत करते हैं कि सिर्फ आपके बेटे आपके नहीं रहे?

यह सच भी था। आज तक बहू बेटों की फरियाद हमेशा वही किया करता था। तब बुढ़िया खुदा का शुक्र अदा कर अपने बेटे अकीक और बहू लयला की तारीफ के पुल बाँधती थी।

चारों दिशा में बहती हवाओं के धक्कों में बुढ़िया झकोरे खाने लगी। अब उसके पाँव भी सीधे नहीं पड़ रहे थे। दूर से ऐसा लगता था, जैसे कोई शराबी नशे में लड़खड़ा रहा हो, दो कदम आगे बढ़ता और एक-आध कदम पीछे खिसकता हो। चंद कदम ही बचे थे कि बुढ़िया को बिजली के खंभे का सहारा लेने की आवश्यकता पड़ी। चक्रवात में उड़ जाने से बचने के लिए वह खंभे से लिपट गई। आँखें चुँधिया गईं। माहौल धुँधला गया। पेड़ से झड़े पत्ते इधर-उधर टकरा रहे थे। बुढ़िया ने बमुश्किल आँखें खोलकर बूढ़े के मकान की ओर देखा और टकटकी बाँधे देखती रही। हकीकत में उसने स्पष्ट कुछ भी नहीं देखा था। फिर भी उसने जितना देखा था, उसके लिए काफी था।

बूढ़े के मकान के बाहर छोटी सी भीड़ इकट्ठा हुई थी। धुँधलाए हुए वातावरण को रोशन करने के लिए दो मजदूर माथे पर पेट्रोमेक्स लिये खड़े थे। फिर भी सब कुछ साया-दर-साया सा लग रहा था, दरवाजे के बाहर पड़ा जनाजा भी। कल रात में ही बूढ़े का देहांत हो गया था।

बुढ़िया गुमसुम हो गई। उसके जीवन के पिछले पहर में आए दोनों सहारे, छोटा और बड़ा, छिन गए थे। रूही को उसके माँ-बाप अपने साथ दिल्ली ले गए थे। यहाँ तीलियों का खेल भी समाप्त हो चुका था। किसी गुमनाम कैदी की तरह बुढ़िया अपने भीतर और बाहर के अँधेरों में गायब हो गई थी। न कोई उसे दिलासा देनेवाला था, न कोई उसका दु:ख बाँटनेवाला था।

दो सप्ताह बीत चुके थे, मगर बुढ़िया की दिनचर्या में कोई फर्क नहीं आया था। और अब उसकी दिनचर्या क्या थी? जरूरत पड़ने पर बिस्तर से उठना और फिर लेट जाना। अब तो वह खाना भी अपने कमरे में खाती थी, अगर चंदा वक्त पर थाली परोस दे तो, वरना भूखी ही पड़ी रहती थी।

दूसरे दिन जुम्मन आया। सूरत से वह त्रस्त लगता था। आते ही वह गरज के साथ बुढ़िया पर बरस पड़ा। ''तीन सौ थैलियों का कपड़ा पंद्रह दिनों से दबाकर बैठी हैं, आप! जब काम नहीं होता तो मुझसे ले क्यों आईं? क्या कहूँ मैं अपने मालिक से? आखिर मुझे भी तो किसी को जवाब देना होता है!''

''मियाँ,'' डूबी आवाज में बुढ़िया ने सिर्फ एक ही जुमला कहा, ''अब हम पर भी बुढ़ापा आ गया।''

पलभर जुम्मन उसे देखता रहा। फिर अपनी थैलियों के कपड़े का गट्ठर बनाकर खुद ही को कोसता हुआ चल दिया।

❑❑❑